सुगम ज्योतिष प्रवेशिका

भूमिका लेखक

माननीय डा० श्री सम्पूर्णानन्द जी

(मुख्य मंत्री—उत्तर प्रदेश)

लेखक

ज्योतिष-कलानिधि

पण्डित गोपेशकुमार ओझा

एम० ए० एल-एल० बी०

(हस्तरेखाविज्ञान, अंकविद्या (ज्योतिष) व्यापार रत्न (२रा भाग) फल-दीपिका, (हिन्दी) 1000 Aphorisms on Love and Marriage-Part I—Western Astrology, Part II Hindu Astrology आदि पुस्तकों के रचयिता)

प्रकाशक

गोयल एण्ड कम्पनी, दरीबा ।

दिल्ली—६

प्रकाशक

गोयल एण्ड कम्पनी

दरीबा, दिल्ली—६

अक्तूबर १९५९

मूल्य पांच रुपया

मुद्रक

शिवजी मुद्रणालय

किनारी बाज़ार दिल्ली

भूमिका

मेरे सामने एक बड़ी कठिनाई है। मैं किसी भी दृष्टि से ज्योतिर्विद् नहीं कहा जा सकता। सिद्धान्त ज्योतिष का तो थोड़ा बहुत ज्ञान है भी परन्तु फलित के सम्बन्ध में जो कुछ जानता हूं वह नहीं के बराबर है। फिर भी चूंकि मैं इस विषय में लिखता पढ़ता रहता हूं इसलिये बहुत से लोगों को यह भ्रम है कि मैं इस विषय में कुछ साधिकार कह सकता हूं। सम्भवत: इस भूमिका को लिखकर मैं इस भ्रम को और भी पुष्ट करने जा रहा हूं।

आजकल नई शिक्षा पाये हुए लोगों में फलित ज्योतिष पर विश्वास प्रकट करने का चलन नहीं है। विश्वास रहता है, ज्योतिषियो से परामर्श भी लिया जाता है; परन्तु यह कहा नहीं जाता कि हम ज्योतिष पर विश्वास करते हैं। यह मानसिक दौर्बल्य है और इसने इस विषय के अध्ययन में बड़ी बाधा डाली है। जिस विषय का समर्थन वह समुदाय नहीं करता जो शिक्षित है और जिसके हाथ में अधिकार का सूत्र है, उसका अभ्यास ऐसे लोगों के हाथ में स्वभावत: चला जाता है जिनका एकमात्र उद्देश्य रुपया कमाना होता है। इसके लिए वह यजमान को धोखा देना बुरा नहीं समझते हैं। जब समाज खुलकर उनका आदर करने को तैयार नहीं है तो वह भी उसके प्रति अपने को दायी नहीं स्वीकार करते। यह दुर्व्यवस्था दूर होनी चाहिए। इस बात की वैज्ञानिक ढंग से परीक्षा होनी चाहिए, और ऐसी परीक्षा करना कठिन नहीं है, क्योंकि ज्योतिष का संबंध परलोक से नहीं इहलोक से है—कि ज्योतिष की बातें कहां तक सच हैं। किसी एक आध व्यक्ति के जीवन में किसी ज्योतिषी की बताई हुई बात का घटित हो जाना पर्याप्त प्रमाण नहीं है।

प्रस्तुत पुस्तक, जैसा कि इसका नाम ही प्रकट करता है, फलित ज्योतिष के प्रारम्भिक विद्यार्थी के लिये लिखी गई है। इसको पढ़ लेने के बाद वह सभी पारिभाषिक शब्दों से परिचित हो जायेंगे, जिनको हम ज्योतिषियों के मुँह सुना करते हैं। जन्म पत्री बनाने तथा फलादेश करने का मार्ग भी खुल जायेगा। यही फलित ज्योतिष का रोचक अंश है। यदि तत्परता से इसका अध्ययन किया जाय तो अपने लिये और अपने कुटुम्बियों तथा मित्रो के लिये तो फलादेश किया ही जा सकता है, ज्योतिष के सम्बन्ध में प्रयोग और परीक्षा भी की जा सकती है। सार्वजनिक दृष्टि से इसकी सबसे बड़ी आवश्यकता है। रचयिता का तो यह दावा है कि केवल इस पुस्तक का अध्ययन और मनन कर पाठक अच्छा ज्योतिषी बन सकता है। इस दावे में चाहे कुछ अतिशयोक्ति भी हो परन्तु मुझे ऐसा लगता है कि पढे लिखे आदमियों को जिस प्रकार ज्योतिष का उपयोग करना चाहिये उसके लिये इसमें पर्याप्त सामग्री है।

लखनऊ ५ नवम्बर सन् १९५९ सम्पूर्णानन्द

॥ श्रीगणेशाम्बागुरुचरणेभ्योनम ॥

प्राक्कथन

मन्दारमालालुलितालकायै कपालमालांकितशेखराय ।
दिव्याम्बरायै च दिगम्बराय नमः शिवायै च नमः शिवाय ॥

हर्ष का विषय है कि सम्प्रति ज्योतिषशास्त्र में लोकाभिरुचि की वृद्धि हो रही है। प्राचीन विचार के सज्जन तो सदैव से ज्योतिष मे विश्वास रखते चले आये हैं—उनके विषय में तो कुछ कहना ही नहीं—किंतु नवीन शिक्षा-दीक्षा से सम्पन्न नवयुवक समुदाय दिनानुदिन ज्योतिषशास्त्र की ओर आकृष्ट ही नहीं हो रहा है—अपितु ज्योतिष में चञ्चु-प्रवेश के लिए साग्रह सोत्सुक है, यह और भी प्रसन्नता का विषय है।

२—किंतु ज्योतिष का गम्भीर शास्त्र दुरूह संस्कृत-ग्रन्थो में निबद्ध होने के कारण जनसाधारण के लिए अप्राप्य है। अनुवादित ग्रन्थों से विषय-प्रवेश में जैसी सुगमता होनी चाहिए वैसी होती नहीं। इस कारण गोयल एण्ड कम्पनी के अध्यक्ष—मेरे प्रिय मित्र श्री कैलाशचन्द्र जी गोयल के बारंबार अनुरोध करने पर "सुगम ज्योतिष प्रवेशिका" नामक यह ग्रन्थ अनेक शास्त्रो का अवलोकन कर और उनका सार सग्रह कर प्रस्तुत किया है। इसके चार भाग हैं —

(१) प्रथम भाग—जातक विचार। (२) द्वितीय भाग—वर्षफल विचार। (३) तृतीय भाग—प्रश्न विचार। (४) चतुर्थ भाग—मुहूर्त विचार।

३—अब तक हिन्दी भाषा में कोई ऐसी पुस्तक नहीं थी जिसमें ज्योतिष के इन चारो विषयो का मार्मिक ज्ञान सरल भाषा में समझाया गया हो। यत्र-तत्र प्रामाणिकता के लिए संस्कृत के श्लोक दे दिए गए हैं.जो आभूषणों मे रत्नो की भाँति इस पुस्तक के सौन्दर्य को बढ़ाते हैं। इस ग्रन्थ को अच्छी प्रकार पढ़ लेने से ज्योतिष का अच्छा ज्ञान पाठको को हो जावेगा, इसकी पूर्ण आशा ही नहीं अपितु दृढ विश्वास है।

४—मेरा अनुरोध है कि पंजाब विश्वविद्यालय हिन्दी रत्न, भूषण, प्रभाकर में ज्योतिष को ऐच्छिक विषय रखे, साथ ही हिन्दी साहित्य सम्मेलन एवं अन्य

राष्ट्र भाषा प्रेमी संस्थाएं—ज्योतिष की पाठ्य पुस्तक के रूप में इस पुस्तक को रखकर—ज्योतिष की प्राचीन विद्या का जीर्णोद्धार करने का प्रयत्न करें।

५ इस पुस्तक में कतिपय विषय बिलकुल नवीन दिए गए हैं और कुछ अन्य विषयों पर नवीनदृष्टिकोण से प्रकाश डाला गया है। काशी के सुप्रसिद्ध प० वेताल शास्त्री जी के विचार भी स्थल-स्थल पर दिये गये हैं। प्रश्न मार्ग, फलदीपिका, जातकादेशमार्ग के विचार भी प्रस्तुत किए गए है। आशा है उनसे ज्योतिष के प्राचीन विद्वान् भी पूर्ण लाभ उठायेंगे। 'लाघवार्थ सारिणी' अब तक हिन्दी में दृष्टिगोचर नहीं हुई। इस कारण यह भी दी गई है। इसकी सहायता से एक ज्योतिषी ५० जन्मकुंडलियों के स्पष्ट ग्रह—एक दिन में तैयार कर सकता है।

६—माननीय डा० श्री सम्पूर्णानन्दजी संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् हैं और भारतीय ज्योतिष के जीर्णोद्धार में सतत प्रयत्नशील हैं। इस विद्या की सेवा के लिए समस्त भारत उनका कृतज्ञ है। उन्होंने कृपाकर इस पुस्तक की भूमिका लिखकर मुझे विशेष अनुग्रहीत किया है। मैं इसके लिये उन्हें अनेकानेक धन्यवाद देता हूं और हृदय से आभारी हूं।

इस पुस्तक के लिखने में मुझे अर्थकाण्ड-वाचस्पति पंडित मोतीलाल जी नागर से बहुत से सत्परामर्श प्राप्त हुए हैं। उन्हें भी धन्यवाद देता हूँ।

७—यदि इसके अन्तर्गत कोई विषय अस्पष्ट या विशेष विचार के योग्य हो तो पाठक मुझे सूचित करने की कृपा करें। जो पाठक अपनी जन्मकुंडली, वर्ष पत्र आदि दिखाना चाहते हो वे भी नीचे लिखे पते पर पत्र द्वारा या टेली-फोन से समय निश्चित कर मिल सकते हैं। विद्वान् पाठकों तथा आलोचकों के सुझावों पर पूर्ण ध्यान देकर अग्रिम संस्करण में इसे और भी विशेष उपयोगी बनाने का प्रयत्न किया जायेगा। अत कृपालु विद्वानों से प्रार्थना है कि अपने-अपने विशिष्ट सुझाव देकर अनुग्रहीत करें। शुभम्

विजयादशमी, २०१६
९३ दरियागंज दिल्ली।
टेलीफोन नं० २ ३७२८

विनीत
गोपेशकुमार ओझा

विषयानुक्रमणिका

प्रथम भाग—जातक विचार

पहला प्रकरण—आकाश परिचय—आकाश का स्वरूप—भचक्र—नक्षत्र मंडल नवग्रह । ९-१६

दूसरा प्रकरण—काल परिचय—सप्ताह-पक्ष—शुक्ल पक्ष की तिथियाँ कृष्ण पक्ष की तिथियाँ—मास—सम्वत्सर—अधिकमास—राशि । १६-२१

तीसरा प्रकरण—पंचांग-परिचय—दिनमान—तिथि—वार—नक्षत्र—नामाक्षर—योग—करण । २२-२८

चौथा प्रकरण—ग्रह और राशि-परिचय—पुरुष और स्त्री राशि, उच्च, नीच, स्वराशि—दिशाओं के स्वामी—ग्रहों का शुभत्व व पापत्व—तत्त्व-रंग—वर्ण—काल—नैसर्गिक मैत्री—तात्कालिक मैत्री—पंचधा मैत्री—चर स्थिर, द्विस्वभाव—पृष्ठोदय, शीर्षोदय—उभयोदय राशि—दिवाबली, रात्रिबली, केन्द्र, त्रिकोण पणफर, आपोक्लिम—त्रिक,—उपचय, ह्रस्व तथा दीर्घ राशियाँ । २९-३८

पाँचवाँ प्रकरण—जन्म कुण्डली बनाना—इष्ट—लग्न निकालने का प्रकार—लग्न स्पष्ट करना । ३८-४४

छठा प्रकरण—भावस्पष्ट करना—भावचक्र । ४५-४९

सातवाँ प्रकरण—ग्रह स्पष्ट करना—चलित चक्र । ५०-५५

आठवाँ प्रकरण—षड्वर्ग या सप्त वर्ग बनाना—होरा—द्रेष्काण—सप्तमांश नवाँश—द्वादशांश और त्रिंशांश कुण्डलियाँ । ५५-६५

नवाँ प्रकरण—किस भाव से क्या विचार करना चाहिए—भाव सम्बन्धी विशेष विचार—उदाहरण—भावकारक—वस्तुओं के स्थिर कारक । ६५-७२

दसवाँ प्रकरण—विंशोत्तरी महादशा निकालना—भुक्त दशा—भोग्य दशा—विंशोत्तरी महादशा चक्र । ७२-७७

ग्यारहवाँ प्रकरण—अन्तर्दशा—ग्रहों की अन्तर्दशा निकालना—प्रत्यन्तर । ७८-८०

बारहवाँ प्रकरण—राशि फल—विविध जन्मलग्नों का तथा विविध राशियों में चन्द्रमा का फल—सूर्य, मगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु तथा केतु का विविध राशिगत फल॥ ८१-९४

तेरहवाँ प्रकरण—ग्रहों के भावफल—सूर्य, चन्द्रमा, मगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु, केतु के विविध भावगत फल—ग्रहों के विशेष वर्ष। ९४-१०१

चौदहवाँ प्रकरण—भावाधीश विचार-केन्द्र, त्रिकोण—शुभ-पाप—क्रूर-सौम्य—ग्रहो की दृष्टि—भावाधिप होने के कारण शुभता—३,६,११, भावों के स्वामी—केन्द्रो के स्वामी—भावेशो की परस्पर तुलना—२ तथा १२वे भाव के स्वामी—अष्टमेश का विचार - शुभग्रह यदि केन्द्रों के स्वामी हो—राहु और केतु का विचार, १०१-११६

पन्द्रहवाँ प्रकरण—राजयोग विचार—केन्द्र और त्रिकोण के स्वामियो का सबंध—सबध किसे कहते हैं—प्रबल राजयोग—नवमेश दशमेश की शुभकारिता का विचार—विशिष्ट राजयोग। ११६-१-४

सोलहवाँ प्रकरण—मारक विचार—अल्पायु, मध्यायु, दीर्घायु,—जैमिनि का मत—होरा लग्न—मारकेश—शनि को विशेष मारकता।
१०४—१३२

सत्रहवाँ प्रकरण—महादशा तथा अन्तर्दशा का फल—उदाहरण—आत्मसंबधी और सधर्मी ग्रहो की विवेचना—यदि महादशानाथ और अन्तदशानाथ विरुद्ध धर्मी हो—केन्द्रेश की महादशा मे त्रिकोणेश का अन्तर—विविध उदाहरण। १३३-१४५

द्वितीय भाग—वर्ष फल विचार

अठारहवा प्रकरण—वर्ष कुण्डली का सिद्धान्त—वर्ष कुंडली बनाना—प्राचीन मत—नवीन मत—मुथा। १४६-१५६

उन्नीसवाँ प्रकरण—वर्ष कुंडली विचार—भावस्पष्ट, ग्रहस्पष्ट करना, मित्रसम शत्रु चक्र—पचवर्गीबल—हद्दा—द्रेष्काण—नवांश—वर्षेश निर्णय—दृष्टि—दीप्तांश। १५६-१६६

बीसवाँ प्रकरण—वर्षकुंडली के षोडश योग—इक्कवाल, इन्दुवार, इत्थशाल,

इसराफ़, नक्त, यमया, मणऊ, कम्बूल, गैरि कम्बूल, खल्लासर, रद्द, दुफालिकुत्थ, दुत्थकुत्थीर, शुभतम्बीर कुत्थ, दुरुफ—मुंथाविचार—पताकी चक्र। १६८-१७९

इक्कीसवाँ प्रकरण—वर्ष में दशा लगाने का प्रकार—मुद्दादशा—उदाहरण। १७८-१८१

बाईसवाँ प्रकरण—गोचर विचार—सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु, केतु, का जन्म-राशि से गोचरवश शुभाशुभ फलादेश। वेध विचार—विपरीत वेध विचार—संक्रांतिवश गोचर विचार १८१-२०१

तेईसवाँ प्रकरण—अरिष्टशांति—सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु, केतु का दान, स्नान,—जपहोम आदि द्वारा शान्ति २०१-२०५

तृतीय भाग—प्रश्न विचार

चौबीसवाँ प्रकरण—प्रश्न-पद्धति और ग्रह—एक से अधिक प्रश्न, ग्रहों के दीप्त आदि दशभेद—ग्रहों के स्वरूप और लक्षण। २०६-२१३

पच्चीसवाँ प्रकरण-प्रश्न विचार—किस भाव से क्या विचार करना—भावों से कार्य सफलता का ज्ञान—आंशिक कार्य सिद्धि—ताजिक के योगों का उपयोग। भूत, भविष्य, वर्तमान सम्बन्धी प्रश्न। २१४ २२३

छब्बीसवाँ प्रकरण—१,२,३ भावसंबंधी प्रश्न प्रथम भावसंबंधी प्रश्न—धन आदि का विचार—तृतीय भावसंबंधी विचार। २२३-२२७

सत्ताईसवाँ प्रकरण—४, ५, ६ भाव संबन्धी प्रश्न भूमि, मकान आदि सम्बन्धित प्रश्न—प्रश्न द्वारा संतानविचार—पुत्र-कन्या ज्ञान। रोग-शत्रु, नौकरी-विचार-प्रश्न २२७ २४०

अट्ठाईसवाँ प्रकरण—७,८,९, भावसम्बन्धी प्रश्न—मुकदमे तथा यात्रा सम्बन्धी प्रश्न—विवाह तथा स्त्री-पुरुष के परस्पर प्रेम-सम्बन्धी प्रश्न—मृत्यु—नवम भाव सम्बन्धी प्रश्न। २४०-२५७

उनन्तीसवाँ प्रकरण—१०,११,१२, भावसम्बन्धी प्रश्न—पद-प्राप्ति विचार—प्रश्न द्वारा लाभालाभ आदि। २५७-२६५

तीसवाँ प्रकरण—द्रेष्काण स्वरूप से चोर का निर्णय—३६ द्रेष्काणों का स्वरूप—चोरी गई वस्तु का विचार २६५-२७५

चतुर्थ भाग—मुहूर्त विचार

इकत्तीसवाँ प्रकरण—उत्तम और अधम योग—द्विपुष्कर, त्रिपुष्कर, सर्वार्थ सिद्धि योग आदि—आनन्दादियोग चक्र—विषघटी—वार वेला २७६-२८५,

बत्तीसवाँ प्रकरण—विविध विचार—भद्रा विचार—चाँदी का पाया—सुवर्ण पाद आदि—गडान्त—मूल आदि नक्षत्र मे जन्म का विचार २८६-२६१,

तेतीसवाँ प्रकरण—मेलापक विचार—विवाह मेलापक—विषकन्या आदि का विवरण—मगलीक दोष—लड़के लड़कियो की जन्म कुण्डली का मिलान—गुण निर्णय— २६१-३०३

चौतीसवाँ प्रकरण—स्वामी सेवक मेलापक, काकिणी विचार ३०४-३०७

पैंतीसवाँ प्रकरण—यात्रा प्रकरण दिक्शूल-नक्षत्र शूल —योगिनी लग्नसम्बन्धी अन्ययोग—सर्वघात चक्र नक्षत्र विचार- गोरख पत्र से यात्रा ३०७-३२२

छत्तीसवाँ प्रकरण—वार और नक्षत्र नक्षत्रों के ध्रुव-चर-क्षिप्र-उग्र मिश्र-लघु-मृदु-तीक्ष्ण आदि भेद—नक्षत्रों की अधोमुख आदि संज्ञा वस्त्रधारण मुहूर्त—पेड़ पौधे लगाने का मुहूर्त-मद्यकार्य—गाय बैल खरीदना, दवा बनाना या प्रारम्भ करना-वस्तु खरीदने तथा बेचने आदि के विविध मुहूर्त। ३२३-३३३

नोट—पुस्तक के अन्त में दिल्ली की लग्न सारिणी, सर्वत्र के लिये उपयोगी दशमलग्न सारिणी, दशा तथा अन्तर्दशा चक्र तथा लाघवार्थ सारिणी दी गई है।

—:o:—

सुगम ज्योतिष प्रवेशिका

प्रथम भाग—जातक-विचार

पहला प्रकरण

आकाश-परिचय

ज्योति या 'ज्योतिस्' का अर्थ है प्रकाश, तेज पुञ्ज—चमकीली वस्तु या पदार्थ। आकाश अनेक तेज पुञ्जो से प्रकाशमान् है। आकाश का विस्तार कितना है इसका अभी तक कोई पता नही लगा पाया। 'प्रकाश' या रोशनी प्रदान करने वाले कितने सूर्य या तारागण आकाश मे हैं इसका पूर्ण ज्ञान अभी तक नही। हाँ, यह अवश्य है कि हमारे सूर्य की अपेक्षा और भी अधिक प्रकाशमान्, इससे भी बड़े तथा अधिक प्रभावशाली तेज पुञ्ज (तारागण) आकाश में हैं। वे हमारी पृथ्वी से इतनी अधिक दूर हैं कि उस दूरी को हम 'अरबो' 'खरबों' मीलो में भी व्यक्त नही कर सकते।

'प्रकाश' या रोशनी की रफ्तार १ मिनिट मे १,८६,००० एक लाख छियासी हजार मील है। अर्थात् यदि पृथ्वी से १,८६,००० मील दूर कोई तेज रोशनी आविर्भूत हो, तो उस रोशनी की प्रकाश-किरणो को पृथ्वी तक पहुँचने मे १ सेकिंड का समय लगेगा। बहुत से तारागण पृथ्वी से इतनी दूर हैं कि उनके प्रकाश को पृथ्वी तक पहुँचने मे सैकडो वर्ष लगते हैं। इसीसे उनकी दूरी का अनुमान लगाया जा सकता है। 'ब्रह्मपुराण' के अध्याय २४ मे आकाश के अपरिमित विस्तार का वर्णन दिया गया है और २५वें अध्याय मे भगवान् नारायण का, शिशुमार-आकृति का जो आकाश मे विराट् रूप है उसका वर्णन करते हुए लिखते हैं :—

तारामयं भगवतः शिशुमाराकृतिप्रभोः।
दिवि रूपं हरेर्यत्तु तस्य पुच्छे स्थितो ध्रुवः॥

'श्रीमद्भागवत' पचम स्कन्ध के अध्याय २२-२५ में भी आकाश का विस्तृत वर्णन किया गया है। शिशुमार चक्र का वर्णन करते हुए कहते हैं कि 'सप्तर्षियो' (सात तारो का मण्डल) से तेरह लाख योजन ऊपर ध्रुवलोक है। काल द्वारा जो ग्रह-नक्षत्रादि ज्योतिर्गण निरन्तर घुमाये जाते हैं उन सबके आधार-स्तम्भ रूप से 'ध्रुव' है। बहुत से शास्त्रों मे इस आकाशीय विस्तृत तारामण्डल का 'शिशुमार' इस नाम से वर्णन है, शिशुमार 'सूस' को कहते हैं। यह शिशुमार कुण्डली मारे हुए है और इसका मुख नीचे की ओर है। इसकी पूँछ के सिरे पर ध्रुव स्थित है। इसके कटि प्रदेश में 'सप्तर्षि' हैं। यह शिशुमार दाहिनी ओर को सिकुड़-कर कुण्डली मारे हुए है। ऐसी स्थिति मे अभिजित् से लेकर पुनर्वसु तक चौदह नक्षत्र इसके दाहिने भाग में हैं तथा पुष्य से लेकर उत्तराषाढ पर्यन्त चौदह नक्षत्र इसके बाये भाग मे हैं।* इसकी पीठ मे अजवीथी (मूल, पूर्वाषाढ और उत्तराषाढ नामक नक्षत्रों के समूह) है और उदर (पेट) मे आकाश-गगा है। इसके दाहिने और बाये कटि-तटो मे पुनर्वसु और पुष्य नक्षत्र हैं, पीछे के दाहिने और बाये चरणों मे आर्द्रा और आश्लेषा नक्षत्र हैं तथा दाहिने और बाये नथुनो में क्रमश: अभिजित् और उत्तराषाढ नक्षत्र हैं। इसी प्रकार दाहिने और बाये नेत्रो मे श्रवण और पूर्वाषाढ नक्षत्र एव दाहिने और बाये कानो मे धनिष्ठा और मूल-नक्षत्र हैं। मघा, पूर्वा फाल्गुनी, उत्तरा फाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा—ये ८ नक्षत्र शिशुमार की बायी पसलियो मे तथा मृगशिर, रोहिणी, कृत्तिका, भरणी, अश्विनी, रेवती, उत्तराभाद्र तथा पूर्वाभाद्र नक्षत्र इस 'कुण्डलीभूत' 'नारायण'

* २७ प्रसिद्ध नक्षत्र तथा अभिजित् को मिलाकर कुल २८ हैं।

की दाहिनी पसलियो मे हैं। शतभिषा और ज्येष्ठा ये दो नक्षत्र क्रमशः दाहिने और बायें कंधो की जगह हैं। इस 'शिशुमार' की ऊपर की थूथनी मे अगस्त्य, नीचे की ठोड़ी में नक्षत्र-रूप यम, मुखों में मगल, लिंग-प्रदेश में शनि, ककुद् में बृहस्पति, छाती में सूर्य, हृदय मे नारायण, मन में चन्द्रमा, नाभि में शुक्र, स्तनो में अश्विनीकुमार, प्राण और अपान मे बुध, गले मे राहु, समस्त अंगो मे केतु और रोमो मे सम्पूर्ण तारागण स्थित हैं।

"एतद् है व भगवतो विष्णोः सर्वदेवतामयं रूपम्"* अर्थात् यह भगवान् विष्णु का सर्वदेवमय स्वरूप है।

उपर्युक्त विस्तृत वर्णन के लिए देखिये 'श्रीमद्भागवत' के पंचम स्कन्ध के अध्याय २२-२५ तथा 'विष्णु पुराण' द्वितीय अंश के अध्याय ७-१२।

इस विष्णुस्वरूप द्वारा अनन्त-ब्रह्माण्डनायक पृथ्वी के चराचर प्राणियो की---स्थावर जगम सभी पदार्थों की—सृष्टि-स्थिति-विलय करते हैं। इसी नारायणी शक्ति का पृथ्वी के जीवो पर, अन्न आदि पदार्थों पर, सामाजिक व राजनीतिक व्यवस्थाओ पर ,आर्थिक तथा व्यापारिक जगत् पर क्या प्रभाव पड़ता है—यह ज्योतिष का विषय है।

यह पौराणिक मत है। शुद्ध ज्योतिष के दृष्टिकोण से हमारी पृथ्वी ब्रह्माण्ड का एक 'अणु' मात्र है जो समस्त सौर (सूर्य)-मडल, अनन्त कोटि तारागण, ग्रहों आदि से प्रभावित है।

दार्शनिक मत से 'नारायण' के शरीर मे ग्रह-सचार से जो कुछ होता है उसका प्रभाव 'नर' (मनुष्य) पर भी पड़ता है।

"यत्पिडे तत्ब्रह्माण्डे" यह दर्शन का सुपरिचित और सुप्रसिद्ध सिद्धान्त है—जिसके व्याख्यान की आवश्यकता नही। अर्थात् जो-कुछ इस शरीर 'पिंड' मे है वही 'ब्रह्माण्ड' मे है। ब्रह्माण्ड बडे पैमाने

*श्रीमद्भागवत ५—२३—८।

पर शरीर (पिंड) है। इस शरीर (पिंड) के अन्तर्गत रहने वाला मायावच्छिन्न आत्मा है। अखिल ब्रह्माण्ड की केन्द्रीय चित् शक्ति परमात्मा है।

"जीवो ब्रह्मैव नापरः" जो 'जीव' है वही 'ब्रह्म' है—यह वेदान्त सिद्धान्त विदित ही है। जिस तरह उपर्युक्त वर्णित तारामय विष्णु का विराट् शरीर कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड के विराटतम विष्णु परिमाण के मुकाबले मे एक अणुमात्र है उसी प्रकार शिशुमार-रूपी विष्णु शरीर के मुकाबले में मनुष्य-शरीर एक अणु मात्र है, किन्तु 'नारायण' का अंश होने से 'नर' मे भी सब कुछ है—जो नारायण मे है वह 'नर' मे है।

सभी को विदित है कि सूर्य और पृथ्वी के सम्बन्ध से ऋतु-परिवर्तन होता है—कभी ग्रीष्म, कभी वर्षा, कभी जाड़ा ये सब सूर्य और पृथ्वी की भिन्न-भिन्न परिस्थितियो के कारण होते हैं। वर्षा न हो तो उपज न हो; अन्न न हो तो प्राणधारी नष्ट हो जावे। जो कुछ भी खाया जाय उसे 'अन्न' कहते हैं। इस विस्तृत—निस्सीम आकाश मे 'पृथ्वी' की कोई गणना ही नही। एक नारगी की अपेक्षा जितनी बडी पृथ्वी है—पृथ्वी की अपेक्षा उतना ही बड़ा सूर्य है। इससे अनुमान हो सकता है कि सूर्य कितना बड़ा है।*

भचक्र—यहाँ एक शंका होना स्वाभाविक है कि जब इस विराट् आकाश मे अनन्त कोटि तारागण हैं तो भारतीय ज्योतिष ने अपने गणित, फलित आदि में २७ नक्षत्र और ९ ग्रहों को ही प्रधानता क्यो दी ? इसका कारण यह है कि आकाश में एक प्रायः गोल (कुछ लबोतरा) मार्ग है।

इस मार्ग में पृथ्वी निरन्तर चक्कर लगाया करती है। आकाश

* यह दृष्टान्त केवल यह बताने के लिए है कि पृथ्वी की अपेक्षा सूर्य बहुत बड़ा है। वास्तव में पृथ्वी और सूर्य में वही अनुपात है जो १ और १३८४७२ में। पृथ्वी से सूर्य साढ़े नौ करोड़ मील दूर है।

में कोई सड़क नही है, न कोई मील के पत्थर लगे हैं तब यह मालूम कैसे पड़े कि पृथ्वी कितना चल चुकी और अब कहाँ है ? इस समस्या को हल करने के लिए—जिस मार्ग पर पृथ्वी घूमती है—उस पर या उसके आसपास स्थित नक्षत्रों मे से २७ नक्षत्र चुन लिए गये है। ये स्थिर नक्षत्र हैं। ग्रह (चन्द्र, मगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि) तो घूमते रहते हैं किन्तु नक्षत्र अपनी जगह स्थिर रहते हैं। इन २७ नक्षत्रो से वही काम लिया जाता है जो मील के पत्थरो से लिया जाता है। यदि कोई मोटर दिल्ली से कलकत्ते के लिए रवाना हो और हम कहे कि वह २७० वे मील पर है तो दिल्ली से कलकत्ते जो सड़क जाती है उसका नकशा पास में होने से, हम तुरन्त यह जान सकते हैं कि इस समय मोटर कहाँ है। इसी प्रकार पृथ्वी के गोलाकार मार्ग को २७ नक्षत्रो में बाँटने की व्यवस्था इसलिए की गई कि आकाश में निश्चित स्थान का निर्देश किया जा सके।

नक्षत्र—ये २७ नक्षत्र निम्नलिखित हैं :

१. अश्विनी	१० मघा	१६ मूल
२. भरणी	११ पूर्वा फाल्गुनी	२०. पूर्वाषाढ
३. कृत्तिका	१२. उत्तरा फाल्गुनी	२१. उत्तराषाढ
४. रोहिणी	१३. हस्त	२२. श्रवण
५. मृगशिर्	१४. चित्रा	२३. धनिष्ठा
६. आर्द्रा	१५. स्वाती	२४ शतभिषा
७. पुनर्वसु	१६. विशाखा	२५. पूर्वाभाद्र
८. पुष्य	१७. अनुराधा	२६ उत्तराभाद्र
६. आश्लेषा	१८. ज्येष्ठा	२७. रेवती

किसी समय वैदिक काल में 'उत्तराषाढ' और 'श्रवण' के बीच मे 'अभिजित्' नामक नक्षत्र की गणना और की जाती थी। किन्तु अब कही-कही (जैसा कि ऊपर दिये गए 'ब्रह्म पुराण', 'श्रीमद्भागवत' आदि उद्धरणों से स्पष्ट है) अभिजित् की चर्चा आती है। किन्हीं-किन्ही ज्योतिष के चक्रो में भी अभिजित् का प्रयोग किया गया है,

किन्तु ६६ फीसदी ज्योतिष के विचार में २७ नक्षत्रों को ही भचक्र (पृथ्वी-परिभ्रमण के मार्ग) का आधार माना है। 'भ' कहते हैं 'नक्षत्र' को। 'चक्र' कहते हैं गोलाकार घूमने वाली वस्तु को। 'चक्र' से ही 'चक्कर' शब्द बना है। इस कारण 'भचक्र' का अर्थ है वह नक्षत्रों का गोलाकार चक्कर जिस पर कोई चीज घूमती हो। इस नक्षत्र-चक्र पर पृथ्वी घूमती है। वर्ष के प्रारम्भ में पृथ्वी अश्विनी नक्षत्र के प्रारम्भिक बिन्दु पर रहती है। वर्ष-भर भरणी, कृत्तिका, रोहिणी इस क्रम से समस्त नक्षत्रों पर घूमती हुई वर्ष के अन्त में फिर अश्विनी नक्षत्र के प्रारम्भिक बिन्दु पर आ जाती है।

नवग्रह—हम लोग पृथ्वी के जीव हैं। पृथ्वी पर वास करते हैं अत पृथ्वी के प्रभाव से प्रभावित होते हैं। यह समझ लीजिए कि हम पृथ्वी के अंग हैं और पृथ्वी सूर्य के चारों ओर भ्रमण करती है। पृथ्वी के परिभ्रमण का मार्ग २७ नक्षत्रों का चक्र है। चन्द्रमा पृथ्वी के चारों ओर भ्रमण करता है। चन्द्रमा के प्रकाश और प्रभाव से पृथ्वी की सारी वनस्पति पैदा होती है। समस्त जड़ी-बूटी, पेड़-पौधे सब चन्द्रमा से पोषण प्राप्त करते हैं। इसी कारण चन्द्रमा को 'औषधिपति' कहते हैं। समुद्र में ज्वार-भाटे का कारण भी चन्द्रमा ही है। इस कारण हम चन्द्रमा से भी प्रभावित हैं।

बाकी मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि ये पाँचों ग्रह सूर्य के चारों ओर भ्रमण करते हैं। जैसे पृथ्वी सूर्य का चक्कर लगाती अर्थात् सूर्य की प्रदक्षिणा करती रहती है वैसे ही ये पाँचों ग्रह भी सूर्य की प्रदक्षिणा करते रहते हैं। इस कारण इन ग्रहों का भी हम पृथिवीवासियों पर प्रभाव पड़ता है। हमारी पृथ्वी सूर्य के चारो ओर प्रदक्षिणा करती है, इस कारण जिन नक्षत्रों के पास से वह जाती है उन २७ नक्षत्रों का तथा जो ग्रह सूर्य के चारों ओर प्रदक्षिणा करते हैं उनका विशेष प्रभाव पृथ्वी पर पड़ता है। अतः भारतीय ज्योतिष का आधार ६ ग्रह और २७ नक्षत्र हैं।

मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि—इन पाँच ग्रहों के अतिरिक्त राहु और केतु दो ग्रह और भारतीय ज्योतिष में माने गये हैं तथा हर्शल, नेपचून एवं प्लूटो ये तीन ग्रह पाश्चात्य ज्योतिषी और मानते हैं।*

'राहु और केतु—राहु और केतु दो उपग्रह हैं। ये कोई दिखाई देने वाले ग्रह नही हैं इसी कारण इन्हे 'छाया'-ग्रह भी कहते हैं। पृथ्वी का सूर्य के चारो ओर भ्रमण का एक मार्ग है। चन्द्रमा का पृथ्वी के चारों ओर भ्रमण का एक अन्य मार्ग है। जहाँ ये दोनों मार्ग एक-दूसरे को काटते हैं उस विन्दु का नाम 'राहु' है। चन्द्र अपने मार्ग पर चलता हुआ जव-जव 'भचक्र' के उस स्थान पर पहुँचता है जिसको पार करने पर वह उत्तर को चला जावेगा उस विन्दु को 'राहु' कहते हैं। अत अंग्रेजी ज्योतिष में इसे 'राहु' न कहकर North Node of the Moon कहते हैं। चन्द्रमा चक्कर पूरा करता हुआ जव 'भचक्र' के उस विन्दु पर पहुँचता है जिसे पार करने पर 'दक्षिण' को चला जावेगा तो उस विन्दु को 'केतु' कहते हैं। इसी कारण अग्रेजी ज्योतिष मे इसे 'South Node of the Moon कहते हैं।

राहु का स्वरूप सर्प की भाँति माना गया है। राहु को सर्प का सिर तथा केतु को पूँछ कहते हैं। यह जो पृथ्वी के मार्ग और चन्द्रमा के मार्ग का—एक-दूसरे को काटने वाला 'चौराहा' या 'विन्दु' है वह स्थिर नही है। वह सरकता रहता है और १८ वर्ष मे मण्डलाकार घूमकर फिर अपने पूर्व स्थान पर आ जाता है। इसलिए लोक-व्यवहार मे कहते हैं कि राहु को पृथ्वी की परिक्रमा करने मे १८ वर्ष का समय लगता है। यह जो 'राहु' का स्थान है (दोनों मार्ग जहाँ एक-दूसरे को काटते हैं वह 'चौराहा') वह पीछे की ओर सरकता रहता है। अश्विनी नक्षत्र से रेवती नक्षत्र, रेवती से उत्तराभाद्र, उत्तराभाद्र से पूर्वाभाद्र इसी क्रम से पीछे की ओर कुछ-कुछ हटता रहता है। अत लोक-व्यवहार मे कहते हैं कि राहु

* सूर्य और चन्द्र यह दो तो प्रधान ग्रह हैं ही।

उलटा चलता है या 'वक्री' है। 'वक्र गति' कहते हैं टेढ़ा या उलटा चलने को।

सूर्य-चन्द्र देदीप्यमान ग्रह हैं, चमकते हैं। राहु-केतु कल्पित बिन्दु मात्र हैं,स्थान मात्र है, देखे नही जा सकते। 'छाया' ग्रह हैं। सूर्य*, चन्द्र सदैव आगे की ओर अश्विनी से भरणी, भरणी से कृत्तिका, कृत्तिका से रोहिणी—इस क्रम से आगे चलते हैं। इस कारण से सूर्य-चन्द्र आदि को 'देवता' कहते हैं (दिव्—चमकना) तथा इनसे विरुद्ध धर्म, गुण, स्वभाव वाले राहु-केतु को 'असुर' कहा गया है। यही पौराणिक कथाओ का आधार है।

सूर्य, चन्द्र, मगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र व शनि आकाश में किस स्थान पर है यह पचाग में दिया रहता है। जब जन्म-कुण्डली, वर्ष-कुण्डली या प्रश्न-कुण्डली बनानी हो तब अभीष्ट समय में कौन-सा ग्रह कहाँ है यह शुद्ध पचाग में देखना चाहिए। कुण्डली बनाना, लग्न तथा ग्रह स्पष्ट, भाव स्पष्ट करना आगे बतलाया गया है।

दूसरा प्रकरण

काल-परिचय

सभी देशो में—अनादि काल से 'समय' को व्यक्त करने का कोई-न-कोई क्रम चला आया है। भारतीय पद्धति निम्नलिखित है :

३ लव का १ निमेष	१५ लघु की १ घडी⊙
३ निमेष का १ क्षण	२ घड़ी का एक मुहूर्त
५ क्षण की १ काष्ठा	६० घड़ी का दिन-रात
१५ काष्ठा का १ लघु	७ दिन-रात का १ सप्ताह

*वास्तव में सूर्य चलता नहीं है—प्रत्युत पृथ्वी चलती है, किन्तु पृथ्वी-वासियों को पृथ्वी पर से यही दृष्टिगोचर होता है कि सूर्य चलता है।

⊙ नोट—१ घड़ी=२४ मिनिट। इस आधार पर यह ज्ञात कर सकते हैं कि भारतीय पद्धति कितनी सूक्ष्म है।

सप्ताह—यह प्राय: सबको विदित ही है कि ७ अहोरात्र (दिन-रात) का एक सप्ताह होता है। सूर्यादि ७ ग्रहों के नाम से सात वार होते हैं। सूर्यवार (रवि), सोमवार (चन्द्र), मगलवार, बुध-वार, वृहस्पतिवार (गुरु), शुक्रवार और शनिवार। वारो का नाम इसी क्रम से क्यो रखा गया है यह हमारी लिखी हुई 'अक-विद्या' (ज्योतिष) नामक पुस्तक में पृष्ठ ९९ पर बताया गया है।

पक्ष—अमावास्या उस रात्रि को कहते हैं जिस दिन चन्द्रमा बिल्कुल दिखाई नही देता। पूर्णिमा उस रात्रि को कहते हैं जिस दिन पूरा चन्द्रमा आकाश में दिखाई देता है। यह तो वास्तव में बच्चो को समझाने वाली परिभाषा है। ज्योतिष के अनुसार 'तिथि' का निर्णय होता है—सूर्य और चन्द्रमा की पारस्परिक 'दूरी' की नाप से।

सूर्य और चन्द्रमा की दूरी फुटों, गजो या मीलों में नही नापी जाती है बल्कि डिग्री या अशो मे नापी जाती है। पृथ्वी सूर्य के चारो ओर घूमती है और चन्द्रमा पृथ्वी के चारो ओर घूमता है। इस भ्रमण के चक्कर में कभी तो पृथ्वी से देखने वाले को सूर्य तथा चन्द्रमा एक ही डिग्री (अश) में दिखाई देते हैं, कभी १८० डिग्री दूर। यह नीचे के चित्र से स्पष्ट किया जाता है।

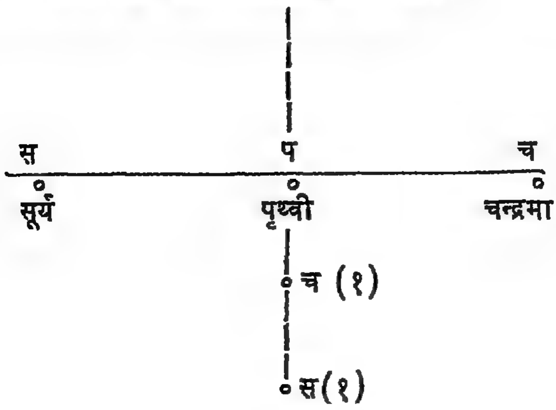

यदि पृथ्वी 'प' स्थान पर है और सूर्य 'स' स्थान पर तथा चन्द्रमा 'च' स्थान पर—तो 'स' और 'च' में १८० डिग्री (अंशो) का फासला होने से पूर्णिमा हुई। किन्तु यदि पृथ्वी 'प' पर है और चन्द्रमा च (१) स्थान पर तथा सूर्य 'स' (१) स्थान पर तो पृथ्वी से देखने वाले को 'स' और 'च' एक ही डिग्री (अंश) मे दिखाई देने के कारण अमावास्या हुई। जैसे चाँदे से रेखा-गणित मे 'डिग्री' नापी जाती हैं वैसे ही ज्योतिष में भी। जब सूर्य और चन्द्रमा एक ही अश पर आ जाते हैं तो सूर्य की रफ्तार धीरे और चन्द्रमा की तेज होने के कारण चन्द्रमा आगे-आगे भागता जाता है और क्रमशः सूर्य और चन्द्रमा मे अतर बढ़ता जाता है। इसी अतर को बताने वाली 'तिथि' है।

जब चन्द्रमा और सूर्य के ठीक एक अंश पर आकर चन्द्रमा आगे बढने लगता है तब इन पन्द्रह तिथि के पखवाड़े को शुक्ल पक्ष कहते हैं।

शुक्ल पक्ष की तिथि

० डिग्री से	१२ डिग्री तक	१	प्रतिपद्		९६ डिग्रीसे	१०८ डिग्री तक	९	नवमी
१२ ...	२४ ...	२	द्वितीया		१०८ ...	१२० ...	१०	दशमी
२४ ...	३६ ...	३	तृतीया		१२० ...	१३२ ...	११	एकादशी
३६ ...	४८ ...	४	चतुर्थी		१३२ ...	१४४ ...	१२	द्वादशी
४८ ...	६० ...	५	पचमी		१४४ ...	१५६ ...	१३	त्रयोदशी
६० ...	७२ ...	६	षष्ठी		१५६ ...	१६८ ...	१४	चतुर्दशी
७२ ...	८४ ...	७	सप्तमी		१६८ ...	१८० ...	१५	पूर्णिमा
८४ ...	९६ ...	८	अष्टमी					

यह तिथियों को जानने का प्रकार है। जब चन्द्रमा सूर्य से ठीक

नोट :—'डिग्री' को ही अंश कहते हैं। 'अंश' के अनेक अर्थ होने के कारण यहाँ 'डिग्री' शब्द का प्रयोग किया गया है।

१८० डिग्री पर पहुँच जाता है तो दोनो का फासला कम होना शुरू होता है और तिथियो का मान निम्नलिखित प्रकार से होता है :

इन पन्द्रह तिथियो के पखवाड़े को कृष्ण पक्ष कहते हैं ।

कृष्ण पक्ष की तिथि

१८० डिग्री के अत से ... १६८ डिग्री के अत तक		१ प्रतिपद्	९६ ...	८४ ...	८ अष्टमी
			८४ ...	७२ ...	९ नवमी
१६८ ...	१५६ ...	२ द्वितीया	७२ ...	६० ...	१० दशमी
१५६ ...	१४४ ...	३ तृतीया	६० ...	४८ ...	११ एकादशी
१४४ ...	१३२ ...	४ चतुर्थी	४८ ...	३६ ...	१२ द्वादशी
१३२ ...	१२० ...	५ पंचमी	३६ ...	२४ ...	१३ त्रयोदशी
१२० ...	१०८ ...	६ षष्ठी	२४ ...	१२ ...	१४ चतुर्दशी
१०८ ...	९६ ...	७ सप्तमी	१२ ...	० ...	३० अमावास्या

उदाहरण—जिस समय चन्द्रमा व सूर्य का अतर ९६ डिग्री से कम होना प्रारम्भ होता है उसी समय से कृष्णपक्ष की अष्टमी प्रारम्भ हो जावेगी । इसी को बताने के लिए पचाग में लिखा रहता है "आज सप्तमी ३२ घड़ी १५ पल" "कल अष्टमी २९ घडी २७ पल" इसका अर्थ हुआ, जिस स्थान के हिसाब से पचांग बनाया है उस स्थान पर सूर्योदय के उपरान्त ३२ घड़ी १५ पल पर सूर्य व चन्द्रमा का अन्तर ठीक ९६ डिग्री हो जावेगा और दूसरे दिन (उसी पंचांग के स्थान पर) सूर्योदय के उपरान्त २८ घडी २७ पल पर सूर्य-चन्द्रमा का अन्तर ८४ घड़ी रह जावेगा अर्थात् अष्टमी समाप्त हो जावेगी ।

प्राय: विभिन्न पंचांगो में तिथियों का समय भिन्न-भिन्न दिया रहता है । आजकल अधिकतर पचांग अपडित या अर्ध-पडितो के

नोट—चैत्र शुक्ल प्रतिपद् से संवत्सर प्रारम्भ होकर वैशाख कृष्ण अमावास्या को एक चान्द्रमास पूरा होता है । इस कारण अमावास्या को ३० और पूर्णिमा को १५ लिखा जाता है ।

बनाये अशुद्ध बिक रहे हैं। अतः जो सस्ता पंचांग हुआ उसे ही शुद्ध मान लोग-बाग उसके अनुसार ही तिथि-निर्णय कर लेते हैं।

मास—३० तिथियों का या दो पक्षों का 'चान्द्रमास' या चन्द्रमा का महीना होता है। १२ चान्द्रमास का एक वर्ष होता है। बारह मासों के नाम क्रमशः निम्नलिखित हैं :

(१) चैत्र, (२) वैशाख, (३) ज्येष्ठ, (४) आषाढ, (५) श्रावण, (६) भाद्र, (७) आश्विन, (८) कार्तिक, (९) मार्गशीर्ष, (१०) पौष, (११) माघ, (१२) फाल्गुन।

संवत्सर—उत्तर भारत मे प्रायः चैत्र शुक्ला १ (प्रतिपद्) से विक्रम सवत्सर का प्रारम्भ मानते हैं। किन्तु गुजरात देश में—बम्बई आदि दक्षिण-पश्चिमी प्रान्तो में—कार्तिक शुक्ल १ (प्रतिपद्) से विक्रम सवत्सर का प्रारम्भ मानते हैं।

जब पृथ्वी सूर्य का एक पूरा चक्कर लगा लेती है तो एक सौर-वर्ष (सूर्य का वर्ष) होता है। यह ३६५ दिन, १५ घड़ी, २२ पल, व ५७। विपल का होता है।

अधिक मास—सूर्य और चन्द्रमा के वर्षो में भेद होता है। सूर्य का वर्ष ३६५ दिनो से कुछ अधिक और चान्द्र-वर्ष (चन्द्रमा के पृथ्वी के १२ चक्कर) करीब ३५४ दिन का ही होता है। इस कारण दोनों प्रकार के वर्षो में अन्तर यदि कायम रखा जावे तो कभी तो 'भाद्र' का महीना पड़े वर्षा ऋतु में, कभी प्रचड गरमी में, कभी घोर जाडे में। ऐसा न हो इसलिये दोनो प्रकार के वर्षो में करीब ११ दिन के फर्क को मिटाने के लिए 'मल' मास या अधिक मास (जिसे पुरुषोत्तम मास भी कहते हैं) की योजना कर दी गई है।*

---

*नोट—जब दो संक्रान्तियों के बीच में एक 'चान्द्रमास' पड़ जाता है तो उसे 'अधिक मास' कहते हैं। मुसलमानी ज्योतिष में यह योजना नहीं है इस कारण उनके ताज़िये और रोजे (चान्द्रमास के हिसाब से) कभी जाड़े में होते हैं तो कभी गर्मी में।

राशि—पृथ्वी के (सूर्य के चारों ओर परिभ्रमण के) मार्ग को १२ हिस्सों में बाँटा गया है। इस मार्ग के प्रत्येक स्थल की पहचान केवल तारों के विविध प्रकार के झुण्डो से होती है। इस 'झुण्ड' या 'ढेर' को सस्कृत में 'राशि' कहते हैं। लौकिक भाषा मे भी 'रास' ढेर या समूह को कहते हैं।

इस मार्ग के १२ भागों को १२ राशि कहते हैं। जब सूर्य एक राशि से दूसरी राशि मे जाता है तो इसे 'जाना'—एक स्थान से दूसरे स्थान में प्रवेश करना—या सस्कृत में 'सक्रमण' कहते हैं। इसी से सक्रान्ति शब्द बना है। बगाल तथा पंजाब मे लोक-व्यवहार में सौर (सूर्य)-मास विशेष प्रचलित हैं। जब सूर्य मेष राशि में प्रवेश करता है तब वैशाख प्रारम्भ होता है। क्रमशः सूर्य-सक्रान्ति के विचार से निम्नलिखित १२ मास होते हैं :

मेष राशि मे जब सूर्य प्रवेश करता है तो 'सौर' वैशाख प्रारम्भ होता है। जब वृषभ में प्रवेश करता है तब ज्येष्ठ। इसी प्रकार मिथुन मे आषाढ, कर्क मे श्रावण, सिह मे भाद्र, कन्या मे आश्विन, तुला में कार्तिक, वृश्चिक मे अग्रहण (मार्गशीर्ष), धनु मे पौष, मकर मे माघ, कुम्भ मे फाल्गुन और मीन राशि मे सूर्य की स्थिति होने पर चैत्र होता है।

ये तारीखे सूर्य के अश के अनुसार होती हैं। उदाहरण के लिए सूर्य सिह राशि में १७ अंश पर हुआ तो १७ भादो हुई।

पहले 'घड़ी-पल' द्वारा ही 'काल' या 'समय' व्यक्त किया जाता था। अब घटो तथा मिनिटो में किया जाता है।

१ घटा = २½ घडी,   १ मिनिट = २½ पल

पृथ्वी के परिभ्रमण के मार्ग को (किसी भी गोल दायरे में ३६० डिग्री या अश होते हैं) 'भचक्र' या नक्षत्र-मण्डल कहते हैं।*

---

* नोट—इस मार्ग या दूरी को व्यक्त करने के लिए निम्नलिखित शब्द व्यवहार में लाए जाते हैं : राशि, अंश, कला, विकला।

तीसरा प्रकरण

पंचांग-परिचय

"श्रौतं स्मार्तं च गार्हस्थ्यं यद्विना नैव सिद्धयति ।
तत् कालाख्येश्वरस्याङ्गं वन्दे तिथ्यादि पंचकम् ।।"

अर्थात् जिसके बिना वैदिक, स्मार्त तथा गृहस्थी के कोई कार्य सिद्ध नही होते उस 'काल' रूपी ईश्वर के अग को—जिसका पांच अगो द्वारा परिचय दिया जाता है—नमस्कार करता हूँ। वे पाच अग कौन से हैं ?

किसी समय को व्यक्त करने के लिए—(१) तिथि (२) वार (३)नक्षत्र(४)योग और (५) करण इन पाँचो का व्यवहार किया जाता है। इस कारण इन पाँच अगो का जिस पुस्तक में परिचय हो उसे पच+अंग=पचाग कहते हैं।

पचाग मे प्रत्येक दिन के विवरण में प्राय: निम्नलिखित वाते दी हुई रहती हैं :

सांकेतिक अक्षर	पूर्ण अर्थ	सांकेतिक अक्षर	पूर्ण अर्थ
दि० मा०	दिन-मान	यो०	योग
ति०	तिथि	सू०उ०	सूर्य-उदय
वा०	वार	सू०अ०	सूर्य-अस्त
न०	नक्षत्र	स्पष्ट सूर्य	सूर्य की उस दिन उदय के समय राशि कला विकला आदि ।
यो०	योग		
क०	करण		

[1]दिनमान—इसका अर्थ है दिन कितना बड़ा होगा। ६० घड़ी में से दिनमान कम करने से रात्रिमान निकल आता है। गर्मी में

1. नोट—घ०प० =घड़ी पल।
६० विकला की १ कला,
६० कला का १ अंश (डिग्री),
३० अंश की १ राशि
१२ राशि का १ भचक्र

दिन वडा होता है रात्रि छोटी, इस कारण दिनमान अधिक होता है—रात्रिमान कम। जाड़े मे इसके विपरीत होता है।

तिथि—काल-परिचय वाले प्रकरण मे समझाया गया है कि तिथि किसे कहते हैं। यह भी घड़ी-पलो में दी होती है। आज यदि कोई तिथि ३२ घडी १५ पल दी है तो इसके वाद (३२ घडी १५ पल के वाद) आगे वाली तिथि लग जावेगी यह जानना चाहिये।

वार—हिन्दू ज्योतिप मे आज सूर्योदय से दूसरे दिन तक वार मानते हैं। अर्थात् यदि आज बुधवार है तो कल सूर्योदय होने पर बृहस्पतिवार माना जावेगा। सूर्योदय होने के एक सेकिंड पहले तक बुधवार की रात्रि समझी जावेगी।

नक्षत्र—समस्त 'भचक्र' या नक्षत्र-मडल को २७ हिस्सों में बाँटा गया है। इस कारण ३६०÷२७=१३ डिग्री (अश) २० कला—यह एक नक्षत्र का हिस्सा है। सारे 'भचक्र' को निम्नलिखित २७ हिस्सों मे बाँटा गया है। जिस हिस्से मे जो प्रमुख तारा स्थित है उसी के नाम से वह (आकाश का) भाग ख्यात हो गया है।

विभाग	रा० अ० क०	से	रा० अ० क०	तक नक्षत्र
(१)	०— ०— ०	,,	०— १३—२०	,, अश्विनी
(२)	०— १३—२०	,,	०— २६—४०	,, भरणी
(३)	०— २६—४०	,,	१— १०— ०	,, कृत्तिका
(४)	१— १०— ०	,,	१— २३—२०	,, रोहिणी
(५)	१— २३—२०	,,	२— ६—४०	,, मृगशिर्
(६)	२— ६—४०	,,	२— २०— ०	,, आर्द्रा
(७)	२— २०— ०	,,	३— ३—२०	,, पुनर्वसु
(८)	३— ३—२०	,,	३— १६—४०	,, पुष्य
(९)	३— १६—४०	,,	४— ०— ०	,, आश्लेषा
(१०)	४— ०— ०	,,	४— १३—२०	,, मघा
(११)	४— १३—२०	,,	४— २६—४०	,, पूर्वा फाल्गुनी

नोट—१२ राशियां = २७ नक्षत्र। इस कारण १ राशि = २$\frac{1}{4}$ (सवा दो) नक्षत्र।

	रा० अं० क० से		रा० अं० क० तक	नक्षत्र
(१२)	४—२६—४०	,,	५—१०— ०	,, उत्तरा फाल्गुनी
(१३)	५—१०— ०	,,	५—२३—२०	,, हस्त
(१४)	५—२३—२०	,,	६— ६—४०	,, चित्रा
(१५)	६— ६—४०	,,	६—२०— ०	,, स्वाति
(१६)	६—२०— ०	,,	७— ३—२०	,, विशाखा
(१७)	७— ३—२०	,,	७—१६—४०	,, अनुराधा
(१८)	७—१६—४०	,,	८— ०— ०	,, ज्येष्ठा
(१९)	८— ०— ०	,,	८—१३—२०	,, मूल
(२०)	८—१३—२०	,,	८—२६—४०	,, पूर्वाषाढ
(२१)	८—२६—४०	,,	९—१०— ०	,, उत्तराषाढ
(२२)	९—१०— ०	,,	९—२३—२०	,, श्रवण
(२३)	९—२३—२०	,,	१०— ६—४०	,, धनिष्ठा
(२४)	१०— ६—४०	,,	१०—२०— ०	,, शतभिषा
(२५)	१०—२०— ०	,,	११— ३—२०	,, पूर्वाभाद्र
(२६)	११— ३—२०	,,	११—१६—४०	,, उत्तराभाद्र
(२७)	११—१६—४०	,,	१२— ०— ०	,, रेवती

चन्द्रमा जिस राशि, अश, कला, विकला में होता है उस भाग का स्वामी जो नक्षत्र माना गया है, "वह नक्षत्र है"—ऐसा व्यावहारिक भाषा मे कहा जाता है।

"आज अश्विनी नक्षत्र २८ घड़ी २५ पल है"—इसका क्या अर्थ ? अश्विनी नक्षत्र तो सदैव था—सदैव रहेगा। किन्तु अश्विनी नक्षत्र आज २८ घडी २५ पल है इसका अर्थ है कि—जिस स्थान के हिसाब से पचाग बनाया गया है—उस स्थान पर सूर्योदय के २८ घड़ी २५ पल तक चन्द्रमा प्रथम राशि के १३ अश २० कला वाले भाग में (जो अश्विनी के नाम से ख्यात है) रहेगा। ठीक २८ घड़ी २५ पल व्यतीत हो जाने पर चन्द्रमा प्रथम राशि के १३ अंश २० कला वाले भाग को पार कर आगे वाले भाग में (जो भरणी के नाम से ख्यात है) चला जावेगा। इसलिए 'नक्षत्र' है—इस वाक्य

का वास्तविक अर्थ हुआ "……नक्षत्र वाले भाग में चन्द्रमा इस समय तक रहेगा।"

लौकिक भाषा में कहते हैं—"आपका जन्म-नक्षत्र क्या है ?" इसका अर्थ है "जब आपका जन्म हुआ था तब चन्द्रमा किस नक्षत्र वाले आकाशीय विभाग मे था।" इसी प्रकार जब किसी से पूछा जाता है—"आपकी राशि क्या है ?" तब इसका वास्तविक अर्थ होता है, "जब आपका जन्म हुआ तब चन्द्रमा किस राशि मे था।"

जन्म के समय चन्द्रमा जिस नक्षत्र में हो उसके अनुसार अक्षर चुनकर जन्म-नाम रखने की प्रथा है। प्रसिद्ध नाम अपनी रुचि के अनुसार माता-पिता कुछ भी रख सकते हैं।

प्रत्येक नक्षत्र का भाग १३ अंश २० कला है। इसको ४ से भाग देने पर प्रत्येक का भाग हुआ ३ अंश २० कला का। इस प्रत्येक भाग को 'पाद' (पैर) या 'चरण' कहते हैं। नक्षत्र के जिस चरण मे जन्म हो उसके अनुसार नाम का प्रथम अक्षर निम्नलिखित प्रकार से चुना जाता है।

नामाक्षर—अश्विनी (चू चे चो ला); भरणी (ली लू ले. लो), कृत्तिका (अ इ उ ए), रोहिणी (ओ वा वी वू); मृगशिर् (वे वो का की), आर्द्रा (कू. घ ङ छ), पुनर्वसु (के. को हा ही), पुष्य (हु हे हो डा), आश्लेषा (डी डू डे डो), मघा (मा. मी मू मे), पूर्वा फाल्गुनी (मो टा टी टू); उत्तरा फाल्गुनी (टे टो पा पी), हस्त (पू ष ण ढ), चित्रा (पे. पो रा री); स्वाति (रू रे. रो ता), विशाखा (ती तू. ते तो); अनुराधा (ना. नी नू. ने), ज्येष्ठा (नो या यी यू), मूल (ये. यो. भा भी), पूर्वाषाढ (भू धा फा ढा), उत्तराषाढ (भे. भो जा. जी); श्रवण (खी खू खे खो), धनिष्ठा (गा गी. गू गे); शतभिषा (गो. सा सी. सू), पूर्वाभाद्र (से सो दा दी), उत्तराभाद्र (दू. थ. झ ञ); रेवती (दे. दो च ची)।

उदाहरण—कोई बच्चा रेवती नक्षत्र के प्रथम चरण में उत्पन्न हुआ। (किस समय से किस समय तक चन्द्रमा रेवती नक्षत्र में था यह देखिये। उस समय को चार हिस्सों में बाँटिये। पहले हिस्से मे जो समय आता है वह रेवती नक्षत्र का प्रथम चरण हुआ। दूसरे हिस्से का समय द्वितीय चरण, तीसरे हिस्से का समय तृतीय चरण और चौथे हिस्से का समय चतुर्थ चरण कहलावेगा।) उस बच्चे को नाम दे········ अक्षर से प्रारम्भ कर देवनाथ, देवदत्त देवीसहाय आदि रखा जावेगा।

योग—पचाग में दो प्रकार के योग दिये रहते हैं: (१) वार और नक्षत्र के योग से जो आनन्द, काल, दड आदि २८ योग होते हैं, वे ३१वे प्रकरण में आगे बताये गए है।

(२) दूसरे प्रकार के योग २७ हैं, जो निम्नलिखित हैं:—

(१) विष्कुम्भ (२) प्रीति (३) आयुष्मान् (४) सौभाग्य (५) शोभन (६) अतिगड (७) सुकर्मा (८) धृति (९) शूल (१०) गड (११) वृद्धि (१२) ध्रुव (१३) व्याघात (१४) हर्षण (१५) वैर (१६) सिद्धि (१७) व्यतीपात (१८) वरीयान (१९) परिघ (२०) शिव (२१) सिद्ध (२२) साध्य (२३) शुभ (२४) शुक्ल (शुक्र) (२५) ब्रह्म (२६) इन्द्र तथा (२७) वैधृति।

इस 'योग' का अर्थ है सूर्य और चन्द्रमा के राशि, कला, विकला का योग या जोड।

उदाहरण के लिए ता० १८ सितम्बर, १९५८ को प्रात.काल ५३ बजे (भारतीय स्टैण्डर्ड टाइम)।

	रा०	अ०	क०	वि०
सूर्य स्पष्ट	५—	१—	१७—	३३
चन्द्र स्पष्ट	७—	३—	३५—	६
'योग'	१२—	४—	५२—	३९

राशियों मे यदि १२ का भाग लग सके तो १२ का भाग देकर राशि के स्थान पर केवल शेष रखना चाहिये। इस प्रक्रिया के बाद रहा ०--४--५२--३६।

अब २३वे पृष्ठ पर देखिये। 'भचक्र' के जो २७ विभाग किये गए हैं उसमे यह सख्या किस विभाग में आती है। ०-०-० से ०-१३-२० तक (१) विभाग है। अब ऊपर (१) के आगे विष्कुम्भ लिखा है—इसलिए १८ सितम्बर, १९५८ को प्रात ५½ बजे 'विष्कुम्भ' योग हुआ।

इसके आगे वाला 'प्रीति' योग कब प्रारम्भ होगा ? ०-०-० से प्रारम्भ कर ०-१३-२० तक '१' ला विभाग है, इस कारण जब सूर्य स्पष्ट और चन्द्र स्पष्ट का योग (जोड) ०-१३-२० हो जावेगा तब 'प्रीति' योग प्रारम्भ होगा। 'प्रीति' योग कब सामप्त होगा ? दूसरा विभाग ०-१३-२० से ०-२६-४० तक है। इस कारण जब सूर्य स्पष्ट और चन्द्र स्पष्ट का योग (अर्थात् जोड) ०-२६-४० हो जावेगा तब 'प्रीति' योग समाप्त होकर, इसके आगे वाला योग 'आयुष्मान्' प्रारम्भ हो जावेगा।

पंचाग-कर्ता गणित करके-घड़ी-पलो मे यह देते हैं कि किस समय तक अमुक योग है। पचाग मे प्राय. योग का प्रथम अक्षर दिया रहता है।

करण—तिथि ३० होती है—१५ शुक्ल पक्ष की तथा १५ कृष्ण पक्ष की। यह दूसरे प्रकरण मे बताया गया है। तिथि के आधे भाग को करण कहते हैं। किस तिथि के, किस आधे भाग को कौन-सा करण कहते हैं यह नीचे के चक्र से स्पष्ट होगा :

कृष्ण पक्ष			शुक्ल पक्ष		
तिथि			तिथि		
१	वालव	कौलव	१	किंस्तुघ्न	वव
२	तैतिल	गरज	२	वालव	कौलव
३	वणिज	विष्टि	३	तैतिल	गरज
४	वव	वालव	४	वणिज	विष्टि
५	कौलव	तैतिल	५	वव	वालव
६	गरज	वणिज	६	कौलव	तैतिल
७	विष्टि	वव	७	गरज	वणिज
८	वालव	कौलव	८	विष्टि	वव
९	तैतिल	गरज	९	वालव	कौलव
१०	वणिज	विष्टि	१०	तैतिल	गरज
११	वव	वालव	११	वणिज	विष्टि
१२	कौलव	तैतिल	१२	वव	वालव
१३	गरज	वणिज	१३	कौलव	तैतिल
१४	विष्टि	शकुन	१४	गरज	वणिज
३०	चतुष्पाद	नाग	१५	विष्टि	वव

पाठक देखेंगे कि वव, वालव, कौलव, तैतिल वणिज, गरज, विष्टि इन ७ करणो की तो वारम्वार पुनरावृत्ति होती है और वाकी चार—शकुन, चतुष्पाद, नाग और किंस्तुघ्न—एक मास मे केवल एक बार होते हैं।

'विष्टि' करण को ही 'भद्रा' कहते हैं। 'भद्रा' का विशेप विचार इस पुस्तक के ३२वे प्रकरण मे किया गया है।

तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करण ये पाँच वाते काल-ज्ञान के लिए परमावश्यक हैं। इन पच (५) अगो का परिचय-पत्र ही 'पंचाग' कहलाता है।

नोट—पंचांग को लौकिक भाषा में पत्रा, पतडा, पंजिका, जंत्री आदि भी कहते हैं।

चौथा प्रकरण

ग्रह और राशि-परिचय

• राहु-केतु सहित सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि ये ९ ग्रह हैं। मेष, वृषभ, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धन, मकर, कुम्भ, मीन ये १२ राशियाँ हैं। सारे राशि-मंडल को एक वृहत् (विराट्) काल पुरुष मानते हुए मेष को सिर, वृषभ को मुख, मिथुन को बाहु तथा गला या वक्षस्थल, कर्क को हृदय, सिंह को कुक्षि (कोख) या पेट, कन्या राशि को (पेट का नीचे का भाग) कटि (कमर), तुला को वस्ति[1] तथा जननेन्द्रिय, वृश्चिक को गुदा, धनु को कूल्हे तथा जांघ, मकर को घुटने, कुम्भ को पिंडलियाँ, मीन को पैर माना है। यह शरीर के बाहरी अवयवों का विभाग है।

• भीतरी अवयवों पर १२ राशियो का क्रमशः निम्नलिखित प्रकार से आधिपत्य है:

(१) दिमाग, (२) कण्ठ की नली, टॉन्सिल, (३) फेफड़े, श्वास लेना, (४) पाचन शक्ति, (५) दिल, हृदय, (६) अंतड़ियाँ–पेट के भीतर का निचला हिस्सा, (७) गुर्दे, (८) मूत्रेन्द्रिय, जननेन्द्रिय, (९) स्नायु मंडल तथा नसें जिनमें रक्त प्रवाहित होता रहता है (१०) हड्डियाँ तथा अंगों के जोड़, (११) रक्त तथा रक्त-प्रवाह (१२) शरीर में सर्वत्र कफोत्पादन।

• जन्म के समय जिस राशि में शुभ ग्रह होते हैं, शरीर का वह भाग पुष्ट होता है। जिस राशि मे पापग्रह होते हं, शरीर का उससे सम्बन्धित भाग कृश, रोगयुक्त, व्रणांकित, पीडित होता है।

नोट—"वस्ति" की व्याख्या हमारी लिखित 'हस्तरेखा-विज्ञान' नामक पुस्तक के चौथे खण्ड में ४३१वें पृष्ठ पर देखिये।

. शिर प्रदेश पर सूर्य का विशेष अधिकार है, मुख के आसपास चन्द्रमा का, कण्ठ पर मगल का, बुध का नाभि के निकट स्थल पर, बृहस्पति का नासा (नाक) के मध्य मे, नेत्रों और पैर पर शुक्र का तथा शनि, राहु और केतु का पेट पर विशेष अधिकार है। सूर्य 'अस्थि' हड्डी का, चन्द्रमा रक्त का, मगल मज्जा का, बुध त्वचा का, बृहस्पति मेद (चरबी) का, शुक्र धातु (वीर्य) का, शनि स्नायु का स्वामी है

• सूर्य और मगल पित्त के, चन्द्रमा वातकफात्मक, बुध पित्त-वातकफात्मक (तीनों दोषों का), बृहस्पति कफ़ का, शुक्र वात तथा कफ का एव शनि 'वायु' का अधिपति है। जब पीडाकारक ग्रह की दशा होती है तब उसके विशेष अधिकार वाले अग में विशेष पीड़ा की सम्भावना रहती है।

' सूर्य आत्मा का अधिष्ठाता होता है, चन्द्रमा मन का, मंगल सत्व (हिम्मत) का, बुध वाणी (वाक् शक्ति) का, बृहस्पति ज्ञान और सुख का, शुक्र 'काम' का तथा शनि दुःख का एवं राहु 'मद' का अधिष्ठाता है। सूर्य बलवान् होगा तो आत्मा बलवान् होगी। चन्द्रमा बलवान् होगा तो मन बलवान् होगा। इस प्रकार सर्वत्र समझना चाहिए; किन्तु शनि बलवान् होगा 'तो 'दु ख' बलवान् नही होगा; दु.ख कम होगा, अर्थात् शनि के विषय मे उलटा है।

' **पुरुष और स्त्री राशि तथा ग्रह**—मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु और कुम्भ पुरुष राशि हैं। वृषभ, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर तथा मीन स्त्री राशि हैं। सूर्य, मगल, बृहस्पति पुरुष ग्रह हैं। चन्द्रमा तथा शुक्र स्त्री ग्रह हैं। बुध पुरुष-नपुसक है। शनि स्त्री-नपुंसक है।

· **उच्च, नीच स्वराशि-चक्र**—सूर्यादि ग्रहों का उच्च, नीच, स्वराशि तथा मूल त्रिकोण राशि-चक्र नीचे दिया जाता है :

	स्वराशि	उच्च राशि	नीच राशि	मूलत्रिकोण
सूर्य	५*	१	७	५*
चन्द्र	४	२*	८	२*
मगल	*१,८	१०	४	१*
बुध	३,६*	६	१२	६*
बृहस्पति	*९,१२	४	१०	९*
शुक्र	२,७*	१२	६	७*
शनि	१०,११*.	७	१	११*

सिंह राशि में २० अश तक सूर्य का मूल त्रिकोण और उसके वाद ३० अग तक स्वराशि। वृषभ मे ३ अश तक चन्द्रमा का उच्च, उसके वाद मूल त्रिकोण। मगल का मेष राशि मे १२ अश तक मूल त्रिकोण वाकी स्वराशि। बुध का कन्या मे १५ अश तक उच्च, उसके वाद २० अश तक (१५–२०) मूल त्रिकोण, शेष अंशो मे स्वराशि। वृहस्पति का धनु मे १० अश तक मूल त्रिकोण, उसके वाद स्वराशि। शुक्र का तुला राशि में ५ अश तक मूल त्रिकोण, उसके वाद स्वराशि। कुम्भ के २० अश तक शनि का मूल त्रिकोण, वाकी स्वराशि।

इसके अतिरिक्त आचार्यो ने यह भी वताया है कि उच्च राशि मे भी किस अग मे परमोच्च समझा जावे। सूर्य के मेष में १० अग, चन्द्रमा के वृषभ मे ३ अंग, मगल के मकर मे २८ अश, बुध

नोट.—पाठक देखेंगे कि ग्रहों की जो मूल त्रिकोण राशि है वे प्रायः वही हैं, जो उन ग्रहो की उच्च राशि या स्वराशियाँ है। ऐसी राशियों पर ऊपर तारे का चिह्न लगा दिया गया है। तव यह कैसे मालूम हो कि अमुक ग्रह स्वराशि मे समझा जावे या मूल त्रिकोण राशि में? यह ऊपर समझाया गया है।

टिप्पणी —१ का अर्थ मेष, २ का वृषभ, ३ का मिथुन, ४ का कर्क, इस प्रकार क्रमशः १२ का अर्थ मीन समझना चाहिए। ज्योतिष की यही परिपाटी है।

के कन्या मे १५ अश, बृहस्पति के कर्क में ५ अश, शुक्र के मीन में २७ अश, शनि के तुला में २० अश परम उच्च होते हैं। इतने ही अशो पर क्रमशः तुला आदि मे सूर्य का परम नीच स्थान है। तुला के १० अश पर सूर्य का, वृश्चिक के ३ अश पर चन्द्रमा का। इसी प्रकार अन्यत्र समझना चाहिये।*

कोई भी ग्रह अपने गृह मे बली, मूल त्रिकोण स्थान मे और भी बली और उच्च राशि मे अति बलशाली होता है। नीच राशि मे निर्बल, परम नीच अशो मे अत्यन्त निर्बल समझना चाहिए।

दिशाओं के स्वामी—सूर्य पूर्व का, शुक्र पूर्व-दक्षिण कोण का, मगल दक्षिण का, राहु दक्षिण-पश्चिम कोण का, शनि पश्चिम का, चन्द्रमा पश्चिमोत्तर कोण का, बुध उत्तर का, बृहस्पति पूर्वोत्तर दिशा का स्वामी है। किस ग्रह से कौनसी दिशा मे भाग्योदय होगा, या वस्तु चोरी गई है, या पथिक गया है आदि जातक विचार तथा प्रश्न मे इस ज्ञान का प्रयोजन होता है।

मेष, सिह, धनु की दिशा पूर्व है; वृषभ, कन्या, मकर की दक्षिण; मिथुन, तुला, कुम्भ की पश्चिम तथा कर्क, वृश्चिक, मीन की उत्तर।

ग्रहों का शुभत्व और पापत्व—बुध, बृहस्पति, शुक्र शुभ ग्रह हैं। सूर्य क्रूर है। मगल, शनि, राहु-केतु पाप ग्रह हैं। क्षीण चन्द्र पाप, पूर्णचन्द्र शुभ है।

बुध मे विशेषता यह है कि शुभ ग्रहों के साथ शुभ व पाप

---

* राहु और केतु की कौन सी स्वराशि व कौन सी उच्च राशि है—इस विषय में विद्वानों में मतभेद है। बहुत से वृषभ को राहु का उच्च स्थान, वृश्चिक को केतु का उच्च स्थान मानते हैं। बहुत से मिथुन को राहु की उच्चराशि, धनु को केतु की उच्च राशि मानते हैं। उच्चराशि से सातवीं, प्रत्येक ग्रह की नीच राशि होती है।

ग्रहों के साथ पाप हो जाता है। स्वभावतः शुभ है। चन्द्रमा के विशेष विचार के लिए 'परिशिष्ट' प्रकरण देखिये।

मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु, कुम्भ, 'ऊनी' तथा क्रूर राशियाँ हैं। वृषभ, कर्क, कन्या वृश्चिक, मकर तथा मीन 'पूरी' एव सौम्य राशियाँ हैं।

तत्व—सूर्य मगल का अग्नि तत्व, चन्द्रमा व शुक्र का जल तत्व, बुध का पृथ्वी तत्व, वृहस्पति का आकाश तत्व तथा शनि का वायु तत्व है। मेष, सिंह, धनु आग्नेय (अग्नि तत्व की) राशि, वृषभ, कन्या, मकर, पृथ्वी तत्व की राशि, मिथुन, तुला, कुम्भ वायु तत्त्व की राशि तथा कर्क, वृश्चिक, मीन जल तत्व की राशि मानी जाती हैं।

रंग—सूर्य का ताम्र वर्ण, चन्द्रमा का श्वेत, मगल का लाल, बुध का हरा, वृहस्पति का पीला, शुक्र का विविध रग (उज्ज्वल), शनि का काला। राहु का भी काला रग होता है। केतु का धव्वेदार।

मेष आदि वारह राशियो के क्रमश निम्नलिखित वर्ण हैं:

(१) लोहित (लाल), (२) सित (सफेद), (३) हरा, (४) पाटल (उज्ज्वल लाल), (५) धूम्र, (६) पाडु—कुछ पीलापन लिये; (७) चित्र (अनेक रग लिये), (८) कृष्ण (काला), (९) सुनहरी, (१०) पिंगल, (११) चितकवरा भूरा।

वर्ण—वृहस्पति व शुक्र ब्राह्मण, सूर्य व मगल क्षत्रिय, चन्द्रमा वैश्य, शनि सकर जातियो का तथा बुध शूद्रो का स्वामी है। वहुत से ज्योतिषियो के अनुसार चन्द्रमा ब्राह्मण, बुध वैश्य है।

वृषभ, वृश्चिक और मीन ब्राह्मण हैं, मेष, धनु, सिंह क्षत्रिय; मिथुन, तुला, कुम्भ वैश्य एव कर्क, कन्या व मकर शूद्र हैं।

काल—अयन (छ: मास) का स्वामी सूर्य, मुहूर्त (४८ मिनिट का चन्द्रमा, दिन-रात (२४ घटे) का मगल। ऋतु (२ मास) का बुध, मास (३० दिन) का वृहस्पति, पक्ष (१५ दिन) का शुक्र

तथा १ वर्ष का स्वामी शनि है। कितने दिन में मेरा कार्य होगा आदि प्रश्नों में जो ग्रह शुभ योग करता हो, लग्न में हो या कार्येश या चन्द्रमा से शुभ इत्थशाल योग करता हो—उसके अनुसार फलादेश करने में इसका प्रयोजन होता है।*

ऋतु—सूर्य और मंगल की ग्रीष्म ऋतु, चन्द्रमा की वर्षा, बुध की शरद्, बृहस्पति की हेमन्त, शुक्र की वसन्त और शनि की शिशिर ऋतु है।

सूर्य कटु (कडवे रस) का, चन्द्रमा नमकीन स्वाद का, मंगल तिक्त का, बुध मिश्रित (अनेक स्वाद मिला हुआ) रस का, बृहस्पति मधुर (मीठे) रस का, शुक्र खट्टे रस का तथा शनि कषाय (कसैले) रस का स्वामी है।

नैसर्गिक मैत्रीचक्र—मित्रता दो प्रकार की होती है नैसर्गिक, तथा तात्कालिक। नैसर्गिक का अर्थ है स्वाभाविक। कौनसा ग्रह स्वभाव से किसका 'मित्र', किसका 'सम' (न मित्र, न शत्रु) और किसका शत्रु है यह नीचे दिया जाता है।

ग्रह	मित्र	सम	शत्रु
सूर्य	च० म० बृ०	बु०	शु० श०
चन्द्र	सू० बु०	म० बृ०शु० श०	×
मगल	सू० च० बृ०	शु० श०	बु०
बुध	सू० शु०	म० बृ०श०	च०
बृहस्पति	सू० च० म०	श०	बु० शु०
शुक्र	बु० श०	म० बृ०	सू० च०
शनि	बु० शु०	बृ०	सू० च० म०

नोट—*लग्नेश या लग्न के भुक्त अंश के अनुसार भी काल में अनुपात कर दिया जाता है।

उदाहरण के लिये निम्नलिखित जन्म-कुण्डली मे तात्कालिक मैत्री का विचार करना है :

	मित्र	शत्रु
सूर्य	चं० म० बु० वृ० शु० श०	×
चन्द्र	सू० बु० शु० श०	मं०वृ०
मंगल	सू० बु० शु० श०	चं० वृ०
बुध	सू० च० मं० वृ० शु० श०	×
वृह०	सू० बु० शु० श०	च० म०
शुक्र	सू० च० म० बु० वृ०	श०
शनि	सू० च० म० बु० वृ०	शु०

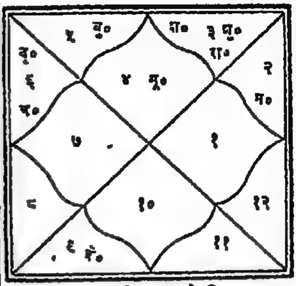

तात्कालिक मैत्रीचक्र—(१)जो ग्रह जिससे द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, दशम, एकादश, द्वादश में होता है वह उसका तात्कालिक मित्र होता है।

(२) जो दोनों ग्रह एक ही राशि मे बैठे होते हैं वह परस्पर तात्कालिक शत्रु होते हैं।

(३) जो ग्रह–परस्पर, पंचम-नवम, छठे-आठवे या एक-दूसरे से सातवे बैठे हों वे तात्कालिक शत्रु होते हैं।

ऊपर जन्म-कुण्डली में १, २, ३, ४,.........१२ यह तो मेष, वृषभ, मिथुन आदि का द्योतक है। देखिये ३१ पृष्ठ पर टिप्पणी। उपर्युक्त प्रकार से जब कुण्डली लिखते हैं तब गणना आगे लिखे अनुसार परस्पर की जाती है :

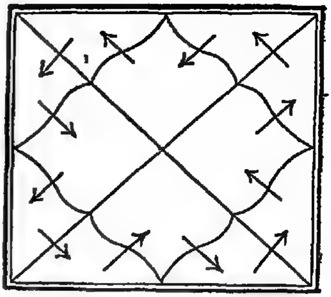

जिधर-जिधर बाण का चिह्न है उस-उस ओर गिनते जाते हैं। जिस ग्रह से गिनना है—वह ग्रह जिस कोष्ठ में हो वह प्रथम, उसके बाद का द्वितीय, उसके बाद का तृतीय, उसके बाद का चतुर्थ यह गणना-क्रम है।

अब नैसर्गिक और तात्कालिक दोनों प्रकार के मित्र-शत्रु-चक्र को मिलाकर उनकी समष्टि कर "पचधा-मैत्रीचक्र" निम्नलिखित सिद्धान्त पर तैयार किया जाता है :

पंचधा मैत्री चक्र—(१) यदि किसी ग्रह का कोई ग्रह नैसर्गिक तथा तात्कालिक दोनो प्रकार से मित्र हुआ तो वह 'अधिमित्र' हुआ।

(२) यदि किसी ग्रह का कोई ग्रह नैसर्गिक तथा तात्कालिक दोनों प्रकार से शत्रु हुआ तो वह 'अधिशत्रु' हुआ।

(३) यदि किसी ग्रह का कोई ग्रह नैसर्गिक तथा तात्कालिक इन दोनो प्रकार में से एक में मित्र व एक में शत्रु हुआ तो वह 'सम' हुआ।

(४) यदि किसी ग्रह का कोई ग्रह नैसर्गिक मैत्री-चक्र में सम है और तात्कालिक चक्र में मित्र है तो परिणामतः 'मित्र' हुआ।

(५) यदि किसी ग्रह का कोई ग्रह नैसर्गिक मैत्री-चक्र में सम है और तात्कालिक चक्र में शत्रु हुआ तो परिणामतः 'शत्रु' हुआ।

नैसर्गिक मित्रामित्रता (मित्रता, अमित्रता) तथा तात्कालिक मित्रामित्रता (मित्रता, अमित्रता)—वश उपर्युक्त पाँच प्रकार के सम्बन्ध स्थापित हो सकते हैं। इस कारण दोनों प्रकार के मैत्री-चक्र

का समन्वय करने से जो सम्बन्ध-चक्र बनता है, उसे पंचधा (पांच प्रकार का) मैत्री-चक्र कहते हैं। उदाहरणत. कुण्डली में पचधा मैत्री-चक्र निम्नलिखित हुआ :

ग्रह	अधिमित्र	मित्र	सम	शत्रु	अधिशत्रु
सूर्य	चं० मं० वृ०	बु०	शु० श०	×	×
चन्द्रमा	सू० बु०	शु० श०	×	म० वृ०	×
मंगल	सू०	शु० श०	च० बु० वृ०	×	×
बुध	सू० शु०	म०वृ०श०	×	×	×
वृहस्पति	सू०	श०	च०म०बु०श०	×	×
शुक्र	बु०	म० वृ०	सू० च० श०	×	×
शनि	बु०	वृ०	सू०च०म०शु०	×	×

चर, स्थिर, द्विस्वभाव—मेप, कर्क, तुला,मकर 'चर' राशियाँ हैं।

वृपभ, सिंह, वृश्चिक, कुम्भ 'स्थिर' राशियाँ हैं।

मिथुन, कन्या, धनु, मीन 'द्विस्वभाव' राशियाँ हैं।

पृष्ठोदय, शीर्षोदय, उभयोदय—मेप, वृषभ, कर्क, धनु, मकर पृष्ठोदय राशि हैं। प्रश्न लग्न में यह राशि होने से देर से कार्य होता है। इनमे बैठे हुए ग्रह देर से अपना प्रभाव दिखाते हैं।

मिथुन, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, कुम्भ, मीन, शीर्षोदय राशियाँ है। इन में बैठे हुए ग्रह शीघ्र फल दिखलाते हैं। प्रश्न लग्न में यह राशि होने से शीघ्र कार्य सिद्ध होता है।

मीन उभयोदय है। इसमे दोनो प्रकार के गुणों का सम्मिश्रण है।

पृष्ठोदय राशि में पापग्रह बैठा हो तो अत्यन्त अशुभ होता है। पृष्ठोदय राशि मे शुभग्रह बैठा हो तो मध्यम फल होता है। शीर्षोदय में इसके विपरीत समझना चाहिए।

दिवाबली, रात्रिबली--(क) १, २, ३, ४, ६, १० ये राशियाँ रात्रि मे बली होती हैं।

(ख) ५, ६, ७, ८, ११, १२ ये राशियाँ दिन में बली होती हैं।

केन्द्र--लग्न, चतुर्थ, सप्तम और दशम भाव केन्द्र कहलाते हैं।

त्रिकोण--पचम तथा नवम भाव को त्रिकोण कहते हैं।

पणफर--द्वितीय, पचम, अष्टम तथा एकादश भाव को पणफर कहते हैं।

आपोक्लिम--तृतीय, षष्ठ, नवम तथा द्वादश भाव को आपोक्लिम कहते हैं।

त्रिक--षष्ठ, अष्टम तथा द्वादश, इन भावों को त्रिक कहते हैं। इन्हे दु स्थान भी कहते हैं।

उपचय---तृतीय, षष्ठ, दशम, एकादश इन भावो को उपचय कहते हैं। बाकी के भावो को अनुपचय कहते हैं।

ह्रस्व तथा दीर्घ राशियां :—

(क) मेष, वृषभ, कुम्भ, मीन ह्रस्व राशियाँ हैं।

(ख) मिथुन, कर्क, धनु, मकर ये मध्यम राशियाँ हैं।

(ग) सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक दीर्घ राशियाँ हैं।

पांचवाँ प्रकरण

जन्म-कुण्डली बनाना

अब आगे के प्रकरणों मे जन्म-कुण्डली बनाना, लग्न स्पष्ट करना तथा भाव स्पष्ट करना एव ग्रह स्पष्ट करना बतलाया जाता है। जिन ज्योतिषियों को जन्म-कुण्डली या प्रश्न-कुण्डली बनानी पड़ती है उन्हे यह प्रकरण बहुत सावधानी से पढकर अध्ययन करना चाहिये

नोट---भाव साधन आगे के प्रकरण में बताया गया है।

तथा २०-३० जन्म-कुण्डलियाँ वनाकर अभ्यास भी कर लेना चाहिये जिससे भविष्य मे जन्म-कुण्डली या प्रश्न-कुण्डली वनाने मे अशुद्धि न हो। गणित का अभ्यास करने से ही मनुष्य पक्का होता है।

जन्म-कुण्डली—उस समय का आकाश का नक्शा है जिस समय कोई मनुष्य उत्पन्न हो। प्रश्न-कुण्डली उस समय का आकाश का नक्शा है जिस समय प्रश्न किया जावे।

यदि २३ सितम्वर, १९५८ को दिल्ली मे सायकाल ५ वजकर ३० मिनिट पर कोई वच्चा हो तो उसकी जो जन्म-कुण्डली हो उसमें और २३ सितम्वर, १९५८ को ५ वजकर ३० मिनिट पर दिल्ली में कोई प्रश्न करे तो उस समय की प्रश्न-कुण्डली मे कोई अतर नही होगा। हमें तो २३ सितम्वर, १९५८ को दिल्ली से आकाश का जो नक्शा दिखाई दे, या दिखाई दे सकता है उसका नक्शा कागज़ पर वनाना है।

इष्ट—जिस समय की (प्रस्तुत उदाहरण में ५ वजकर ३० मिनिट की) जन्म-कुण्डली या प्रश्न कुण्डली वनाई जाती है उसे 'इष्ट काल' या 'इष्टम्' कहते हैं।

भारतीय ज्योतिप में काल-गणना प्राय. सूर्योदय से की जाती है। इस कारण इस 'इष्टकाल' को सूर्योदय से कितने घड़ी कितने पल हुए, पहले यह निकालिये।

शुद्ध लग्न-कुण्डली वनाने के लिए सर्वप्रथम उस स्थान के शुद्ध सूर्योदय का ज्ञान होना चाहिये जहाँ 'वालक' का जन्म हुआ। यदि दिल्ली नगर में जन्म हुआ है तो दिल्ली का सूर्योदय-काल जानना वहुत आवश्यक है।

प्राय. वहुत से ज्योतिषी इसका विचार नही करते कि जन्म किस स्थान में हुआ—वहाँ सूर्योदय कितने वजकर कितने मिनिट पर

नोट—जिस प्रकार जन्म-कुण्डली से लग्न स्पष्ट, भाव स्पष्ट, ग्रह स्पष्ट किये जाते हैं उसी प्रकार वर्ष-कुण्डली और प्रश्न-कुण्डली में भी।

हुआ था। ज्योतिषी जी बैठे हैं दिल्ली मे, बच्चा पैदा हुआ लाहौर मे, और ज्योतिषी जी के पास पचाग है काशी का—बस काशी का पचाग उलटा और कागज या स्लेट पर काशी का सूर्योदय-काल लिख डाला; उसे ही आधार मान आगे का गणित करना प्रारभ कर देते हैं। परिणाम यह होता है कि इष्ट काल ही अशुद्ध तैयार होता है।

अस्तु, जिस स्थान मे जन्म हुआ है, उस स्थान का शुद्ध पंचांग होना परमावश्यक है। 'विश्व-विजय पचाग' दिल्ली के अक्षांश-देशान्तर पर बना है इस कारण यदि दिल्ली में बालक का जन्म हुआ है तो 'विश्व विजय पचाग' मे देखिये कि सूर्योदय का समय क्या दिया हैं: सवत् २०१५ (सन् १९५८) के पचाग का पृष्ठ ५१ वाँ खोलिए। २३ सितम्बर को सूर्योदय ६ बजकर, १५ मिनिट दिया है।

	घटा	मिनिट
(क) जन्म का समय सायकाल ५ बजकर ३० मिनिट (इसे रेलवे के अनुसार कहेगे)	१७	३०
(ख) प्रात काल सूर्योदय	६	१५
(क) मे से (ख) घटाया तो शेष	११	१५

अर्थात् सूर्योदय के ११ घटा १५ मिनिट के उपरान्त जन्म हुआ।

		घडी	पल	विपल
११ घटा	=	२७	३०	०
१५ मिनिट	=	०	३७	३०
इसलिये 'श्री सूर्योदयादिष्टम्'		२८	७	३०

इसलिये सूर्योदय से इष्टकाल आया २८।७।३० (अर्थात् २८ घडी, ७ पल, ३० विपल)।

जहाँ कोई शुद्ध पचांग उपलब्ध न हो वहाँ किसी अन्य स्थान के पंचांग से (अभीष्ट स्थान का सूर्योदय कैसे निकालना—इसकी पद्धति दी हुई रहती है) शुद्ध सूर्योदय निकालना चाहिये।

लग्न

अब लग्न निकालना बताया जाता है। 'लग्न' किसे कहते हैं। पूर्वीय क्षितिज मे आकाश का जो भाग पृथ्वी से लगा रहता है, उसे उदय-लग्न कहते हैं। आकाश का नक्शा बनाना है न? कहाँ से प्रारभ करेंगे? आकाश के उस हिस्से या भाग से प्रारभ करेंगे जो पूर्वीय क्षितिज मे हमारे प्रदेश मे (दिल्ली की कु डली बनानी है तो दिल्ली से देखने पर जो आकाश का भाग पूर्वीय क्षितिज मे) लगा हुआ प्रतीत होता है उससे प्रारभ करेंगे।

(१) लग्न (भाव) पूर्वीय क्षितिज है।

(२) सप्तम (भाव) पश्चिमीय क्षितिज है।

(३) दशम (भाव) हमारे बिलकुल ऊपर—हमारे सिर पर जो आकाश का भाग है—वह है।

(४) चतुर्थ (भाव) हमारे बिलकुल नीचे—पृथ्वी के नीचे जो आकाश का भाग है—वह है।

लग्न निकालने का प्रकार—यह देखिये कि जिस दिन की आप जन्म-कुण्डली बना रहे हैं उस दिन सूर्य किस राशि के किस अश पर है। प्रस्तुत उदाहरण में पचांग देखने से विदित हुआ कि सूर्य के कन्या राशि के ६ अश गये हैं। अत. मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह आदि ५ राशि सूर्य पार कर चुका है इस कारण सूर्य हुआ ५।६, अर्थात् ५ राशि पूरी कर चुका हैं इस कारण ५ लिखा। '६' अश का द्योतक हैं। जन्म के समय का सूर्य स्पष्ट ५।६।३६।५८ है।

अब 'सारिणी'* का काम पडेगा। 'सारिणी' गणित की हुई विशेष संख्याओ की क्रमवद्ध कोष्ठावली है। 'सारिणी' केवल वे लोग बना सकते हैं जिन्होने ज्योतिष विद्या के गणित-स्कन्ध मे वर्षो परिश्रम किया हो। अन्य लोग तो केवल 'सारिणी' का उपयोग

नोट—सारिणी पुस्तक के अंत में दी गई है।

मात्र कर सकते हैं। डाक्टर भी 'थर्मामीटर' या 'स्टेथेस्कोप' का उपयोग मात्र करते हैं इन यन्त्रो को बना नही सकते।

अस्तु, 'सारिणी' भिन्न-भिन्न अक्षाश की भिन्न-भिन्न होती है। लका मे मेष, वृष, मिथुन आदि प्रत्येक चार-चार लग्न का 'मान' समान होता है। प्रत्येक लग्न प्राय २-२ घटे का होता है। जहाँ ० अक्षाश है वहाँ लग्न 'मान' मे उतना विशेष अन्तर नही है। किन्तु जैसे-जैसे हम उत्तर की ओर बढते जाते है वैसे-वैसे क्रमश मेष, वृष, मिथुन, मकर, कुम्भ, मीन ये लग्न छोटे होते जाते हैं। इनका 'मान' क्रमशः कम होता जाता है और बाकी के छ लग्नो का—कर्क, सिह, कन्या तुला, वृश्चिक, धन का मान बढता जाता है।

देखिए दिल्ली का अक्षाश		२८ अश	३६ कला	उत्तर	है।
काशी का	,,	२५ अश	२० कला	,,	है।
अमृतसर का	,,	३१ अश	३८ कला	,,	है।
बम्बई का	,,	१८ अश	५८ कला	,,	है।
मद्रास का	,,	१३ अश	४ कला	,,	है।

इस कारण प्रत्येक स्थान का लग्न-मान भिन्न-भिन्न होगा। लग्न-मान 'अक्षांश' के अनुसार घटता-बढता है। इस कारण ध्यान रखिये—कथमपि भूलिये नही—यदि दिल्ली का शुद्ध लग्न निकालना है तो दिल्ली की (२८ अक्षाश ३६ कला वाली) सारिणी लीजिये। काशी का लग्न निकालना है तो काशी की 'सारिणी' से लग्न निकालिए। यदि आपको लग्न निकालना है दिल्ली का और आप बम्बई या काशी की 'सारिणी' से लग्न निकाल रहे हैं तो आप घोर अशुद्धि और अन्याय कर रहे हैं।

नोट—'सारिणी' को अंग्रेजी में Table of Houses कहते हैं।

* टिपप्णी—० अक्षांश पर मेष, कन्या, तुला, मीन का मान १६७४ 'असु' है। वृष, सिंह, वृश्चिक, कुम्भ का मान १७९५ असु है तथा मिथुन, कर्क, धनु, मकर का मान १९३१ असु है। १ असु ४ सेकिंड का होता है।

दिल्ली मे जिस वर्ष जो अयनांश हो उस अयनाश वाली सारिणी लेनी चाहिये। आजकल अयनाश तो २३-१७ है और जो ज्योतिपी २१–४८ अयनाश की सारिणी से लग्न निकालते हैं वे घोर अशुद्धि कर रहे हैं।

अस्तु, दिल्ली का २३ सितम्वर का लग्न निकालना है तो इस वर्ष के 'विश्वविजय पचाग' का पृष्ठ १०० देखिये। इस पर २३ अयनाश की सारिणी दी गई है। इस समय अयनाश २३।१७ है इन १७ कलाओ के अन्तर का विचार वाद मे कर लिया जावेगा।

(क) कन्या राशि के सामने वाले कोष्ठ मे '६' (अश) वाले कोष्ठ के नीचे देखिये लिखा है	२६–४६
३६ कला ५८ विकला के जोडिये	७-२०*
(ख) इष्टकाल जोडिये	२८ – ७-३०
(ग) योग हुआ	५८ – ३–५०

अव देखिये यह सख्या ५८–३–५० किस कोष्ठ मे है ?

(घ) कुम्भ राशि के सामने '२१' अश के नीचे लिखा है ५८–६

(ङ) कुम्भ राशि के सामने '२०' अश के नीचे लिखा है ५७-५६

यदि हमारी सख्या पूरी ५८।६ होती तो लग्न १०।२१ होता। किन्तु इसमें करीव २ पल १० विपल कम हैं। इस कारण (७ विपल का १ अश तो २ पल १० विपल के १८ कला ३० विकला।) १०।२१ मे से १८ कला ३० विकला कम किये तो लग्न हुआ १०–२०–४१–३०।

१०–२१–०–०
०– ०–१८–३०
१०–२०–४१–३०

---

* ६ अश की संख्या २६-४६ है। ७ अश की संख्या है ३०।० अर्थात् १ अंश के ११ पल तो ३६ कला ५८ विकला के हुए लगभग ७ पल २० विपल।

वास्तव में यह २३ अयनाश वाली सारिणी है। इस के बगल मे लिखा है···अयनाशा. २३)। जिस दिन का लग्न स्पष्ट करना है उस दिन अयनाश है २३।१७; इस कारण १०–२०+४१–३० में से

०–०–१७–० घटाया

१०–२०–२४–३० यह

लग्न स्पष्ट हुआ, कुम्भ राशि के २० अश २४ कला ३० विकला। अब आप नीचे लिखे अनुसार कुण्डली बनाइये और इस दिन इस समय जिस राशि में जो ग्रह था वह लिखिये।

पचाग* देखने से विदित हुआ कि सूर्य कन्या मे था, चन्द्रमा मकर मे, मगल वृषभ मे, बुध सिह में, बृहस्पति तुला मे, शुक्र सिह में, शनि वृश्चिक में, राहु कन्या मे, केतु मीन मे। इस कारण दिल्ली नगर की ५½ वजे की कुण्डली निम्नलिखित हुई।

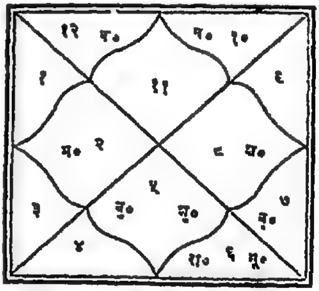

जहाँ ११ लिखा है वह लग्न स्थान है। यहाँ से गिनने पर केतु द्वितीय मे, मगल चतुर्थ मे, बुध और शुक्र सप्तम मे, सूर्य और राहु अष्टम मे बृहस्पति नवम मे, शनि दशम मे तथा चन्द्रमा द्वादश मे हुआ। ये द्वितीय, चतुर्थ, सप्तम आदि भाव के द्योतक हैं। राशि की द्योतक १,२,३ आदि सख्या हैं ही।

छठा प्रकरण

भाव स्पष्ट करना

पूर्व प्रकरण मे लग्न स्पष्ट करना बताया गया है। अब भाव-स्पष्ट करना बताया जाता है। अंग्रेजी ज्योतिष मे भाव स्पष्ट करने

नोट—एन॰ सा॰ लहरा के पंचाग के अनुसार ग्रह स्थिति दी गई है। यह बहुत उत्तम पंचांग है। गोयल एण्ड कं॰ से प्राप्त हो सकता है।

के अनेक मत प्रचलित हैं*। इसी प्रकार भारतीय ज्योतिष में भी दशम स्पष्ट करने के भिन्न-भिन्न मत हैं। जिन्हे ज्योतिष विषय का विशेष अन्वेषण और विश्लेषण करना हो वे सिद्धान्त-ग्रथो का अवलोकन कर सकते हैं। यहाँ अनेक मतो मे से केवल एक मत वताया जाता है ·'

काशी के 'विश्व पचाग' (वनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के प्राच्य ज्योतिष विभाग द्वारा प्रकाशित तथा स्वर्गीय स्वनामधन्य महामना पडित मदनमोहन मालवीय जी द्वारा सस्थापित) के निर्माताओ के शब्दो मे .

"सूर्यफल में इष्टकाल जोड़ने से लग्न सारिणी द्वारा जो अंक निकलेगा उसमें १५ दण्ड घटाकर जो घट्यादि होगा वह दशम सारिणी में; जिस राश्यश का फल होगा—वही दशम लग्न होगा। 'कल्याण'—गीता प्रेस, गोरखपुर से प्रकाशित 'गीता-पचाग' मे भी यही मत दिया गया है "लग्नचक्रेऽर्कभांशस्थफलं स्वेष्टघटीयुतम्। तत् तिथ्यूनं भवेद्यत्र खपत्र तत् खलग्नकम्॥

(१) दंड, घड़ी (२४ मिनिट के काल) को कहते हैं।

(२) दशम' लग्न का अर्थ है—लग्न से दशम स्थान का मध्य। दशम स्थान कहिए दशम भाव कहिये एक ही बात है।

अर्थात् पृष्ठ ४३ पर जो (ग) सख्या आई है।

५८—३—५०	इसमें से
१५—०— ०	घटाइये
४३—३—५०	शेष बचे।

अव दशम लग्न सारिणी मे देखिये।**

वृश्चिक राशि के सामने २६ अश के नीचे संख्या है ४३।२।

---

* रिजिमोन्टस (२) प्लैसिडियस (३) कैम्पेनस आदि।

** यह सारिणी पुस्तक के अत में दी गई है।

इसके आगे २७ अंश के नीचे है सख्या ४३।१२*। इस कारण ४३।२ के ७ रखे राशि २६ अश और १ पल ५० विपल की रखी १२ कला, ३० विकला। कुल मिलाकर ७।२६।१२।३० यह दशम स्पष्ट हुआ। किन्तु अयनाश की १७ कला जो लग्न स्पष्ट मे से घटाई हैं वे दशम स्पष्ट से भी घटाइये। हम काम ले रहे हैं २३ अश वाली सारिणी से। यदि अप-टू-डेट आज की सारिणी होती तो यह १७ विकला घटाने की आवश्यकता नही पडती।

अत. ७—२६—१२—३०
—१७— ०
७—२५—५५—३० यह दशम स्पष्ट हुआ।

अब अन्य भाव स्पष्ट करना बताया जाता है।

	रा०	अं०	क०	वि०
हमारा लग्न स्पष्ट है.	१०	२०	२४	३०
हमारा दशम स्पष्ट है.	७	२५	५५	३०
(घटाइये या दोनो का अन्तर हुआ)	२	२४	२९	०

इसमें ६ का भाग दीजिए तो आया १४ अश, ४ कला, ५० विकला।

अब अन्य भाव स्पष्ट करने का ढग निम्नलिखित है.

दशम भाव स्पष्ट	७—२५—५५—३०
	+ ०—१४—४ ५०
दशम भाव विराम सधि / एकादश भाव प्रारम्भ	८—१०—०— २०
	+ ०—१४—४— ५०
ग्यारहवाँ भाव मध्य	८—२४—५— १०
	+ ०—१४—४— ५०

* ६ पल में १ अश तो १ पल ५० विपल में कितना? लगभग १२ कला ३० विकला आई।

ग्यारहवें भाव का अंत तथा बारहवें भाव का प्रारम्भ		९–८–१०– ०
	+	०–१४–४– ५०
बारहवें भाव का मध्य		९–२२–१४–५०
बारहवें भाव की समाप्ति तथा प्रथम भाव का प्रारम्भ	+	०–१४– ४– ५०
		१०–६–१९– ४०
	+	०–१४–४– ५०
प्रथम भाव मध्य या लग्न स्पष्ट		१०–२०–२४–३०

अब अन्य भाव स्पष्ट करने का प्रकार निम्नलिखित है

(१) द्वादश भाव और लग्न इनकी संधि मे पूरी एक राशि जोड़ने से लग्न-भाव–द्वितीय भाव के बीच की संधि आ जाती है।

यथा—	१०–६–१९–४०
जोड़िये	१ –०– ०– ०
	११–६–१९–४०

(२) द्वादश भाव के मध्य में पूरी दो राशि जोड़ने से द्वितीय भाव-मध्य आ जाता है। यथा–

९–२२–१४–५०
२– ०– ०– ०
११–२२–१४–५०

(३) द्वादश भाव तथा एकादश भाव की संधि मे पूरी तीन राशि जोड़ने से द्वितीय-तृतीय भावो के बीच की संधि आ जाती है यथा–

९–८–१०–०
३–०– ०–०
१२–८–१०–०

जब १२ से अधिक संख्या आवे तो बारह का भाग देकर शेष स्थापित कीजिए। अर्थात् ०–८–१०– ०

(४) ग्यारहवें भाव के मध्य में पूरी ४ राशि जोड़ने से तृतीय भाव-मध्य आ जाता है।

८—२४—५—१०
४—० —०— ०
०—२४—५—१०

(५) दशम और एकादश भावो की मध्य-संधि में पूरी पाँच राशि जोड़ने से तृतीय और चतुर्थ भावो की संधि आ जाती है :

८—१०—०—२०
५— ०— ०— ०
१—१०—०—२०

इस प्रकार भाव स्पष्ट कर चुकने के बाद बाकी भाव स्पष्ट निम्नलिखित प्रकार से कीजिए।

दशम भाव मध्य+६ राशि=चतुर्थ भाव मध्य

१० व ११ भावों की संधि+६ राशि=४ तथा ५ भावों की संधि

एकादश भाव मध्य+६ राशि=पंचम भाव मध्य

११ तथा १२ भावों की संधि+६ राशि=५-६ भावों की संधि

द्वादश भाव मध्य+६ राशि=षष्ठ भाव मध्य

१२ तथा १ भाव की संधि+६ राशि=६-७ भावों की संधि

लग्न स्पष्ट+६ राशि=सप्तम भाव मध्य

लग्न-द्वितीय भावो की संधि+६ राशि=७ तथा ८ भावों की संधि

द्वितीय भाव मध्य+६ राशि=अष्टम भाव मध्य

२ तथा ३ भावो की संधि+६ राशि=८ तथा ९ भावों की संधि

तृतीय भाव मध्य+६ राशि=नवम भाव मध्य

३ तथा ४ भावों की संधि+६ राशि=९ तथा १० भावों की संधि

इस प्रकार गणित करके भाव-स्पष्ट-चक्र निम्न प्रकार से लिखा जाता है।

नोट—जो पहले भाव की विराम संधि है वह आगे के भाव की प्रारम्भ-संधि होती है अर्थात् संधि पर एक भाव खतम होता है व दूसरा शुरू होता है।

भाव-चक्र

	तनु(१)	स०	धन(२)	स०	सहज(३)	स०	सुख (४)	सं०
राशि	१०	११	११	०	०	१	१	२
अश	२०	६	२२	८	२४	१०	२५	१०
कला	२४	१९	१४	१०	५	०	५५	०
विकला	३०	४०	५०	०	१०	२०	३०	२०
	सुत(५)	स०	रिपु(६)	स०	जाया(७)	स०	आयु(८)	स०
राशि	२	३	३	४	४	५	५	६
अश	२४	८	२२	६	२०	६	२२	८
कला	५	१०	१४	१९	२४	१९	१४	१०
विकला	१०	०	५०	४०	३०	४०	५०	०
	भाग्य (९)	स०	कर्म (१०)	स०	आय (११)	स०	व्यय (१२)	स०
राशि	६	७	७	८	८	९	९	१०
अश	२४	१०	२५	१०	२४	८	२२	६
कला	५	०	५५	०	५	१०	१४	१९
विकला	१०	२०	३०	२०	१०	०	५०	४०

जन्म-कुण्डली बनाते समय बहुत से लोग (१) तनु, (२) धन, (३) सहज (भाई बहन), (४) सुख, (५) सुत, (६) रिपु, (७) जाया (पत्नी), (८) आयु, (९) भाग्य, (१०) कर्म, (११) आय, (१२) व्यय—इन भावो के नाम या भावों के नाम का प्रथम अक्षर लिख देते हैं। कोई-कोई ज्योतिषी १, २, ३, ४ . . . भावो की यह सख्या—लाल रोशनाई से लिख देते हैं, जिससे नीचे जो राशि, अश, कला, विकला की सख्या काली रोशनाई से लिखी है उससे भिन्न रहे।

सातवाँ प्रकरण

ग्रह स्पष्ट करना

अब ग्रह स्पष्ट करना बताया जाता है। पिछले पंचांगों में प्राय: प्रत्येक आठवें दिन के ग्रह स्पष्ट दिये रहते थे। अर्थात् यदि भाद्र-कृष्ण प्रतिपद् को सूर्योदय के उपरांत ३० घड़ी के ग्रह दिये गए हैं तो एक सप्ताह बाद के अर्थात् भाद्रकृष्ण अष्टमी को सूर्योदय के ३० घडी बाद के भी स्पष्ट ग्रह दिये जाते थे। इस बीच में यदि किसी का जन्म हो तो त्रैराशिक या अनुपात से, ग्रह कितना चला यह निकाल कर बीच के किसी दिन की ग्रह-स्थिति निर्धारित की जाती थी। किन्तु इस प्रकार के ग्रह स्पष्टो से जो जन्म के समय के ग्रह स्पष्ट किये जाते थे उनमें प्राय अशुद्धि हो जाती थी। इसका कारण क्या ? इसका कारण यही है कि यदि ग्रह सात दिन तक एक ही रफ्तार से चलता रहे तब तो साढ़े तीन दिन के बाद वह ठीक मध्य में आजावेगा। किन्तु यदि उसकी रफ्तार क्रमश अधिक हो रही है या कम हो रही है तो साढे तीन दिन के बाद वह ठीक बीच में नही आवेगा। जिन पचांगों में प्रत्येक सात दिन के बाद के या यो कहिये ७×६०=४२० घड़ी की गति एक साथ दी है वहाँ औसत गति निकालने का जरिया ही और क्या है ? बुध इत्यादि ग्रहो की रफ्तार में प्रतिदिन अन्तर पड़ता है। इस कारण ऐसे पचागो के आधार पर जो ग्रह-स्थिति—कठिन गणित करके भी लाई जाती थी वह भी सदिग्ध रहती थी।

इसी दोष के निराकण के लिए अग्रेजी पचागों की नकल पर अब प्राय: भारतीय पचाग भी ग्रहो की दैनिक स्थिति देने लगे हैं। अर्थात् आज प्रात:काल साढ़े पाँच बजे सूर्य, चन्द्र, मगल आदि की स्थिति—राशि, अश, कला देते हैं तो २४ घटे बाद की अर्थात् कल

साढे पाँच वजे की स्थिति भी राशि, अंश, कला सहित दी रहती है। अब प्रत्येक २४ घंटे के वाद की ग्रह-स्थिति मालूम होने से वीच के किसी समय की स्थिति का ज्ञान बहुत सुगम हो गया है। उदाहरण के लिए हमें २३ सितम्बर, १९५८ को सायकाल ५½ वजे कौनसा ग्रह कहाँ था—किस राशि, अंश, कला में था—यह मालूम करना है। श्री एन० सी० लहरी के पचांग से २३ सितम्बर, १९५८ के प्रात.काल ५½ वजे के तथा २४ सितम्बर, १९५८ के प्रात काल के ५½ वजे के ग्रह स्पष्ट नीचे दिये जाते हैं·

	२३-९-५८ को ५½ बजे प्रातः (क) रा० अं० क० वि०	२४-९-५८ को ५½ बजे प्रातः (ख) रा० अं० क० वि०
सूर्य	५— ६— १०—४६	५ — ७— ९—३०
चन्द्रमा	९— १०— ५६—३०	९ —२३—३२—२१
मंगल	१— ७— ९	१ — ७—२२
बुध	४— २५— ४९	४ — २७—३९
बृहस्पति	६— ९— ४१	६ — ९—५३
शुक्र	४— २३— २४	४ — २४—३९
शनि	७— २६— ३२	७ — २६—३५
राहु	५— २९— २	५ — २९— २
केतु	११— २९— २	११ — २९— २

उपर्युक्त स्पष्ट ग्रहो के आधार पर दैनिक गति (२४ घंटे या ६० घड़ी की गति) निम्नलिखित आती है :

	(ग) २४ घंटे की गति अंश—कला—विकला	(घ) १२ घंटे की गति अंश—कला—विकला
सूर्य	०— ५८—२४	०— २९—१२
चन्द्रमा	१२— ३५—५१	६— १७—५५—३०
मंगल	०— १३— ०	०— ६—३०
बुध	१— ५०— ०	०— ५५— ०

बृहस्पति	०— १२— ०	०— ६— ०
शुक्र	१— १५— ०	०— ३७—३०
शनि	०— ३— ०	०— १—३०

राहु } मध्यम राहु तथा केतु की वक्रगति
केतु } प्राय ३ कला ११ विकला होती है।

(स्पष्ट राहु और केतु की गति अवश्य है किन्तु विकलाओं मे होने के कारण उपर्युक्त पचाग मे नही दी गई है। इस कारण २३-९-५८ को सायकाल ५½ बजे भी हम स्पष्ट राहु ५-२९-२ तथा स्पष्ट केतु ११-२९-२ लिखेगे।)

अब हमे २३ सितम्बर, १९५८ के प्रातः ५½ बजे के स्पष्ट ग्रह मालूम हैं तो उनमें १२ घटे की गति जोड़ने से सायकाल ५½ बजे के स्पष्ट ग्रह मालूम हो जावेगें।

(क) मे (घ) जोड़ने से ता० २३-९-५८ के सायकाल के स्पष्ट ग्रह निम्नलिखित हुए॰

	रा० अ० क० वि० प्र०
सूर्य	५— ६— ३९—५८
चन्द्रमा	९—१७— १४—२५—३०
मगल	१— ७— १५—३०
बुध	४—२६— ४४
बृहस्पति	६— ९— ४७
शुक्र	४—२४— १—३०
शनि	७—२६— ३३—३०
राहु	५—२९— २
केतु	११—२९— २

प्रस्तुत उदाहरण में २३ तारीख को प्रात·काल के साढ़े पाँच बजे के स्पष्ट ग्रह पचांग में दिये गए हैं और हमें ठीक बारह घंटे

नोट—जो ग्रह वक्री होते हैं अर्थात् जो उलटे चलते हैं, जिनकी गति विपरीत दिशा में होती है उनकी गति वटाई जाती है तथा अन्य ग्रहों की गति जोड़ी जाती है।

वाद के स्पष्ट ग्रह मालूम करने हैं इस कारण स्पष्ट ग्रह गणित वहुत सरल हो गया, क्योंकि १२ घटे की गति २४ घटे की गति की ठीक आधी होती है। यदि हमे किसी अन्य समय के स्पष्ट ग्रह मालूम करने हैं—मान लीजिये दिन के दो वजकर २३ मिनिट के समय के स्पष्ट ग्रह मालूम करने हो तो कैसे करेंगे ?

	घ० मि०
दिन के २ वजकर २३ मिनिट) (रेलवे घटे के अनुसार)	१४—२३
घटाइये (क्योंकि ५॥ वजे के स्पष्ट ग्रह पचाग मे दिये गए हैं)	५—३०
शेष	८—५३

हमे ५॥ वजे प्रात.काल के स्पष्ट ग्रह मालूम हैं। यदि ८ घटे ५३ मिनिट मे प्रत्येक ग्रह कितना चला यह गणित कर लिया जावे और उस ८ घटे ५३ मिनिट की गति को ५॥ वजे की स्थिति मे जोड दिया जावे तो दिन के २ वजकर ५३ मिनिट के ग्रह स्पष्ट मालूम हो जायेंगे। *

चलित चक्र वनाना

भाव स्पष्ट तथा ग्रह स्पष्ट करने के वाद चलित चक्र वनाना चाहिये। चलित चक्र का अर्थ यह है कि मान लीजिये आपका लग्न है मेष राशि का १ अश और कोई ग्रह मीन राशि के २९ अश पर है तो उसे आप निम्नलिखित रूप से कुण्डली मे लिखेंगे।

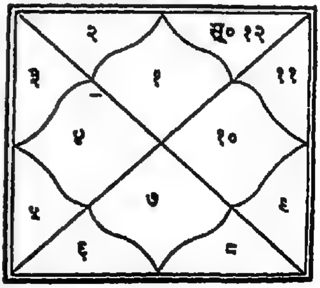

यहाँ यद्यपि सूर्य मीन राशि

* २४ घण्टे की गति मालूम ही है। २४ घण्टे मे ग्रह इतना चलता है तो ८ घण्टे ५३ मिनिट में कितना चलेगा यह त्रैराशिक से निकाल लेना चाहिए।

मे है इसका कारण लग्न-राशि—मेष से द्वादश राशि में हुआ किन्तु लग्न का अश है मेष राशि का १ अश और सूर्य के अश हैं मीन राशि के २६ अश—वास्तव में लग्न मध्य और सूर्य में २ अश का अन्तर होने से सूर्य लग्न का फल करेगा द्वादश भाव का नही।

जो उदाहरण कुण्डली हमने पृष्ठ ४४ पर दी है अब उसका चलित चक्र वनाइये।

ग्रह स्पष्ट के लिए देखिये पृष्ठ ५२ और भाव स्पष्ट के लिए देखिये पृष्ठ ४६।

सूर्य स्पष्ट ५–६–३६–५८ है। ५–६–१४–४० पर अष्टम भाव प्ररम्भ हो जाता है इसलिये सूर्य को लग्न से आठवे भाव मे रखिये। चन्द्र स्पष्ट ६–१७–१४–२५ है—व्ययभाव (१२वाँ भाव) ६–८–१०–० पर प्रारभ हो जाता है इस कारण चन्द्रमा को १२ वे भाव मे रखा। मगल स्पष्ट १–७–१५–३० है। भाव स्पष्ट चक्र देखने से पता चलता है कि तृतीय भाव १–१०–०–२० पर समाप्त होता है इस कारण मगल को तृतीय भाव में रखा। बुध स्पष्ट ४–२६–४४ है और सप्तम भाव की अतिम सीमा ५–६–१४–४० है इस कारण बुध को सप्तम भाव मे रखा। बृहस्पति स्पष्ट ६–६–४७ हैं और ६–८–१०–० पर नवाँ भाव प्रारम्भ हो जाता है इस कारण बृहस्पति को नवे भाव मे रखा। शुक्र स्पष्ट ४–२४–१–३० हैं इसे सप्तम मे रखा क्योकि सप्तम भाव प्रारभ होता है ४–६–१८–४० पर और समाप्त होता है ५-६-१४-४० पर इसके बीच मे शुक्र है। शनि स्पष्ट है ७-२६-३३-३०। दशम भाव की अंतिम सीमा हैं ८-१०-०-२०। इससे न्यून होने के कारण शनि को दशम भाव मे रखा। राहु ५–२६–२ है। अष्टम भाव ६–८–१० पर समाप्त होता है इस कारण राहु को अष्टम भाव में रखा। अब नीचे लिखे अनुसार चलित कुण्डली लिखिए

चलित चक्रम्

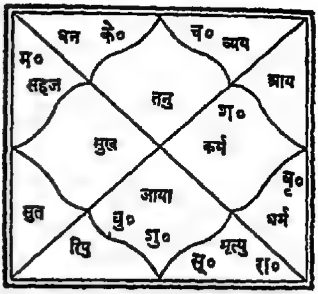

तनु का अर्थ है शरीर। प्रथम भाव से शरीर, विचार किया जाता है इस कारण इसे "तनु" कहते हैं द्वितीय भाव से धन का विचार किया जाता है इसलिये इसे धन कहते हैं इसी प्रकार अन्य भावो के नाम रक्खे गये हैं।

जैसी पृष्ठ ५५ पर कुण्डली वनाई थी—करीव-करीव वैसी ही तैयार हुई। केवल मगल की स्थिति मे भिन्नता हो गई। चलित चक्र मे मगल तृतीय भाव मे है इस कारण तृतीय भाव का फल करेगा।

इसके वाद नैसर्गिक मैत्रीचक्र, तात्कालिक मैत्रीचक्र तथा पचधा मैत्रीचक्र वनाने चाहिए यह प्रक्रिया ३४, ३५, ३६, ३७ पृष्ठो पर वता दी गई हैं। इसके वाद षड्वर्ग या सप्तवर्ग कुण्डली वनानी चाहिए। यह आगे के प्रकरण मे वताया जा रहा है।

आठवाँ प्रकरण

षड्वर्ग या सप्तवर्ग बनाना

"जातकाभरण" मे लिखा है :

"लग्ने नूनं चिन्तयेद् देहभावं होरायां वै संपदाद्यं सुखं च,
द्रेष्काणे स्याद्भ्रातृजं भावरूपं स्यात् सप्तांशे सन्ततेः पुत्रपौत्र्याः।
नूनं नवांशेऽपि कलत्रभावं स्याद्द्वादशांशे पितृ-मातृ सौख्यं,
त्रिंशांशके कष्टतरं विचिन्त्यमेवं हि षड्वर्गजं रूपमुक्तम्।"

नोट—यह याद रखिये ग्रह-भाव मध्य के जितने समीप होगा उतना ही उस भाव का अधिक फल करेगा। जितना ग्रह, भाव मध्य से दूर होगा उतना ही उस भाव का कम फल होगा।—जो दो भावों की संधि पर ग्रह होता है वह प्रायः निष्फल होता है और किसी भी भाव का फल करने में अक्षम हो जाता है।

अर्थात् लग्न से तनुभाव का (शरीर का) विचार करना, होरा से धन-सम्पत्ति का विचार करना चाहिए, द्रेष्काण से भ्रातृ-सुख और सप्ताश कुण्डली से पुत्र-पौत्र आदि संतति का विचार करना उचित है। नवाश कुण्डली में स्त्री-सुख का विचार करे और द्वादशांश कुण्डली मे माता-पिता के सुख का विचार करना उचित है। त्रिशाश कुण्डली मे विशेष कष्ट की बातो का विचार करना चाहिए। आजकल जन्मपत्रो में लग्न कुण्डली, होरा कुण्डली, द्रेष्काण कुण्डली सप्ताश कुण्डली, नवांश कुण्डली, द्वादशाश कुण्डली और त्रिशांश कुण्डलियाँ बनी रहती हैं, परन्तु उपर्युक्त बातो का विचार करने की प्रणाली उठ-सी गई है। हाँ, एक बात मात्र शेप रह गई है। जो ग्रह लग्न, होरा, द्रेष्काण, सप्तमाश, नवाश, द्वादशांश और त्रिशाश में बलवान् (उच्च क्षेत्री, स्वक्षेत्री, अधिमित्र क्षेत्री या मित्र क्षेत्री) होता है वह शुभ फल देने मे विशेष समर्थ होता है। जो ग्रह निर्बल (नीच क्षेत्री, अधिशत्रु क्षेत्री या शत्रु क्षेत्री) होता है वह कष्ट विशेष देता है, शुभफल कम देता है।

यह जो होरा-द्रेष्काण इत्यादि बताये गए हैं इन्हे वर्ग कहते हैं। किन्तु सब वर्गों की बराबर महिमा नही है। किसी-किसी के विचार से राशि को जितना महत्व दिया जावे, नवाश को उसका आधा महत्व देना चाहिए और अन्य वर्गों को राशि का चौथाई महत्व देना उचित है। किन्तु मन्त्रेश्वर ने अपनी 'फल दीपिका' नामक पुस्तक मे लिखा है कि बहुत से ज्योतिषियो के मत से नवाश को वही महत्व देना चाहिए जो राशि को। कुछ लोग इससे भी आगे बढ गये हैं। वे कहते हैं कि नवाश को राशि से भी अधिक महत्व देना चाहिए। राशि वृक्ष के समान है; नवाश फल के समान। छोटे वृक्ष में कलमी आम आ सकता है। परिणाम उत्तम, सुगन्ध युक्त, सरस

नोट—क्षेत्र का अर्थ राशि होता है। स्वराशि, स्वक्षेत्री, स्वगृही आदि का एक ही अर्थ होता है।

आम का फल। लम्बे और बड़े सघन आम के वृक्ष मे भी छोटे-छोटे खट्टे आम आ सकते हैं। परिणाम—खट्टा आम। यह तो बात बहुत प्रामाणिक रूप से कही गई है कि यदि ग्रह उच्च राशि मे हो किन्तु नीच नवांश मे हो तो अशुभ फल करता है। इसके विपरीत यदि ग्रह नीच राशि मे हो किन्तु उच्च नवांश में हो तो उत्तम फल करता है।

कहने का तात्पर्य यह है कि नवांश की बहुत अधिक महिमा है। 'बृहत्पाराशर होराशास्त्र' में लिखा है :—

लग्नहोराद्रृकाणांकभागसूर्यांशका इति।
त्रिंशांशकश्च षड्वर्गा अत्र विशेषकाः क्रमात्॥
रसनेत्राब्धिपंचाश्विभूमयः सप्तवर्गके।
ससप्तमांशके तत्र विश्वकाः पंच लोचनम्॥
त्रयं सार्द्धं द्वयं सार्द्धंवेदा द्वौ रात्रिनायकः।
स्थूलं फलं च संस्थाप्य तत्सूक्ष्मं च ततस्ततः॥

अर्थात् षड्वर्ग तथा सप्तवर्ग में भिन्न-भिन्न वर्गों को निम्नलिखित अनुपात से महत्व देना चाहिए :

यदि षड्वर्ग का विचार करना हो		यदि सप्तवर्ग का विचार करना हो	
लग्न	६	लग्न	५
होरा	२	होरा	२
द्रेष्काण	४	द्रेष्काण	३
नवांश	५	सप्तमांश	२॥
द्वादशांश	२	नवांश	४॥
त्रिंशांश	१	द्वादशांश	२
		त्रिंशांश	१
	२०		२०

अब यह बताया जाता है कि होरा आदि किसे कहते हैं। यदि किसी राशि के दो भाग किये जावे तो १५–१५ अंश के दो भाग हुए। इसे 'होरा' कहते हैं। एक राशि में दो होरा होती हैं।

यदि एक राशि के तीन भाग किये जावे तो १०-१० अंश का एक-एक भाग हुआ। प्रत्येक भाग को 'द्रेष्काण' कहते हैं।

यदि एक राशि के ७ भाग किए तो प्रत्येक भाग ३०/७ = ४ अंश, १७ कला, ८ विकला, ३४ प्रतिविकला के करीब हुआ। इसे 'सप्तमांश' कहते है।

यदि एक राशि को ९ हिस्सो मे विभाजित करे तो प्रत्येक भाग ३ अंश २० कला का हुआ। प्रत्येक भाग को 'नवांश' कहते हैं।

यदि एक राशि को १२ बराबर हिस्सो में विभाजित करे तो प्रत्येक भाग २ अंश ३० कला का होगा। इसे 'द्वादशांश' कहते हैं।

'त्रिशांश' में कुछ भिन्नता है। नाम तो त्रिशांश है किन्तु एक राशि के ५ हिस्से किए जाते हैं। जो ऊनी राशियाँ हैं उनमे ५ अंश तक का अधिपति मंगल, ६ से १० तक का अधिपति शनैश्चर; ११ से १८ तक का बृहस्पति, १९ से २५ तक का बुध, २६ से ३० तक का अधिपति शुक्र होता है। किन्तु जो सम राशियाँ हैं उनमें १ से ५ तक का शुक्र; ६ से १२ तक का बुध; १३ से २० तक का बृहस्पति, २१ से २५ तक का शनि और २६ से ३० का अधिपति मंगल होता है। नीचे होरा, द्रेष्काण आदि के चक्र दिए जाते हैं।

होरा

मे०	वृ०	मि०	क०	सिं०	क०	तु०	वृ०	ध०	म०	कु०	मी०	रा०	
सू०	च०	सू०	च०	सू०	च०	सू०	च०	सू०	च०	सू०	च०	अ०	१५
च०	सू०	च०	सू०	च०	सू०	च०	सू०	च०	सू०	च०	सू०	अ०	३०

उदाहरण :—जो उदाहरण कुण्डली पाँचवे प्रकरण मे दी गई है उसमें लग्न के २० अंश से अधिक हैं। इस कारण होरा लग्न चन्द्रमा का हुआ अर्थात् कर्क होरा हुआ। सूर्य कन्या राशि में है। पहले १५ अंशो में है इस कारण चन्द्र होरा मे हुआ। चन्द्रमा

मकर राशि में है, अन्तिम १५ अंशो मे है इस कारण सूर्य होरा मे हुआ। मगल वृषभ राशि मे प्रथम १५ अंशो मे है इस कारण चन्द्र होरा मे हुआ। बुध सिंह राशि मे अन्तिम १५ अंशो मे है इस कारण चन्द्र होरा मे हुआ। बृहस्पति तुला राशि के प्रथम आधे हिस्से में है इसलिए सूर्य होरा मे हुआ। शुक्र सिंह के अन्तिम १५ अंशो में है इस कारण चन्द्र-होरा मे हुआ। शनि वृश्चिक के अन्तिम १५ हिस्सो में है इस कारण सूर्य होरा मे हुआ।

अब होरा कुण्डली इस प्रकार हुई . सूर्य की राशि ५ है, अर्थात् सिंह है। चन्द्रमा की राशि ४ अर्थात् कर्क है। इस होरा कुण्डली मे ग्रह इस प्रकार से स्थापित किये जावेगे।

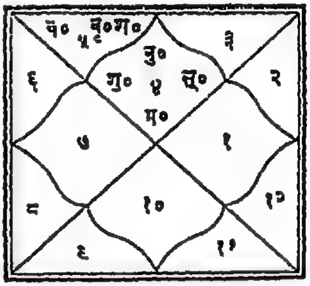

द्रेष्काण चक्र

मे०	वृ०	मि०	क०	सि०	क०	तु०	वृ०	ध०	म०	कु०	मी०	रा०	
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१ से	१० अंश
५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	११ से	२० अंश
९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	२१ से	३० अंश

उदाहरण कुण्डली मे लग्न कुम्भ के तृतीय द्रेष्काण (७) मे, सूर्य कन्या के प्रथम द्रेष्काण (६) मे, चन्द्रमा मकर के द्वितीय द्रेष्काण (२) मे, मगल वृषभ के प्रथम द्रेष्काण (वृषभ) मे; बुध-सिंह के अन्तिम द्रेष्काण (१) मे, बृहस्पति तुला के प्रथम द्रेष्काण

१. मेष के नीचे १ (मेष) ५ (सिंह) ९ (धनु) आदि संख्याएँ राशि बोधक हैं।

(७) मे; शुक्र सिह के अन्तिम द्रेष्काण (१) में तथा शनि वृश्चिक के अन्तिम द्रेष्काण (४) में हैं।

(प्रथम द्रेष्काण ० अंश से १० अंश तक; द्वितीय द्रेष्काण ११ वे अंश के प्रारम्भ से २०वे अंश तक; तथा तृतीय द्रेष्काण २१ वे अंश के प्रारम्भ से ३० वे अंश के अन्त तक होता है।)

इस कारण द्रेष्काण कुण्डली निम्नलिखित हुई :

द्रेष्काण कुण्डली

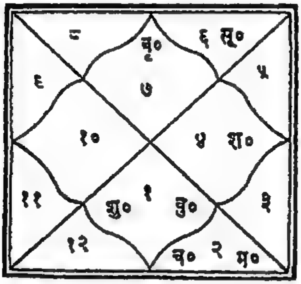

सप्तमांश चक्र

	मे०	वृ०	मि०	क०	सि०	क०	तु०	वृ०	ध०	म०	कु०	मी०	रा०	अं० क० वि० तक
प्रथम भाग	१	८	३	१०	५	१२	७	२	९	४	११	६		४-१७-८
द्वितीय भाग	२	९	४	११	६	१	८	३	१०	५	१२	७		८-३४-१६
तृतीय भाग	३	१०	५	१२	७	२	९	४	११	६	१	८		१२-५१-२४
चतुर्थ भाग	४	११	६	१	८	३	१०	५	१२	७	२	९		१७-८-३२
पंचम भाग	५	१२	७	२	९	४	११	६	१	८	३	१०		२१-२५-४०
षष्ठ भाग	६	१	८	३	१०	५	१२	७	२	९	४	११		२५-४२-४८
सप्तम भाग	७	२	९	४	११	६	१	८	३	१०	५	१२		३०अंश तक

उदाहरण कुण्डली में सप्तमांश कुंडली निम्नलिखित होगी :

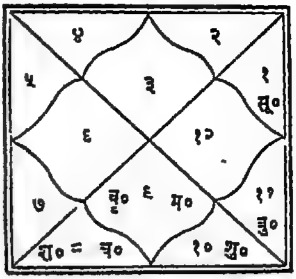

लग्न कुम्भ है इस कारण 'कुम्भ' के नीचे देखिये लग्न के अंश २०-२४ हैं—यह पचम भाग मे है (क्योकि पचम भाग १७-८-३२ (अं० क० वि०) से २१-२५-४० (अं० क० वि०) तक है) पचम भाग के सामने—कुम्भ के नीचे '३' लिखा है इसलिए द्रेष्काण लग्न ३ या मिथुन हुआ। इसी प्रकार प्रत्येक ग्रह—किस राशि, किस अंश, कला, विकला मे है यह देख कर—जिस-जिस द्रेष्काण में हैं—उस-उस में स्थापित किये गए हैं।

अब नवांश चक्र दिया जाता है .

	मे०	वृ०	मि०	क०	सि०	क०	तु०	वृ०	ध०	म०	कु०	मी०	राशि अं० क०
प्रथम भाग	१	१०	७	४	१	१०	७	४	१	१०	७	४	३-२० तक
द्वितीय भाग	२	११	८	५	२	११	८	५	२	११	८	५	६-४० ,,
तृतीय भाग	३	१२	९	६	३	१२	९	६	३	१२	९	६	१०-० ,,
चतुर्थ भाग	४	१	१०	७	४	१	१०	७	४	१	१०	७	१३-२० ,,
पचम भाग	५	२	११	८	५	२	११	८	५	२	११	८	१६-४० ,,
षष्ठ भाग	६	३	१२	९	६	३	१२	९	६	३	१२	९	२०-० ,,
सप्तम भाग	७	४	१	१०	७	४	१	१०	७	४	१	१०	२३ २० ,,
अष्टम भाग	८	५	२	११	८	५	२	११	८	५	२	११	२६-४० ,,
नवम भाग	९	६	३	१२	९	६	३	१२	९	६	३	१२	३०-० ,,

अब उदाहरण कुण्डली का नवाश चक्र दिया जाता है। पृष्ठ ५२ पर स्पष्ट ग्रह दिये हुए हैं। कुम्भलग्न है। २० से अधिक अश हैं, इस कारण सप्तम नवाश में लग्न पड़ा। २० अश से प्रारम्भ कर २३

नोट—ऊपर १, २, ३, ४ आदि संख्या राशियो की द्योतक है। जैसे '१' का अर्थ मेष।

अंश २० कला तक सप्तम नवांश होता है। यह पीछे के चक्र से स्पष्ट है। अब कुम्भ के नीचे और सप्तम भाग के सामने देखिए। संख्या '१' है अर्थात् मेष नवांश हुआ। इसी तरह अन्य ग्रह स्थापित कीजिए।

नवांश कुण्डली

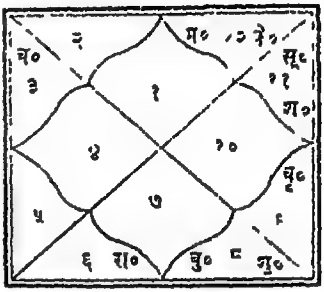

षड्वर्ग कुण्डली में प्रायः राहु, केतु नही लगाते हैं। किन्तु नवांश कुण्डली का विचार करते समय दक्षिण भारत मे राहु-केतु को भी नवांश कुण्डली मे स्थापित कर लग्न-कुण्डली की भाँति नवांश कुण्डली का भी विचार किया जाता है। इस कारण ऊपर नवांश कुण्डली में राहु-केतु भी लगा दिये गए हैं।

यदि कोई ग्रह जिस राशि मे हो उसी नवांश में भी हो तो वह 'वर्गोत्तम' मे कहलाता है। उदाहरण के लिए राहु जन्म-कुण्डली मे भी कन्या राशि मे है और नवांश कुण्डली मे भी कन्या मे, इस कारण वर्गोत्तम मे हुआ। ज्योतिष शास्त्र में वर्गोत्तम की बहुत महिमा बखान की गई है। कहते हैं कि "वर्गोत्तम वैसा ही शुभ फल करता है जैसा कि स्वक्षेत्रीय या स्वगृही ग्रह।" ऊपर नवांश कुण्डली देखिए। बृहस्पति धनु नवांश में है। धनु का स्वामी बृहस्पति है तथा शनि कुम्भ मे है। कुम्भ का स्वामी शनि ही है। इस कारण बृहस्पति और शनि दोनो अपने-अपने नवांश में होने के कारण बलवान् हुए।

अब द्वादशांश कुण्डली बनाना बताया जाता है।

द्वादशांश चक्र

	मे०	वृ०	मि०	क०	सि०	क०	तु०	वृ०	ध०	म०	कु०	मी०	राशि अ० क०
प्रथम भाग	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	२-३० तक
द्वितीय भाग	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	५-० ,,
तृतीय भाग	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	७-३० ,,
चतुर्थ भाग	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	१०-० ,,
पंचम भाग	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	१२-३० ,,
षष्ठ भाग	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	१५-० ,,
सप्तम भाग	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	१७-३० ,,
अष्टम भाग	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	२०-० ,,
नवम भाग	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	२२-३० ,,
दशम भाग	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	२५-० ,,
एकादश भाग	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	२७-३० ,,
द्वादश भाग	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	३०-० ,,

अब प्रस्तुत उदाहरण कुण्डली का द्वादशांश चक्र बनाते हैं। लग्न के २० अंश २४ कला हैं। यह द्वादशांश चक्र में नवम भाग हुआ। इस कारण कुम्भ लग्न के नीचे (क्योंकि जन्म-कुण्डली में कुम्भ लग्न है) और नवम भाग के सामने वाले कोष्ठ मे देखिये, कौनसी संख्या है? '७' संख्या है इसका अर्थ हुआ कि द्वादशांश लग्न तुला है। इसी प्रकार अन्य ग्रहो की राशि और अंशो को देखने से निम्नलिखित द्वादशांश कुण्डली तैयार होगी।

नोट—ऊपर चक्र मे १, २, ३, ४ आदि राशि-बोधक संख्याएँ है, यथा ४ का अर्थ है कर्क।

द्वादशांश कुण्डली

देखिए द्वादशांश कुण्डली में बुध और शुक्र दोनों तो अपनी-अपनी राशि के हैं, किन्तु मंगल और बृहस्पति ये दो ग्रह नीच राशि के हो गये। अब 'त्रिशांश' कुण्डली बनाना बताया जाता है।

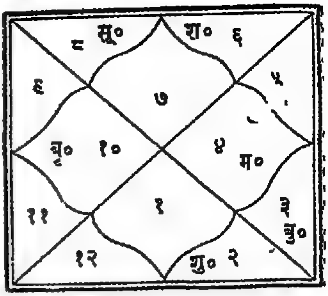

त्रिशांश कुण्डली चक्र

	मे०	वृ०	मि०	क०	सिं०	क०	तु०	वृ०	ध०	म०	कुं०	मी०
प्रथम भाग	१	२	१	२	१	२	१	२	१	२	१	२
द्वितीय भाग	११	६	११	६	११	६	११	६	११	६	११	६
तृतीय भाग	९	१२	९	१२	९	१२	९	१२	९	१२	९	१२
चतुर्थ भाग	३	१०	३	१०	३	१०	३	१०	३	१०	३	१०
पंचम भाग	७	८	७	८	७	८	७	८	७	८	७	८

इसके आधार पर उदाहरण कुण्डली (जिसके स्पष्ट ग्रह ५२ पृष्ठ पर दिये गए है) की त्रिशांश कुण्डली निम्नलिखित हुई :

त्रिशांश कुण्डली

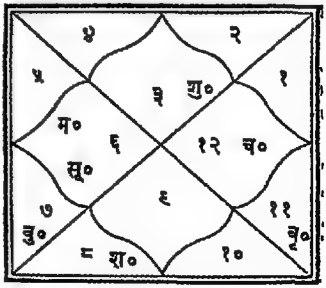

विषम (मे० मि० सि० तु० ध० कुं०) में प्रथम भाग ५ अंश तक, दूसरा १० अंश तक तीसरा १८ अंश तक, चौथा २५ अंश तक, पांचवां ३० अंश तक होता है। सम (वृ० क० क० वृ० म० मी०) राशियो मे प्रथम विभाग ५ अंश तक, दूसरा १२ अंश तक, तीसरा २० अंश तक, चौथा २५ अंश तक, पांचवां ३० अंश तक होता है।

ऊपर द्वादशांश कुण्डली में चन्द्रमा मंगल के साथ होना चाहिये।

वहुत से ज्योतिषी स्पष्ट ग्रह तथा भिन्न-भिन्न वर्ग सव एक साथ निम्नलिखित प्रकार से तैयार करते हैं .

सप्तवर्गी चक्र

	स्पष्ट ग्रह	राशि	होरा	द्रेष्काण	सप्तमांश	नवमांश	द्वादशांश	त्रिंशांश
लग्न	१०-२०-२४-३०	११	४	७	३	१	७	३
सूर्य	५-६-३९-५८	६	४	६	१	११	८	६
चन्द्र	९-१७-१४-२५	१०	५	२	८	३	४	१२
मंगल	१-७-१५-३०	२	४	२	९	१२	४	६
बुध	४-२६-४४	५	४	१	११	८	३	७
वृहस्पति	६-९-४७	७	५	७	९	९	१०	११
शुक्र	४-२४-१-३०	५	४	१	१०	८	२	३
शनि	७-२६-३३-३०	८	५	४	८	११	६	८

इसमें एक साथ ही यह दृष्टिगोचर हो जाता है कि प्रत्येक ग्रह भिन्न-भिन्न वर्ग मे कहाँ है ।

नवाँ प्रकरण

किस भाव से क्या विचार करना चाहिए

छठे प्रकरण में भाव स्पष्ट करना वताया गया है । जन्म-कुण्डली मे कौनसा भाव कहाँ होता है—यह साथ के चित्र से स्पष्ट होगा ।

भिन्न-भिन्न जन्म-कुण्डली में भिन्न-भिन्न भावों में भिन्न-भिन्न राशियाँ होती हैं—किन्तु लग्न मे कोई ग्रह पड़ा हो तो वह सदैव प्रथम भाव मे ही रहेगा ।

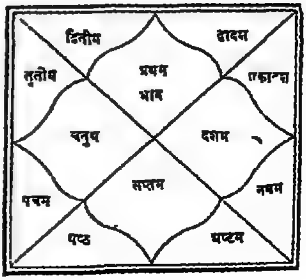

भाव मध्य, जिस राशि में पड़े उस राशि का स्वामी 'भावेश' (भाव का ईश) कहलाता है। अकसर बोल-चाल की भाषा में नवम भावेश की जगह 'नवमेश', पचम भावेश की जगह 'पंचमेश' कहते हैं। 'षष्ठ भावाधिपति', 'षष्ठभावेश' या 'षष्ठेश'—सब एक ही बात है। केवल पदावली मे अन्तर है।

किस भाव से क्या विचार करना है यह प्रश्न प्रकरण में पृथक् बताया जायगा। यहाँ जन्म-कुण्डली में किस स्थान से क्या विचार करना यह बताया जाता है।

प्रथम भाव—देहं रूपं च ज्ञानं च वर्णं चैव बलाबलम्।
सुखं दुःखं स्वभावञ्च लग्नभावान्निरीक्षयेत्॥

अर्थात् शरीर, रूप, ज्ञान, शरीर का रंग, बलाबल, सुख-दुःख तथा स्वभाव का विचार प्रथम भाव से करना चाहिए।

द्वितीय भाव—धनधान्यं कुटुम्बांश्च मृत्युजालममित्रकम्।
धातुरत्नादिकं सर्वं धनस्थानान्निरीक्षयेत्॥

अर्थात् धन-धान्य, कुटुम्ब, मृत्यु, अमित्र (शत्रु आदि), धातु (सोना चाँदी आदि सम्पत्ति), रत्न आदि का विचार द्वितीय भाव से करना चाहिए। वाणी और विद्या का स्थान भी द्वितीय माना जाता है।

तृतीय भाव—विक्रमं भृत्यभ्रात्रादि चोपदेशं प्रयाणकम्।
पित्रोर्वा मरणं विज्ञो दुश्चिक्याच्च निरीक्षयेत्॥

अर्थात् पराक्रम, नौकर, भाई (बहन) आदि, उपदेश, सफर करना (छोटी-मोटी यात्रा), माता-पिता की मृत्यु का विचार तृतीय से करना चाहिए।

चतुर्थ भाव—वाहनान्यथ बन्धूंश्च मातृसौख्यादिकान्यपि।
निधिं क्षेत्रं गृहं चापि चतुर्थात् परिचिन्तयेत्॥

अर्थात् सवारी, बन्धु, माता, सुख, निधि खेत, घर मकान आदि का विचार चतुर्थ से करना उचित है।

पंचम भाव—यन्त्र-मन्त्रौ तथा विद्यां बुद्धेश्चैव प्रबन्धकम् ।
पुत्रराज्यापभ्रंशादीन् पश्येत् पुत्रालयाद् बुधः ॥

अर्थात् मन्त्र, यन्त्र, विद्या, बुद्धि, प्रबन्ध (पुस्तक-लेखन आदि), पुत्र (कन्या भी), राज्यच्युत होना आदि का विचार पचम स्थान से करना चाहिए। इसे "पुत्र स्थान" भी कहते हैं।

षष्ठ भाव—मातुलान्तकशंकानां शत्रूंश्चैव व्रणादिकान् ।
सपत्नीमातरं चापि षष्ठभावान्निरीक्षयेत् ॥

अर्थात् मामा, रोग, शत्रु, व्रण, सौतेली माँ आदि का विचार छठे स्थान से करना चाहिए। वहुत से लोग ऋण तथा नौकरी का विचार भी छठे से करते हैं।

सप्तम भाव—जायामध्वप्रयाणं च वाणिज्यं नष्टवीक्षणम् ।
मरणं च स्वदेहस्य जायाभावान्निरीक्षयेत् ॥

अर्थात् स्त्री या पति, सफर (यात्रा), व्यापार, खोई हुई वस्तु, मारकता आदि का विचार सातवें से करना चाहिए। व्यापार आदि में जो साझेदारी में काम करे उनका विचार भी इसी स्थान से करना उचित है।

अष्टम भाव—आयुं रणं रिपुं चापि दुर्गं मृतधनं तथा ।
गत्यनुकादिकं सर्वं पश्येद्रन्ध्राद्विचक्षणः ॥

अर्थात् आयु, ऋण, शत्रु, किला, मरे हुए व्यक्ति का धन (वसीयत से प्राप्त या वीमा कम्पनी से प्राप्त), छिद्र आदि का विचार आठवे से करना उचित है। क्लेश, अपवाद, मृत्यु, विघ्न, दास, स्त्रियों का मांगल्य अर्थात् सौभाग्य का विचार भी इससे किया जाता है।

नवम भाव—भाग्यं श्यालं च धर्मं च भ्रातृपत्न्यादिकांस्तथा ।
तीर्थयात्रादिकं सर्वं धर्मस्थानान्निरीक्षयेत् ॥

अर्थात् भाग्य, धर्म, भाई की स्त्री, तीर्थ-यात्रा, साले आदि का विचार नवम स्थान से करना चाहिए। गुरु तथा आचार्य का

विचार भी इसी से किया जाता है। इस स्थान को "तपस्या" या "पुण्य" स्थान भी कहते हैं। उत्तर भारत के ज्योतिषी दशम भाव से पिता का विचार करते हैं। किन्तु दक्षिण भारत के ज्योतिषी नवम से पिता का विचार करते हैं।

दशम भाव—राज्यं चाकाशवृत्तिं च मानं चैव पितुस्तथा।
प्रवासस्य ऋणस्यापि व्योमस्थानान्निरीक्षणम्॥

अर्थात् राज्य, आकाश वृत्तान्त, सम्मान, पिता, प्रवास (दूसरे स्थान में रहना), ऋण, हुकूमत, ओहदा, पद-प्राप्ति, व्यापार, कर्म, आज्ञा आदि का विचार भी दशम से किया जाता है।

एकादश भाव—नानावस्तु भवस्यापि पुत्रजायादिकस्य च।
आयं वृद्धिं पशूनां च भवस्थानान्निरीक्षणम्॥

अर्थात् अनेक वस्तु, आय, लाभ, पुत्रवधू, वृद्धि तथा पशुओं का स्थान, प्राप्ति, प्रशंसा आदि का विचार ग्यारहवें से करना उचित है।

व्यय स्थान—व्ययं च वैरिवृत्तान्त-रिःफमन्त्यादिकं तथा।
व्ययाच्चैव हि ज्ञातव्यमिति सर्वत्र धीमता॥

अर्थात् व्यय, खर्चा, शत्रुओं का वृत्तान्त, गुप्त शत्रु, वाम नेत्र, दुःख, पैर, खुफिया पुलिस, चुगलखोर, दरिद्रता, पाप शयनसुख आदि का विचार, बारहवें से करें।

भाव-सम्बन्धी विशेष विचार—भाव का विचार करते समय यह देखना चाहिए कि उसमें छठे, आठवें, बारहवें भाव का स्वामी तो नहीं बैठा है। ६, ८, १२, भावों को दुःस्थान कहते हैं। इनके स्वामी जहाँ बैठ जायें या ६, ८ या १२ भाव में किसी भाव का स्वामी बैठ जाये तो दोनों अनिष्ट-स्थिति अर्थात् खराब फल देने वाली स्थिति समझी जाती हैं।

उदाहरणः—(१) कुण्डली नं० 'क' में ५वें घर का मालिक मंगल अष्टम में बैठा है यह पाँचवें भाव के फल (संतान सुख) को

'क'

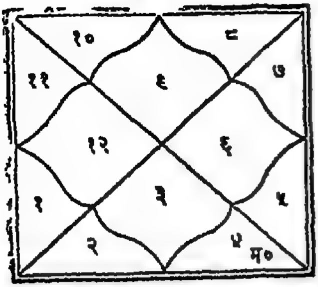

'ख'

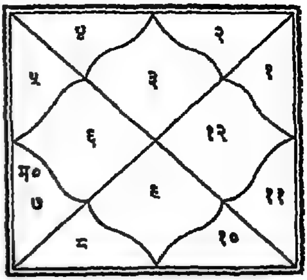

बिगाड़ता है, क्योंकि पाँचवे भाव का स्वामी दु स्थान स्थित हुआ।

(२) कुण्डली नं० 'ख' में छठे घर का मालिक मगल पाँचवे स्थान में स्थित है इस कारण (छठा दु स्थान है) दु.स्थानाधिपति पाँचवे मे होने के कारण सतान-सुख को बिगाडता है।

कुण्डली का विचार करते समय यह देखना चाहिए कि भाव वलवान है या नही और भावेश वलवान् है या नही। जिस भाव पर उसके स्वामी की या शुभ ग्रहो की दृष्टि पडती है वह भाव वलवान् समझा जाता है। यदि उस भाव मे शुभग्रह वैठे हैं तो भी वह भाव वलवान् समझा जाता है। यदि उस भाव मे पापग्रह या शत्रुग्रह वैठे हैं या पापग्रह या शत्रुग्रह उस भाव को देखते हैं तो वह भाव निर्वल और दूपित समझा जाता है। यह तो भाव से विचार हुआ। अव भावेश से विचार कीजिए। जिस भाव का स्वामी उच्चादि राशि मे हो, अच्छे स्थान* मे (भाव मे) हो, अच्छे वर्गो मे हो, अच्छे भावाधिपो से सम्वन्ध करे; वह अपने भाव अर्थात् जिस घर का वह मालिक है उस घर के फल को उत्तम करता

*केन्द्र त्रिकोण को अच्छा स्थान मानते हैं। छठे, आठवे, बारहवें स्थान को खराब मानते हैं। क्रूर ग्रह सूर्य, मंगल, शनि, राहु, केतु का तृतीय, छठे या एकादश में बैठना पराक्रम वृद्धि करता है। शत्रुओ का नाश करता है। उत्तम स्वास्थ्य प्रदान करता है। इस विचार से अच्छा है किन्तु तृतीय में क्रूर ग्रह होने से भ्रातृनाश या भ्रातृ कष्ट भी करता है।

है; किन्तु जिस भाव का स्वामी दुर्बल, अस्तगत, नीच आदि राशि मे, शत्रु वर्ग मे, अशुभ ग्रहो से युत वीक्षित हो वह अपने भाव की–अपने घर की समृद्धि नही कर सकता। यह नियम सर्वसाधारण को विदित है कि जो व्यक्ति स्वय निर्बल हो, अशक्त (धनहीन) हो, अपने घर तक जिसकी पहुँच न हो (अपने घर को न देखता हो), किसी दोस्त का जरिया भी प्राप्त न हो (मित्रग्रहो से सम्बन्ध न हो), किसी कृपालु महानुभाव का आश्रय भी न प्राप्त हो (किसी शुभग्रह से युत वीक्षित या अन्य सम्बन्ध न करता हो); दु स्थान मे पडा हो—ऐसी जगह जहाँ यातायात का साधन न हो (६, ८, १२ स्थान मे पडा हो), खड्डे मे पडा हो (नीच राशि मे हो), अधेरे मे पड़ा हो (अस्तगत हो), शत्रुगृह मे पड़ा हो (शत्रु राशि मे पड़ा हो), वह अपने घर को क्या लाभ पहुँचा सकता है ?

कारक—भाव और भावेश के अतिरिक्त एक बात का विचार और करना चाहिए जिसे 'कारक' कहते हैं।

कारक दो प्रकार के होते हैं—(क) भावकारक और (ख) स्थिर कारक।

(क) नीचे प्रत्येक भाव के कारक दिये जाते है :

प्रथम भाव : सूर्य।	द्वितीय भाव : बृहस्पति।
तृतीय भाव मगल।	चतुर्थ भाव : चन्द्रमा और बुध।
पचम भाव : बृहस्पति।	षष्ठ भाव . शनि, मंगल।
सप्तम भाव : शुक्र।	अष्टम भाव · शनि।
नवम भाव : सूर्य, बृहस्पति।	दशम भाव · सूर्य, बुध, बृहस्पति, शनि।
एकादश भाव : बृहस्पति।	द्वादश भाव : शनि।

किसी भाव का पूर्ण शुभ फल तभी प्राप्त होता है जब भाव, भावेश और कारक तीनो बलवान् होते हैं।

(ख) वस्तुओं के स्थिर कारक :

सूर्य–राजत्व, विद्रुम (मूंगा), रक्त वस्त्र, माणिक्य, राज्य, वन, पर्वत, क्षेत्र (खेत), पिता आदि का कारक सूर्य है।

चन्द्रमा–माता, मन, पुष्टि, गन्ध, रस, ईख, गेहूँ, क्षार, पृथ्वी ब्राह्मण, शक्ति, कपास, अन्न, चाँदी आदि, का कारक चन्द्रमा है।

मंगल–सत्व (ताकत, हिम्मत), मकान, भूमि, शील, चोरी, रोग, ब्रह्म, भाई; पराक्रम, अग्नि, साहस (दिलेरी), राजा, राज्य, शत्रु आदि का कारक मगल है।

बुध–ज्योतिष, मामा, गणित (हिसाब), नाच, वैद्य (डाक्टरी), हास्य (हँसी-मजाक), लक्ष्मी, शिल्प, विद्या आदि का कारक बुध है।

बृहस्पति–अपना कार्य, यज्ञ इत्यादि कर्म, देवता, ब्राह्मण, धर्म, सोना, वस्त्र, पुत्र, मित्र, पालकी आदि का कारक बृहस्पति है।

शुक्र–पत्नी, अन्य स्त्री, सुख, काम-शास्त्र, गति, शास्त्र, काव्य, पुष्प, सुकुमारता, यौवन, जेवर, चांदी, सवारी, लोक, मोती, विभव (ऐश्वर्य) कविता, रस आदि का कारक शुक्र है।

शनि–भैंस, ऊँट, घोड़ा, हाथी, तेल, वस्त्र, शृंगार, यात्रा, मृत्यु, सर्वराज्य, आयुध (शस्त्र), शूद्र, नीलम, बाल (केश), शिल्प, शूल (पीडा दर्द), रोग, दास, दासी, आयु आदि का कारक शनि है।

राहु–प्रयाण (यात्रा या मृत्यु), समय, सर्प, रात्रि, खोई हुई वस्तु, छिपा हुआ धन, सट्टा का कारक राहु है।

केतु–व्रण (घाव), चर्म (शरीर की जिल्द) की बीमारी, अतिशूल (अत्यन्त पीडा), मूर्ख, दु:ख आदि का कारक केतु है।

नोट—किस भाव से क्या विचार करना—इस सम्बन्ध में २१ वाँ प्रकरण भी देख लीजिए।

दसवाँ प्रकरण

विंशोत्तरी महादशा

विंशोत्तरी महादशा निकालना—साधारण बोलचाल की भाषा में महादशा को दशा भी कहते हैं। अब नक्षत्र द्वारा महादशा निकालना बताया जाता है। जन्म के समय चन्द्रमा जिस नक्षत्र में हो उस नक्षत्र के अनुसार जन्म के समय महादशा होती है।

किस नक्षत्र में चन्द्रमा होने से किस महादशा में जन्म होता है यह नीचे बताया जाता है :

अश्विनी	मघा	मूल	केतु
भरणी	पूर्वा फाल्गुनी	पूर्वाषाढ	शुक्र
कृत्तिका	उत्तरा फाल्गुनी	उत्तराषाढ	सूर्य
रोहिणी	हस्त	श्रवण	चन्द्र
मृगशिर्	चित्रा	घनिष्ठा	मगल
आर्द्रा	स्वाती	शतभिषा	राहु
पुनर्वसु	विशाखा	पूर्वाभाद्र	वृहस्पति
पुष्य	अनुराधा	उत्तराभाद्र	शनि
आश्लेषा	ज्येष्ठा	रेवती	बुध

यदि किसी का अश्विनी, मघा या मूल नक्षत्र में जन्म हो तो केतु की महादशा मे जन्म हुआ। यदि किसी का भरणी, पूर्वाफाल्गुनी या पूर्वाषाढ में जन्म हो तो उसका शुक्र महादशा में जन्म होगा। इसी प्रकार सर्वत्र समझना चाहिए। प्रत्येक ग्रह की पूर्ण महादशा निम्नलिखित वर्षो की होती है :

सूर्य	६ वर्ष	राहु	१८ वर्ष	बुध	१७ वर्ष
चन्द्रमा	१० वर्ष	वृहस्पति	१६ वर्ष	केतु	७ वर्ष
मगल	७ वर्ष	शनि	१९ वर्ष	शुक्र	२० वर्ष*

उदाहरण के लिए यदि किसी मनुष्य का जन्म ठीक उस सैकिंड पर हो जब भरणी नक्षत्र समाप्त हो रहा हो और कृत्तिका नक्षत्र प्रारम्भ हो रहा हो तो कृत्तिका नक्षत्र के बिल्कुल प्रारम्भिक बिन्दु पर चन्द्रमा की स्थिति होने के कारण सूर्य की महादशा ६ वर्ष की होगी। जब बालक ६ वर्ष का हो जावेगा तब १० वर्ष के लिए चन्द्रमा की महादशा रहेगी और जब १६ वर्ष पूर्ण करने पर चन्द्रमा की महादशा पूर्ण हो जावेगी तब ७ वर्ष के लिए मगल की महादशा बैठेगी और जब बालक २३ वर्ष का हो जावेगा तब उसे १८ वर्ष की राहु की महादशा प्रारम्भ होगी, जो ४१ वर्ष पूर्ण होने तक रहेगी। यही क्रम रहता है। किंतु ऐसा बहुत कम होता है कि जन्म के समय चन्द्रमा किसी नक्षत्र के ठीक प्रारम्भिक बिन्दु पर हो। यदि चन्द्रमा नक्षत्र के बीच मे हो तो कितनी महादशा जन्म के समय बाकी रहेगी ? मान लीजिए आज प्रात काल ६ बजे अश्विनी नक्षत्र प्रारम्भ हुआ, और कल ठीक ६ बजे तक अश्विनी नक्षत्र रहेगा, तो अश्विनी नक्षत्र का मान २४ घण्टे या ६० घड़ी हुआ। अब यदि कोई बालक दिन के १२ बजे उत्पन्न हुआ तो अश्विनी नक्षत्र की (६ घण्टे या) १५ घडी व्यतीत हो चुकी थी और ४५ घड़ी अवशिष्ट थी याने बाकी थी। अश्विनी नक्षत्र मे जन्म होने से केतु की महादशा ७ वर्ष की होती है। उसमे से $\frac{१५}{६०}$ व्यतीत हो चुका था और $\frac{४५}{६०}$ बाकी था, इस कारण जन्म के समय केतु की महादशा के ७ वर्षों मे से ७ × $\frac{१५}{६०}$ = $\frac{७}{४}$ वर्ष = १$\frac{३}{४}$ वर्ष = १ वर्ष ९ महीने व्यतीत हो चुके थे और ७ × $\frac{४५}{६०}$ = $\frac{२१}{४}$ वर्ष = ५$\frac{१}{४}$ वर्ष = ५ वर्ष ३ महीने केतु की महादशा के बाकी रहे। इसको निम्न प्रकार से लिखते हैं

भुक्त (जो जन्म के पहले व्यतीत हो गया) केतु महादशा-

टिप्पणी—इन सब का योग १२० वर्ष का होता है। इस कारण इस महादशा को विंशोत्तरी (२० ऊपर सौ) कहते हैं। (देखिये पृष्ठ ७२)

१ वर्ष ६ महीने। भोग्य (जो इस जीवन मे भोगनी है) केतु महादशा १५ वर्ष ३ महीने।

जन्म के समय जिस नक्षत्र का थोड़ा भाग व्यतीत हो चुका होता है और थोडा भाग शेष रहता है उसी की भुक्तभोग्य महादशा निकाली जाती है। बाद की महादशाये तो सभी पूर्ण रूप से भोग्य होती हे। अब प्रस्तुत उदाहरण लीजिए जहाँ २३-९-५८ को बालक का सायकाल ५½ बजे जन्म माना है

"विश्व विजय पञ्चाग" देखिए। २२ सितम्बर* को उत्तराषाढ़ नक्षत्र ५३ घडी १७ पल था, उसके बाद श्रवण नक्षत्र प्रारम्भ हुआ और २३ सितम्बर को *रात्रि को ५६ घडी ५० पल तक श्रवण नक्षत्र रहा। इस कारण श्रवण नक्षत्र का कुल मान हुआ—(पहले दिन ५३ घडी १७ पल से दूसरे दिन ५३ घडी १७ पल तक=६० घडी और दूसरे दिन ५३-१७ से ५६-५० तक ३ घड़ी ३३ पल)—इस प्रकार कुल मान हुआ ६३ घड़ी ३३ पल।

लेकिन जन्म के समय का इष्ट है २८-७-३० (घड़ी-पल-विपल) है। इस कारण सूर्योदय तक ६ घड़ी ४३ पल (६० घड़ी—५३ घड़ी १७ पल) बीत चुके थे और जन्म के दिन २८-७-३० बीत चुके थे। दोनो को जोडने से

	घडी	पल	विपल
	६	४३	०
	२८	७	३०
योग—	३४	५०	३०

इससे ३४ घड़ी ५० पल ३० विपल आये। श्रवण नक्षत्र इतना बीत चुका था। इसे कुल मान में से घटाया।

* अंगरेजी गणनानुसार रात्रि को १२ बजे तारीख बदल कर २३ प्रारम्भ हो जावेगी।

* अंगरेजी गणनानुसार रात्रि को १२ बजे तारीख बदल कर २४ प्रारम्भ हो जावेगी।

	घ०	पल	वि०
	६३	३३	०
	३४	५०	३०
शेष ..	२८	४२	३०

अर्थात् जन्म के समय श्रवण नक्षत्र के २८ घडी ४२ पल ३० विपल शेष थे।

इसको दूसरे प्रकार से भी गणित कर, जाँच कर सकते हैं—

जन्म के दिन श्रवण नक्षत्र था=	५६ घडी	५० पल०	वि०
जन्म का इष्टकाल घटाया=	२८ घडी	७ पल	३०
शेष	२८	४२	३०

अर्थात् जन्म के समय श्रवण नक्षत्र शेष था २८ घड़ी ४२ पल ३० विपल। एक ही उत्तर आया।

कहने का तात्पर्य यह है कि एक नक्षत्र प्राय. पहले दिन के कुछ भाग में रहता है और कुछ दूसरे दिन। दोनो दिन वह नक्षत्र कितना-कितना था इसको जोड़कर नक्षत्र का पूर्ण मान बनाना चाहिए। यदि श्रवण नक्षत्र के बिल्कुल प्रारम्भ में जन्म होता तो चन्द्र दशा भोग्य होती १० वर्ष। किन्तु श्रवण नक्षत्र शेष था केवल २८ घड़ी ४२ पल ३० विपल तो चन्द्र-दशा भोग्य कितनी बाकी रही ? इसे त्रैराशिक से निकालिये।

६३ घड़ी ३३ पल के कुल विपल हुए २२८७८०।

२८ घडी ४२ पल ३० विपल के=१०३३५० विपल

×६०
१६८०
+४२
१७२२ पल
×६०
१०३३२०
+३०
१०३३५० विपल

यदि २२८७८० विपल मे १० वर्ष

तो १ विपल में $\frac{१०}{२२८७८०}$ वर्ष

तो १०३३५० विपल मे $\frac{१०\times१०३३५०}{२२८७८०}$ वर्ष

$= \frac{१०३३५०}{२२८७८}$ वर्ष

इसके वर्ष, मास आदि बनाये तो आये ४ वर्ष ६ मास ६ दिन। घड़ी, यह चन्द्रमा की भोग्य महादशा हुई।* इसके बाद मंगल की महादशा ७ वर्ष की। उसके बाद १८ वर्ष की राहु की महादशा, १६ वर्ष की वृहस्पति की महादशा, १९ वर्ष की शनि की महादशा होगी। वर्ष की महादशा में सौर-वर्ष लिया जाता है। २३ सितम्बर, सन् १९५८ को महादशा लिखने में लिखेंगे :

सवत् २०१५—५–६–४०–८

(यहाँ २०१५ विक्रमीय संवत् है। ५ का अर्थ है सूर्य ५ राशि पार कर चुका है–(छठी राशि मे) ६ अंश पार कर चुका है (सातवे अश मे) ४० कला पार चुका है व ४१ वी कला में ८ विकला पार कर चुका है।

इसमें ४ वर्ष ६ मास ६ दिन जोड कर–आगे प्रत्येक ग्रह की महादशा जोड़ कर–जन्म–कुण्डली में निम्नलिखित प्रकार से लिखेंगे :

---

*महादशा-अन्तर्दशा गणना में ३० दिन का १ मास, १२ मास का १ वर्ष माना जाता है। हमने भुक्त भोग्य दशा में घड़ी पल छोड़ दिये है।

◎ चन्द्रमा की भुक्त महादशा(१० वर्ष—४ व० ६ मा० ६ दि०)=५व० ५ मा० २४ दिन, हुए।

विंशोत्तरी महादशा चक्रम्

	चन्द्र भुक्त	चन्द्र भोग्य	मंगल	राहु	बृहस्पति	शनि	बुध
वर्ष		४	७	१८	१६	१९	१७
मास		६	०	०	०	०	०
दिन		६	०	०	०	०	०
	सम्वत्	सम्वत्	सम्वत्	सम्वत्	सम्वत्	सम्वत्	सम्वत्
सूर्य की	२०१५	२०१९	२०२६	२०४४	२०६०	२०७९	२०९६
राशि	५	११	११	११	११	११	११
अंश	६	१२	१२	१२	१२	१२	१२

	संवत् – राशि — अंश
जन्म का संवत् तथा सूर्य स्पष्ट	२०१५— ५ — ६
चन्द्रमा महादशा के भोग्य वर्षादि	४ — ६ — ६
योग	२०१९—११ — १२

यदि दिनों का योग ३० से अधिक आवे तो ३० से भाग देकर राशि में जोड़ देना चाहिए। राशि का योग १२ से अधिक आवे तो १२ का भाग देकर शेष स्थापित कीजिए। हासिल को सम्वत् मे जोड़िये। बहुत से ज्योतिषी भोग्य वर्ष मासादि घड़ी-पल तक निकालते हैं। वे पलों को विकला मे घडी को कला में जोड़ते हैं। हमारे विचार से महादशा, अन्तंदशा आदि मे वर्ष-मास दिन इतना ही निकालना पर्याप्त है। घड़ी पल छोड़ सकते हैं।

नोट :—यहां यह भी बता दिया जाता है कि २०१५—५—६ के बाद २०१९—११—१२ कैसे आये ?

ग्यारहवाँ प्रकरण

अन्तर्दशा

पिछले प्रकरण मे केवल महादशा निकालना बताया गया है। कौन-सी महादशा और अन्तर्दशा कैसी जावेगी इसका विस्तृत विचार आगे के प्रकरणो मे दिया है।

अब अन्तर्दशा लगाना बताया जाता है। किस ग्रह की महादशा मे किस ग्रह की अन्तर्दशा कितने वर्ष-मास-दिन की होती है यह विवरण पुस्तक के अंत मे दिया गया है।

प्रस्तुत उदाहरण मे चन्द्रमा की महादशा में जन्म हुआ है। चन्द्रमा की महादशा मे ९ अन्तर्दशाएँ होती हैं। किन्तु इस व्यक्ति के जन्म के समय केवल ४ वर्ष ६ मास ६ दिन शेष थे, इसलिए अंत में जो चन्द्रमा की महादशा के अन्तर्गत अन्तर्दशाएँ दी गई हैं उनको देखने से प्रतीत होगा कि जन्म के पहले चन्द्रमा की महादशा मे (चन्द्रमा की अंतर्दशा १० महीने+मंगल की अन्तर्दशा ७ महिने=१ वर्ष ५ महीने+राहु की अन्तर्दशा १ वर्ष ६ महीने=२ वर्ष ११ महीने+बृहस्पति की अतर्दशा १ वर्ष ४ महीने=४ वर्ष ३ महीने जन्म के पहले ही व्यतीत हो चुके थे।

७६वें पृष्ठ पर टिप्पणी में बताया गया है कि चन्द्रमा की भुक्त महादशा ५ वर्ष ५ मास २४ दिन थी। बृहस्पति के बाद शनि की अन्तर्दशा १ वर्ष ७ महीने की आई। इस कारण

	५ वर्ष ५ महीने २४ दिन
मे से घटाये	४ वर्ष ३ महीने ०
शेष	१ — २ — २४

यह शनि की भुक्त अन्तर्दशा हुई। शनि की कुल अन्तर्दशा है—१ वर्ष ७ महीने। इसमे से १ वर्ष २ मास २४ दिन घटाने से वाकी वचे ४ महीने ६ दिन। इस कारण चन्द्रमा की भोग्य महादशा में निम्नलिखित प्रकार से अन्तर्दशाएँ होगी।

चन्द्रमा की महादशा में निम्नलिखित अन्तर्दशा होगी :

	वर्ष—मास—दिन
शनि की भोग्य अन्तर्दशा	०— ४ —६
बुध की अन्तर्दशा	१— ५ —०
केतु की ,, ,,	०— ७ —०
शुक्र की ,, ,,	१— ८ —०
सूर्य ,, ,, ,,	०— ६ —०
योग	४—६ —६

अन्तर्दशाओ का योग महादशा के समान ही होता है क्योंकि अन्तर्दशा महादशा का ही भिन्न-भिन्न भागो में विभाजन है। केवल प्रारम्भिक महादशा में ही (प्रस्तुत उदाहरण मे चद्रमा की महादशा के) प्रारंभिक अन्तर्दशा (प्रस्तुत उदाहरण मे चन्द्रमा की महादशा में शनि की अन्तर्दशा) में ही भुक्त-भोग्य का हिसाव करना पड़ता है। वाद में मगल की महादशा, राहु की महादशा आदि मे जितने काल की अन्तर्दशा पुस्तक के अन्त में दी हुई है उतनी जोडते जाते हैं। प्रस्तुत उदाहरण मे

	सवत् (वर्ष)—राशि .अंश	
	२०१६— ११ — १२	को मगल दशा
प्रारम्भ हुई	०— ४— १७	यह मगल मे मगल
की अन्तर्दशा जोड़ो=योग	२०२०— ४— ६	इस समय

तक मगल की महादशा में मगल का अतर रहा। इसी तरह क्रमश. अंतर्दशा जोडते जायेंगे। यह अतर्दशा निकालने का प्रकार है। अंतर्दशा को वहुत से लोग 'भुक्ति' भी कहते हैं। किन्तु दक्षिण भारत

में यह शब्द विशेष प्रचलित है।

इस प्रकरण में केवल अन्तर्दशा निकालना बताया गया है। कौनसी अन्तर्दशा कैसी जावेगी इसका विस्तृत विचार आगे के प्रकरणो मे किया गया है।

प्रत्यन्तर—प्रत्येक अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर भी निकाला जाता है। जैसे उपर्युक्त उदाहरण में मगल महादशा में मगल की अन्तर्दशा ४ महीने २७ दिन की हुई। इस ४ महीने २७ दिन के समय को ९ भागो में विभाजित करते हैं और जिस ग्रह की अन्तर्दशा हो उस ग्रह से प्रारम्भ कर ९ ग्रहों का प्रत्यन्तर लगाया जाता है। अनुपात वही रहता है।

मगल की अन्तर्दशा कुल ४ मास २७ दिन की है? इसमें मगल का प्रत्यन्तर कितना होगा ?

कुल महादशा १२० की उसमें मगल की महादशा ७ वर्ष

कुल महादशा १२०×३६० दिन की उसमें मगल की महादशा

७×३६० दिन

यदि कुल १ दिन तो मगल का भाग $\frac{७\times३६०}{१२०\times३६०}$ दिन

यदि कुल (४ महीने २७ दिन) दिन = १४७ दिन तो मंगल का भाग

$= \frac{७\times३६०\times१४७}{१२०\times३६०}$ दिन

इस प्रकार प्रत्यन्तर का हिसाब लगाया जाता है। इसकी छपी सारिणी भी मिलती है जिससे हिसाब लगाने की आवश्यकता नही होती। इस प्रारम्भिक पुस्तक में महादशा तथा अन्तर्दशा ये ही दो विचार मुख्यत बताये हैं। प्रत्यन्तर सूक्ष्म बात है। उसमें जाने की आवश्यकता नही।

बारहवाँ प्रकरण

राशि-फल

ग्रहो का फल मुख्यतः छः प्रकार से होता है (१) किस राशि मे ग्रह स्थित है। (२) किस भाव मे है। (३) किस भवन का स्वामी है। (४) किस ग्रह के साथ है। (५) किस ग्रह से दृष्ट है। (६) जिस ग्रह का विचार किया जा रहा है वह षड्वर्ग —राशि, होरा, द्रेष्काण, नवमांश, द्वादशांश, त्रिंशाश आदि—मे शुभ वर्गो मे है या अशुभ वर्गो मे। अपने स्वय के वर्गो मे है—उच्च वर्गो मे या वर्गोत्तम या अधिमित्र या मित्र के वर्ग मे किवा नीच वर्ग, शत्रुवर्ग या अधिशत्रु-वर्ग मे।

इन छः के अतिरिक्त अन्य विचार भी हैं। किन्तु उन सबका विचार करना यहाँ सम्भव नही। किसी ग्रह को देखते ही एकदम इस नतीजे पर नही पहुँचना चाहिए कि वह अच्छा है या बुरा। ऊपर जो छः विचार दिये गए हैं उनमे से प्रत्येक विषय का विचार करने के लिए कम-से-कम १००-१०० पृष्ठ कुल ६०० पृष्ठ की आवश्यकता है इसलिए 'वृहत्पाराशर होराशास्त्र', 'वृहत्जातक' 'सर्वार्थचिन्तामणि', 'मानसागरी', 'सारावली', 'जातकाभरण', 'जातकालकार', 'भावप्रकाश', 'भावकुतूहल', 'खेटकौतुक', 'जातकसारदीप', 'दैवज्ञाभरण' आदि के आधार पर उपर्युक्त छहो विषयों का विचार आगे भिन्न-भिन्न प्रकरणों मे किया जा रहा है।

राशि-फल—जन्म-लग्न तथा चंद्रमा—(१) यदि जन्म-लग्न मेष हो या मेष राशि मे चद्रमा हो तो मनुष्य के नेत्र गोलाई लिये

नोट—जन्म-लग्न या चन्द्र-लग्न (चन्द्रमा जिस राशि में हो) दोनों का प्राय. एक-सा फल है।

हुए, और कुछ ललाई लिये हुए होते हैं। ऐसा व्यक्ति गरम भोजन तथा शाक (सब्जी) खाने का विशेष शौकीन होता है परन्तु भोजन थोड़ा करता है। भोजन जल्दी भी करता है। थोड़े से सन्तुष्ट होने वाला, घूमने (बिना प्रयोजन के भी इधर-उधर जाने) का शौकीन होता है। उसके घुटनो मे दुर्बलता रहती है। पैरों मे मांस कम होता है। धन स्थिर नही रहता। शूर और कामी भी होता है—स्त्रियों का प्रिय। इसके नख अच्छे नही होते या नखों मे विकार होता है। सेवा करने मे चतुर होता है। अभिमानी होता है और पानी मे जाने से डरता है।

(२) यदि जन्म-लग्न या जन्म-राशि वृषभ हो तो उसकी जांघे और मुंह चौड़े होते हैं। पीठ या बगल में लहसन आदि का चिह्न होता है। ऐसा व्यक्ति विलासयुक्त गति से चलता है और त्यागी अर्थात् दानशील होता है। ऐसे व्यक्ति के कन्यायें अधिक होती हैं। अपने पहले के भाई-बन्धुओं को त्यागकर (अर्थात् उनसे सम्बन्ध नहीं रखता है) नये बन्धु तथा सम्बन्धियो के साथ रहता है। ऐसा व्यक्ति हुकूमत करना पसद करता है, सौभाग्य-युत होता है तथा बहुत स्त्री-प्रेमी होता है। उसकी दोस्ती पक्की होती है। भोजन बहुत विशेष करता है और उसके जीवन का मध्य भाग तथा अतिम भाग सुखपूर्वक व्यतीत होता है

(३) यदि लग्न या चद्रमा मिथुन राशि में हो तो ऐसा व्यक्ति काले नेत्र वाला, शास्त्र का पडित और यदि उसे दूत-कार्य मिला हो तो उसे अच्छी तरह सम्पन्न करने वाला, बुद्धिमान, सट्टा या जुआ का शौकीन, दूसरे की मन की बात को समझने वाला, प्रिय वचन बोलने वाला, सदैव भोजन करने तथा स्त्रियो का शौकीन होता है। ऐसा व्यक्ति गाना, बजाना, नाच तथा कामशास्त्र में विशेष निपुण होता है। प्रायः नपुंसक लोगों से उसकी विशेष मित्रता होती है। इसकी नाक बड़ी या ऊँची होती है।

(४) जिसके जन्म के समय जन्म-लग्न कर्क हो या चन्द्रमा कर्क राशि में हो वह जल्दी और कुछ टेढ़े रास्ते से चलता है। कमर उठी हुई होती है, स्त्रियो के वश मे रहता है, पक्का मित्र होता है, सज्जनो का मित्र तथा ज्योतिष विद्या का प्रेमी होता है। इसको प्रचुर भवन प्राप्त होते हैं। कभी इसके पास बहुत धन-सग्रह हो जाता है और कभी सब धन व्यय हो जाता है। गला मोटा होता है, जल (तालाब, नदी आदि) तथा बगीचों का शौकीन होता है, अपने मित्र और बंधुओ से प्रेम करता है। समझाने से समझ जाता है अर्थात् वश में हो जाता है।

(५) यदि जन्म-लग्न सिंह हो या जन्म के समय चन्द्रमा सिंह राशि में हो तो ऐसा व्यक्ति शीघ्र कार्य करने वाला और तीक्ष्ण (दूसरे की बरदाश्त न करने वाला) होता है। ठोडी मोटी और चेहरा बड़ा होता है। आँखों में कुछ पीलापन होता है। स्त्री-द्वेषी (स्त्री से विशेष प्रेम न करने वाला), वन मे भ्रमण तथा मास-भक्षण का शौकीन होता है। इसके पुत्र थोड़े होते हैं। बिना कारण के छोटी-सी बात पर भी बहुत क्रोध करता है और इसका क्रोध चिरस्थायी (बहुत समय तक रहने वाला) होता है। ऐसा व्यक्ति भूख, प्यास, पेट, दाँत तथा मस्तिष्क (दिमागी या स्नायु-मडल की बीमारी) पीडा से पीडित रहता है। ऐसा व्यक्ति पराक्रमी, अभिमानी, स्थिर बुद्धि (मुस्तकिल मिजाज) और त्यागी होता है। ऐसा व्यक्ति माता का प्यारा होता है।

(६) जिसके जन्म के समय कन्या लग्न या कन्या राशि मे चन्द्रमा हो उसकी दृष्टि में सुन्दरता और लज्जा होती है। उसकी चाल मे भी स्त्रियों की भाँति मनोहरता होती है। ऐसा व्यक्ति कोमल, सत्य व्यवहार वाला, सुखी, कलाओ मे निपुण, शास्त्रो का तात्पर्य जानने वाला, धार्मिक, बुद्धिमान और भोगप्रिय होता है। उसके कधे और बाहु झुके हुए होते हैं। दूसरों के मकान और धन का

उपभोग करता है और परदेश में रहता है। कन्याये अधिक होती हैं पुत्र थोडे, इसके वचन प्रिय होते हैं अर्थात् मीठी वाणी बोलता है।

(७) यदि जन्म के समय तुला लग्न हो या तुला राशि में चन्द्रमा हो तो देवता, ब्राह्मण और साधुओं के पूजन मे विशेष रुचि हो। लम्बे कद का हो, नाक ऊँची हो, शरीर दुर्बल हो और थोड़े ही कारण से शरीर में रोग हो जाये। किसी अग मे कोई विकलता हो; ऐसा व्यक्ति ईमानदार और बुद्धिमान होता है किन्तु स्त्रीजित—स्त्रियों से जीता हुआ अर्थात् उनके वश मे रहने वाला होता है। ऐसा व्यक्ति माल बेचने तथा खरीदने मे कुशल और धनी होता है किसी देवता के नाम पर इसका एक नाम और होता है। अर्थात् ऐसे व्यक्ति के दो नाम रहते है। यद्यपि इसके बन्धुगण (भाई-बधु) इसे नाराज कर देते हैं और इसे छोड भी देते हैं किंतु यह उनका उपकार करता है।

(८) यदि वृश्चिक जन्म-लग्न हो या जन्म के समय चन्द्रमा वृश्चिक राशि में हो तो ऐसे व्यक्ति के नेत्र तथा छाती बडी होती है। जाँघ, घुटने और पिडलियाँ गोलाई लिये हुए होती हैं। बचपन मे पिता या गुरु से वियुक्त (पृथक् या विहीन) हो जाये। बचपन में बीमार भी रहे—स्वास्थ्य अच्छा न रहे। सरकार में अच्छा ओहदा मिले। पिंगल (कुछ पीला) वर्ण हो। वध, मारना-पीटना, क्रोध करना आदि क्रूर चेष्टा वाला हो। हाथ या पैर में मत्स्य, वज्र, या खड्ग रेखा हो। गूढ़ पाप करने वाला—अर्थात् जिसका पाप प्रकाशित न हो।

(९) यदि जन्म-लग्न धनुष हो या धनु राशि में चन्द्रमा हो तो चेहरा, सिर और अधर बड़े होते हैं। पिता का धन तथा कारबार प्राप्त होता है। ऐसा व्यक्ति वचन-कुशल (बातचीत करने में चतुर), वीर्यवान (पराक्रमी या पौरुषयुक्त), बुद्धिमान और कार्य करने में सदैव उद्यत (आलसी नही) तथा शिल्प जानने

वाला होता है। इसके कंधे कुछ झुके रहते हैं और नाखून अच्छे नही होते। दात, कान, नाक और नीचे का ओठ मोटे होते हैं। बोलने मे वहुत प्रगल्भ(चतुर)होता है। अपने वन्धुओ का शत्रु होता है। धर्म को जानने वाला, वल से कावू में नही आता अर्थात् ताकत के जोर से उस पर कावू नही कर सकते किन्तु समझाने से अर्थात् प्रिय वचनों से उसको वश में कर सकते हैं।

(१०) यदि मकर जन्म-लग्न हो या मकर राशि में चन्द्रमा हो तो नित्य अपनी स्त्री-पुत्रादि का लालन करता है। वास्तव में उतना धार्मिक न होता हुआ भी वाहर से वहुत धार्मिक—धर्म-साधन-युत प्रतीत होता है। शरीर का नीचे का हिस्सा (कमर के नीचे का भाग) अपेक्षाकृत कृश (कमजोर) होता है। कमर पतली और नेत्र सुन्दर होते हैं। ऐसा व्यक्ति सौभाग्ययुक्त होता है किन्तु आलसी होता है। अनेक विद्वानो की वाते सुनकर पडित हो जाता है और जो नेक सलाह दी जाये उसको मान भी लेता है। ऐसे व्यक्ति में सत्व (प्राण-वल)—अदरूनी ताकत अधिक होती है। अपने से छोटे दर्जे की या अपेक्षाकृत अधिक अवस्था वाली स्त्रियो से प्रेम सम्वन्ध होने की सम्भावना रहती है। ऐसा व्यक्ति लज्जा-शून्य और कठोर-हृदय होता है।

(११) यदि जन्म-लग्न कुम्भ हो या कुम्भ राशि मे चद्रमा हो तो कण्ठ वहुत दीर्घ होता है। शरीर वडा हो, नसे निकली हुई हो, शरीर मे रोम वहुत हो और शरीर के रोम कोमल न हो। पैर, कमर, जॉघ, चेहरा आदि दीर्घ (वडे) हो। सुन्दर पुष्प, सुन्दर लेप की वस्तुओ का प्रेमी तथा वन्धुओ का प्रेमी हो। दूसरे की स्त्री के कारण या दूसरे के द्रव्य के लिए पाप-कार्य करे। ऐसे व्यक्ति का कभी वहुत भाग्योदय हो जाय—वहुत धन-सचय हो जाय और कभी भाग्य और धन का क्षय (कमी) हो। ऐसा व्यक्ति परिश्रमी होता है।

(१२) यदि जन्म के समय मीन-लग्न हो या मीन राशि मे चद्रमा हो तो ऐसे व्यक्ति को जल वाले पदार्थों से (सिघाड़ा, मोती, नाव, जहाज, समुद्र पार से आने वाली वस्तुओं से (इम्पोर्ट-एक्सपोर्ट) से लाभ होता है। ऐसा व्यक्ति अपनी पत्नी—पत्नियों मे अनुरक्त रहता है। कपड़ो का भी बहुत शौकीन होता है। माथा वडा, शरीर के भाग बराबर और सुन्दर किन्तु नाक बड़ी होती है। अपने शत्रुओ को पछाड़ देता है। नेत्र सुन्दर होते हैं। भूमि मे गड़ा हुआ द्रव्य या अपने पराक्रम से धन-लाभ करता है। ऐसा व्यक्ति धनभोगी (धन से सासारिक भोग्य पदार्थो को प्राप्त करने वाला) और विद्वान् होता है।

अब सूर्यादि अन्य ग्रह, मेष आदि बारह राशियो में क्या प्रभाव उत्पन्न करते है यह बताया जाता है।

सूर्य का द्वादश राशि-फल—सूर्य यदि मेष राशि में १० अश पर हो तो जातक प्रसिद्ध, चतुर, भ्रमणशील, थोडे द्रव्य वाला किन्तु शस्त्रधारण करने वाला होता है। १० अश पर सूर्य परमोच्च होता है।* यदि इस परमोच्च भाग को छोड़कर अन्यत्र हो तो यह फल कम मात्रा में होगा। यदि सूर्य वृषभ राशि में हो तो मनुष्य को स्त्रियों, वस्त्र, सुगन्धि, दुकान आदि से लाभ होता है। ऐसे व्यक्ति की प्रीति स्थायी नही होती, गाने-बजाने का भी प्रेमी होता है। यदि सूर्य मिथुन राशि मे हो तो जातक विद्वान्, ज्योतिष-ज्ञान-सम्पन्न तथा धनवान होता है।

नोट—ऊपर जो १२ राशियों के फल बताये गए हैं वे पूर्ण फल तभी देते हैं जब चन्द्रमा बलवान हो तथा जिस राशि का जो फल दिया गया है उस राशि का स्वामी भी बलवान् हो। वास्तव में (१) चन्द्र का बल, (२) चन्द्र जिस राशि में हो उसका बल, (३) चन्द्र राशि का जो स्वामी है उसका बल—इस प्रकार तीनों के बली होने से पूर्ण फल मिलता है। लग्न का फल पूर्ण रूप से तभी मिलेगा जब लग्न बलवान हो और लग्न का स्वामी भी बलवान हो।

यदि कर्क मे सूर्य हो तो तीक्ष्ण, शीघ्र कार्य करने वाला, दूसरो का कार्य करने वाला (सेवा वृत्ति शील) तथा धनरहित होना है। उसे बहुत परिश्रम करना पडता है और क्लेश-भाजन भी होता है । यदि सिह मे सूर्य हो तो ऐसे व्यक्ति की वन, पर्वत और गायो मे विशेष प्रीति होती है । ऐसा व्यक्ति वीर्यवान (पराक्रमी) तथा बुद्धिमान् होता है। यदि कन्या मे सूर्य हो तो जातक का शरीर स्त्री के शरीर के समान मनोहर हो । वह विद्वान् हो और लिपि, चित्रकर्म, काव्य, गणित आदि मे विशेष चतुर हो ।

यदि तुला राशि मे सूर्य हो तो ऐसे व्यक्ति को मद्य के कार-बार, ताम्बूल, सोना, ट्रैवलिग एजेट (घूम-घूमकर काम करना) आदि कार्य से विशेष धन-लाभ हो सकता है। ऐसे व्यक्ति को प्राय कीर्त्ति कम प्राप्त होती है। उत्साह-शून्य होता है और धन-सग्रह कम होता है ।* यदि वृश्चिक राशि मे सूर्य हो तो विष-विक्रय (जहरीले पदार्थो के बेचने से); विष-चिकित्सा (जहरीली तथा सक्रामक बीमारियो के इलाज) से धन-लाभ हो सकता है । ऐसा व्यक्ति क्रूर, साहसी तथा विद्वान् होता है यदि सूर्य धनुष राशि मे हो तो सज्जनो से पूज्य, धनवान, तीक्ष्ण, शिल्प-विद्या तथा वैद्य या डाक्टरी के काम मे कुशल हो सकता है ।

यदि मकर राशि मे सूर्य हो तो छोटी पदवी का, कम विद्वान्, छोटी चीजों का कारबार करने वाला, अल्प धनवान, दूसरे के धन को प्राप्त करने की इच्छा करने वाला—लोभी होता है। परन्तु ऐसा व्यक्ति दूसरो का भाग्योदय देखकर बहुत हर्षित होता है और इसके लिए चेष्टा भी करता है। यदि सूर्य कुभ राशि मे हो तो सतान-कष्ट तथा भाग्यहीनता होती है। या तो ऐसे व्यक्ति की सतान कम हो, या किसी की अल्पमृत्यु हो जावे या सतान आज्ञा-

*देखिये अंक 'विद्या' पृष्ठ १०९ से ११९ तक

कारी न हो। इन तीनों मे से किसी प्रकार से सतान-कष्ट हो सकता है। यदि कुम्भ का सूर्य लग्न मे हो तो हृदय रोग (दिल की बीमारी) होने का भी अदेशा रहता है। कुम्भ के सूर्य वाले को धन की भी कमी रहती है। यदि मीन मे सूर्य हो तो जल-सम्बन्धी पदार्थों से द्रव्य-प्राप्ति (सिंघाडा, मोती, समुद्र पार से आने-जाने वाली वस्तु—-इम्पोर्ट, एक्सपोर्ट आदि से); धन-धान्य आदि की समृद्धि होती है। ऐसा व्यक्ति स्त्रियो द्वारा बहुत आदर किया जाता है।*

मंगल का विविध राशिगत फल—यदि मगल मेष राशि मे हो तो जातक राजाओं से सम्मानित, सेना के किसी भाग का स्वामी अथवा अपनी मातहती में अनेक व्यक्तियों को रखने वाला, धनिक, व्यापार में प्रवीण; अजितेन्द्रिय (अपनी इद्रियों को काबू में न रखने वाला) होता है। इसके शरीर के किसी भाग में गहरी चोट लगती है या व्रण (घाव) होता है। ऐसे व्यक्ति की चोरी की भी प्रवृत्ति होती है। मेष और वृश्चिक दोनो मगल की राशि हैं। यदि वृश्चिक राशि में मंगल हो तब भी यही फल। अन्तर यह है कि जिस जातक के मेष का मगल हो वह विशेष उदार, साहसी और खुली लड़ाई लड़ने वाला होता । किन्तु वृश्चिक के मगल वाला विशेष क्रूर, अनुदार और गुप्त रूप से लड़ाई लड़ने वाला होता है।

यदि मगल वृषभ या तुला में हो तो ऐसा व्यक्ति स्त्रीजित् होता है (स्त्रियो के वशीभूत) और दूसरों की स्त्रियों से प्रेम करता है किन्तु अपने मित्रो से उलटा पडता है अर्थात् मैत्री-निर्वाह नही

* प्रायः सूर्य एक मास तक १ राशि मे रहता है। सूर्य का इस प्रकार विस्तृत राशि-फल करीब ३० पृष्ठों में (पृष्ठ १०६ से १३६ तक "अंक विद्या ज्योतिष) में दिया गया है। विशेष जिज्ञासु पाठक वह पुस्तक अवश्य, पढ़ें। पुस्तक प्राप्ति स्थान "गोयल एण्ड कम्पनी", दरीबा कलाँ, देहली।

करता है। इन दोनो राशि मे स्थित मगल वाला जातक माया-कुशल, निष्ठुर, वढ़िया कपडे पहनने वाला, किन्तु डरपोक स्वभाव का होता है।

यदि मगल मिथुन या कन्या मे हो तो अनेक पुत्र होते हैं और जातक साहसी होता है किन्तु उसके कोई मित्र नही होते। ऐसे व्यक्ति गाधर्व (गान-वाद्य) तथा युद्ध मे कुशल, कजूस स्वभाव के; भयरहित और धनी होते हैं। ये लोग उपकार करने वाले को सदैव स्मरण करते हैं।

यदि मगल कर्क राशि मे हो तो जातक धनी, जल, नाव आदि से द्रव्य उत्पन्न करने वाला; विद्वान्, विकल (स्वभाव से विकल या शरीर के किसी भाग मे रोगयुक्त) होता है। मगल कर्क राशि मे नीच होने के कारण ऐसे व्यक्ति मे क्षुद्र स्वभाव की या नीचता की भी कोई वात अवश्य होनी चाहिए।

यदि मगल सिंह मे हो तो जातक निर्धन, क्लेश उठाने वाला, निर्भय और वन मे घूमने वाला होता है। स्त्री-पुत्रादि का सुख थोडा होता है।

यदि मंगल धनु या मीन राशि मे हो तो जातक के वहुत-से शत्रु होते हैं और पुत्र-सुख कम होता है (पुत्र थोडे हो या पुत्रों से सुख कम हो)। ऐसे व्यक्ति राजा के मत्री या उच्च पदाधिकारी होते हैं।

यदि मंगल मकर मे हो तो जातक वहुत धनी होता है; वहुत-से पुत्र होते हैं और राजा या राजा के समान प्रभावशाली पदाधिकारी होता है। मकर मंगल की उच्च राशि है। इस कारण वहुत

---

* नोट—विविध राशि स्थित ग्रहों का फल वताते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि ग्रह कैसे नवांश में है। यदि स्वनवांश या उच्च नवांश में हो तो शुभ फल अधिक होगा। यदि शत्रु नवांश और क्रूर ग्रह दृष्ट हो तो दुष्ट फल अधिक होगा।

उत्कृष्ट फल वर्णित किया गया है। किन्तु यदि मगल कुम्भ राशि में हो तो मनुष्य निरर्थक भ्रमण करने वाला, निर्धन, दुःखार्त, तीक्ष्ण तथा मिथ्यावादी होता है।

बुध का विविध राशिगत फल—यदि मेष या वृश्चिक में बुध हो तो जातक खाने-पीने का शौकीन, नास्तिक, चोर, जुए या सट्टे का शौकीन तथा निर्धन होता है। ऐसे व्यक्ति को स्त्री भी अच्छी नही मिलती और स्वय असत्यवादी होता है। मंगल क्रूर और तामसिक ग्रह है और बुध बुद्धिकारक है। मेष और वृश्चिक की राशि मगल है। इस कारण जब बुद्धिकारक ग्रह तामसिक ग्रह की राशि मे बैठा हो तो दुष्ट फल होना स्वाभाविक है।

यदि बुध वृषभ या तुला मे हो तो जातक विद्वान् या दूसरो को शिक्षा देने वाला, दानशील, गुरुभक्तियुत होता है और स्त्री-पुत्रादि को बहुत प्रेम करने वाला होता है तथा धन का सग्रह उसे बहुत ही प्यारा होता है।

यदि बुध मिथुन राशि में हो तो जातक आत्मप्रशसा करने वाला, शास्त्रो तथा कलाओ मे चतुर, प्रियवचन बोलने वाला तथा आरामतलब व सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने की इच्छा में रत होता है। यदि बुध कर्क राशि में हो तो जलमार्ग से (इम्पोर्ट-ऐक्स-पोर्ट आदि) नाव, जहाज आदि से या जल में उत्पन्न होने वाले पदार्थों से अच्छा धन-लाभ हो सकता है। ऐसा व्यक्ति स्वजन—अपने व्यक्तियों का शत्रु होता है।

यदि सिह राशि का बुध हो तो स्त्री-प्रेम मे कमी करता है। किन्तु जातक का मन स्त्री के लिए सदैव चचल रहता है। मनुष्य घूमने का शौकीन होता है किन्तु धन-सुख तथा पुत्रो की

नोट—बुध बुद्धिकारक है। शुभ ग्रहों से युत दृष्ट होने से शुभ बुद्धि होती है, पाप ग्रहों से युत दृष्ट होने से पाप बुद्धि होती है।

फर्माबरदारी में कमी करता है। यदि कन्या राशि का बुध हो तो मनुष्य त्यागी, विद्वान्, भयरहित, सुखी, क्षमावान्, युक्तिकुशल तथा वहस करने में भयरहित होता है।

यदि बुध, धनु या मीन राशि में हो तो ऐसे जातक पर राजा की कृपा होती है क्योंकि ऐसा व्यक्ति विद्वान् तथा प्रामाणिक बात बोलने वाला होता है। मीन का बुध होने से मनुष्य दूसरे के आराधन में दक्ष और अन्य मनुष्य की सेवा-प्रसाधन कर उसको प्रसन्न करने में चतुर होता है।

यदि मकर या कुम्भ का बुध हो तो मनुष्य परिश्रमी, ऋणवान् (कर्ज़दार) निर्धन तथा दूसरे की सेवा करने वाला होता है।

बृहस्पति का विविध राशिगत फल—यदि मेष या वृश्चिक में हो तो जातक, धन व स्त्री, पुत्र आदि के सुख से युक्त क्षमावान्, दाता, तेजस्वी, औदार्य आदि गुणो से सम्पन्न, अनेक लोगो पर हुकूमत करने वालाहोता है। ऐसे व्यक्ति को नौकर भी अच्छे मिलते हैं। यदि वृषभ या तुला का वृहस्पति हो तो जातक स्वस्थ शरीर वाला, धन, मित्र एव पुत्रसुख से सम्पन्न, त्यागी और लोकप्रिय होता है। यदि मिथुन या कन्या में वृहस्पति हो तो पहरने, बिछाने आदि के भोगोपकरण वस्त्रो से युक्त, मित्र-पुत्र आदि के सुख से सम्पन्न, प्रतिष्ठा प्राप्त करने वाला सुखी होता है। यदि कर्क का वृहस्पति हो तो मनुष्य रत्न, सुत, स्त्री आदि के वैभव से युक्त सुखी होता है। ऐसा मनुष्य अत्यन्त प्राज्ञ (बुद्धिमान) भी होता है। यदि सिंह का वृहस्पति हो तो उसकी मातहती मे वहुत से लोग कार्य करते हैं। एव कर्क राशि का जो ऊपर फल वताया गया है वह सब भी उस मनुष्य को प्राप्त होता है। यदि वृहस्पति धनु या मीन का हो तो मनुष्य अनेक ग्रामो का स्वामी या अनेक ग्रामो पर हुकूमत करने वाला, राजा का मंत्री या सेनापति, या इसी प्रकार का कोई उच्च पदाधिकारी और धनवान होता है। कुम्भ राशि का वृहस्पति हो तो वही फल होता

है जो कर्क राशि का बताया गया है। "कुम्भे कर्कटवत्"। यदि मकर का बृहस्पति हो तो मनुष्य थोड़े धनवाला, सुख-हीन होता है

शुक्र का विविध राशिगत फल—यदि मेष या वृश्चिक राशि में हो तो किसी दूसरे की पत्नी के मामले में, मुकदमा या बहस में द्रव्य का नाश होता है। ऐसे मनुष्य को बदनामी भी प्राप्त होती है। यदि वृषभ या तुला का शुक्र हो तो मनुष्य बलशाली, बुद्धिमान् धनी, राजा का पूज्य, प्रसिद्ध, निर्भय और अपने व्यक्तियों पर हुकूमत करने वाला होता है। यदि मिथुन का शुक्र हो तो मनुष्य धनी, कलाकुशल और राजा की नौकरी करने वाला होता है। यदि कन्या का शुक्र हो तो मनुष्य नीच कर्म करने वाला (अनुचित व्यापार) करने वाला तथा धनहीन होता है। यदि मकर या कुम्भ का शुक्र हो तो मनुष्य सुन्दर, स्त्रियो से जीता हुआ किन्तु 'कुनारी' में रत होता है। 'कुनारी' के दो अर्थ हो सकते हैं। एक तो यह कि वह स्त्री स्वभाव या आचार की अच्छी न हो, दूसरा यह कि देखने में अच्छी न हो। यदि कर्क का शुक्र हो तो ऐसे मनुष्य की प्राय दो पत्नी होती हैं और ऐसा व्यक्ति कुछ डर-पोक तथा दूसरे से याचना करने वाला अर्थात् धन या वस्तु माँग-कर लेने की इच्छा करने वाला होता है। ऐसे व्यक्ति का 'मद' और 'शोक' प्रबल होते हैं। यदि सिंह का शुक्र हो तो स्त्री के पास से धन प्राप्त होता है। ऐसे व्यक्ति की पत्नी किसी ऊँचे कुल की पुत्री होती है। लेकिन पुत्र थोड़े होते हैं। यदि धनु का शुक्र हो तो जातक, 'गण' (जनसमूह) द्वारा पूज्य तथा धनी होता है। मीन में शुक्र हो तो जातक विद्वान्, धन-समृद्ध, राजा द्वारा सम्मानित और स्वयं बहुत सुन्दर होता है।

शनि का विविध राशिगत फल—यदि मेष का शनि हो तो मनुष्य बन्धु-रहित, मित्र-रहित कपटी, वृथा भ्रमण करने वाला और अज्ञ (ज्ञानरहित) होता है। यदि वृश्चिक का शनि

हो तो बंधन और वध के मामले मे फँसता है। अर्थात् दुष्ट फल समझना चाहिए। ऐसा व्यक्ति चपल तथा निर्दयी भी होता है। यदि मिथुन या कन्या में शनि हो तो जातक लज्जारहित, धन-हीन होता है, सतान-सुख मे भी कमी होती है। लिखने मे गलती भी करता है लेकिन दूसरो की रक्षा करने का कार्य उसको प्राप्त होता है अर्थात् जहाँ अनेक भृत्य कार्य करते हैं, वहाँ, ऐसे विभाग का अध्यक्ष होता है। यदि वृष राशि का शनि हो तो 'वर्ज्य' (जिनसे प्रेम नही करना चाहिए) स्त्रियो का वहुत इष्ट, धन-रहित होता है, किंतु उस व्यक्ति की अनेक पत्नियाँ होती है। यदि शनि तुला का हो तो मनुष्य विख्यात, धनी और अनेक व्यक्तियो किंवा ग्रामो अथवा नगर के लोगों का पूज्य होता है। यदि कर्क का शनि हो तो मनुष्य ज्ञान-हीन, अल्प मातृसुख वाला, धनरहित, अल्प पुत्र-सुख वाला हो तथा उसके दाँत विरल (छीदे) होते हैं। यदि सिह का शनि हो तो घोर परिश्रम करने वाला, वोझा उठाने वाला, सुखरहित होता है। ऐसे व्यक्ति को दाम्पत्य-सुख और पुत्र-सतान-सुख थोडी मात्रा मे प्राप्त होता है। यदि धनु या मीन का शनि हो तो ऐसा मनुष्य बुढापे मे भी सुखी रहता है। किसी जन-समूह का, शहर का या ग्रामो के समूह का नेता होता है और राजदरवार मे उसका विश्वास किया जाता है। ऐसे व्यक्ति को स्त्री-पुत्रादिको का सुख भी अच्छा प्राप्त होता है। यदि मकर या कुंभ राशि का शनि हो तो जातक अन्य व्यक्ति की स्त्री में रत, धन से समृद्ध. किसी जनसमूह नगर, या ग्रामो के समूह का नेता, मलिन, अलस दृष्टि, धन और वैभव भोग करने वाला होता।

राहु का विविध राशिगत फल—'सारावली' मे लिखा है कि यदि लग्न मे मेप, वृप या कर्क का राहु हो तो समस्त पीड़ाओ से रक्षा करता है। राहु की उच्च राशि तथा स्वराशि के सम्वन्ध मे भी मतभेद है। राहु-केतु का फल प्राय. भावानुसार

विशेष मिलता है।

बहुत से व्यक्ति मिथुन को राहु का उच्च तथा धनु को केतु का उच्च मानते हैं। दूसरे सम्प्रदाय वाले वृषभ को राहु का उच्च और वृश्चिक को केतु का उच्च मानते है एव उनके मत से कन्या राहु का स्वगृह और कुम्भ राहु का मूल त्रिकोण होता है। इसी प्रकार मीन केतु का स्वगृह तथा सिह केतु का मूल त्रिकोण होता है।

तेरहवां प्रकरण

ग्रहों के भाव-फल

किस भाव मे रहने से कौनसा ग्रह क्या प्रभाव दिखलाता है यह नीचे बताया जाता है। यदि लग्न मे सूर्य हो तो जातक शूर-वीर, रण निर्भय, कठोर हृदय होता है। दूसरे व्यक्ति उसे विचलित नही कर सकते। यह सामान्य फल है। यदि लग्न मे मेष राशि का सूर्य हो तो मनुष्य धनी होता है। किंतु नेत्रो में अँधेरा आ जाता है। अर्थात् नेत्र-सम्बन्धी बीमारी होती है। यदि लग्न में सिंह-राशि का सूर्य हो तो उसे रात्रि में दिखलाई नही देता* (यह एक प्रकार की नेत्र की बीमारी है जिसे 'रतौंधी' कहते हैं)। यदि तुला राशि का सूर्य लग्न में हो तो मनुष्य धनशून्य होता है और वृद्धावस्था में अंधा होने का भय भी रहता है। यदि कर्क राशि का सूर्य लग्न में हो तो आँख में 'फूला' रोग होने का भय रहता है। यदि द्वितीय स्थान में सूर्य हो तो ऐसे मनुष्य के पास बहुत द्रव्य रहता है किंतु उसे सरकार की ओर से धन-दण्ड (इनकम टैक्स आदि) लगता है, मुख-सम्बन्धी रोग भी होते हैं।

यदि तृतीय भाव में सूर्य हो तो मनुष्य मतिमान् और पराक्रमी

*नोट—नेत्र सम्बन्धी रोग प्रायः वृद्धावस्था में होते हैं।

होता है। यदि चौथे भाव मे सूर्य हो तो ऐसा व्यक्ति सुखहीन तथा 'पीड़ित मानस' (जिसके चित्त मे सदैव संताप हो) होता है। पंचम मे सूर्य होने से उदर रोग करता है। मनुष्य धनहीन होता है और सतान-कष्ट भी करता है। छठे मे सूर्य होने से आदमी अपने शत्रुओ को जीतता है और बलवान् होता है। किन्तु यदि सूर्य दुर्बल हो तो ऐसा व्यक्ति शत्रुओ से बहुत पीड़ा पाता है। यदि सप्तम स्थान मे सूर्य हो तो ऐसा जातक स्त्रियो से अपमानित या तिरस्कृत होता है (अपनी पुरुषार्थ-हीनता के कारण या अन्य किसी कारण से) अर्थात् स्त्री-सुख मे कमी होती है। यदि अष्टम मे सूर्य हो तो सतान थोड़ी हो और और नेत्र विकार हो। नवम मे सूर्य होने से सतान, सौख्य और धन—इन तीनो की प्राप्ति होती है। जिस व्यक्ति के दशम मे सूर्य होता है वह शूरवीर होता है और बहुत विद्वत्ता की बातो को सुनता है अर्थात् शास्त्र श्रवण करने वाला होता है। एकादश स्थान को लाभ स्थान भी कहते हैं। इस घर मे सूर्य होने से मनुष्य बहुत धनशाली होता है। द्वादश मे सूर्य होने से मनुष्य पतित-कर्मा और भ्रष्ट होता है।

चंद्रमा का द्वादश भावगत फल—यदि लग्न मे चद्रमा हो तो जातक मे निम्नलिखित योगो मे से एक या अधिक योग घटित हो—मूक (गूंगा), उन्मत्त (पागल), जड़ (मूर्ख) अध (अंधा), बधिर (बहरा) या प्रेष्य (नौकर) या नीच (अनुचित कर्म करने वाला) हो। बहुत से रोगों का प्रादुर्भाव वृद्धावस्था मे होता है। यदि बलवान चद्रमा हो या बृहस्पति या अन्य शुभ ग्रहो से से दृष्ट हो तो दुष्ट फल स्वल्प मात्रा मे होता है। यदि मेष, वृष या कर्क राशि का चद्रमा लग्न में हो तो उपर्युक्त प्रकार के अनिष्ट फल नही होते बल्कि मनुष्य धनवान् होता है। यदि चद्रमा द्वितीय स्थान में हो तो मनुष्य धनी, बहुत पुत्र वाला और कुटुम्बी (बड़े

परिवार वाला) होता है। यदि तृतीय स्थान में चंद्रमा हो तो जातक हिंसाशील होता है। यदि चौथे में चंद्रमा हो तो जातक को उन सब बातों का सुख प्राप्त होता है जिनका चतुर्थ भाव से विचार किया जाता है अर्थात् भवनसुख, मित्रसुख आदि प्राप्त होते हैं। यदि पाँचवे स्थान मे चद्रमा हो तो मनुष्य बुद्धिमान् होता है तथा उसे सतान-सुख भी प्राप्त होता है। यदि छठे स्थान में चंद्रमा हो तो ऐसे आदमी की पाचन-शक्ति मंद होती है और रति की इच्छा में भी न्यूनता रहती है। ऐसा व्यक्ति आलसी किंतु बहुत तीक्ष्ण होता है और उसके बहुत से शत्रु होते हैं। यदि सप्तम स्थान में चद्रमा हो तो मनुष्य का चित्त स्त्री या स्त्रियो मे आसक्त होता है। वह तीव्र मदवाला तथा ईर्ष्याशील होता है। किन्तु अष्टम में चद्रमा हो तो जातक बहुत बुद्धिमान होता है तथा व्याधि-पीड़ित रहता है। जिसके नवम में चद्रमा हो उसे पुत्र, मित्र, बधु, धन आदि का उत्तम सुख प्राप्त होता है। जिसकी जन्म-कुंडली मे दशम में चद्रमा हो वह व्यक्ति धनवान्, बुद्धिमान, वीर और धार्मिक होता है और उच्च पदवी प्राप्त करता है। एकादश में चद्रमा होने से आय अच्छी हो और विख्यात हो। ग्यारहवे घर से जो बात देखते हैं उनका प्रायः सुख उपलब्ध होता है। जिसके बारहवें घर मे चद्रमा हो वह क्षुद्र, निकृष्ट, अगहीन (नेत्र आदि मे विकलता) हो।

मंगल का विविध भावगत फल—यदि लग्न मे मगल हो तो शरीर मे क्षत हो, अर्थात् व्रण हों। चोट से या बीमारी से। द्वितीय स्थान मे मंगल होने से कुत्सित अन्न भोजन करने वाला होता है। नवम स्थान मे मगल होने से मनुष्य दुष्कर्मा-पापकृत् होता है। शेष स्थानो मे जो सूर्य का फल कहा है वही मंगल का भी समझना चाहिए।

बुध का विविध भावगत फल—जन्म-कुंडली में बारह भाव

होते हैं। बुध का प्रत्येक भाव में स्थित होने का फल क्रमशः नीचे दिया जा रहा है।

(१) विद्वान्, (२) धनी, (३) प्रबल, (४) पडित, (५) मत्री, (६) शत्रु, रहित, (७) मर्मज्ञ (सुरतोपचारकुशल अथवा हास्य प्रिय), (८) विख्यात, (९) नवे भाव से लेकर द्वादश भाव तक वही फल जो सूर्य का बताया गया है।

बृहस्पति का विविध भावगतफल—बृहस्पति का विविध भावगत फल निम्नलिखित होता है। (१) विद्वान्, (२) सुवाक्य (शीरीसखुन) अच्छी वाणी बोलने वाला, (३) कृपण, (४) सुखी, (५) बुद्धिमान्, (६) शत्रु रहित, (७) अपने पिता, पितामह आदि से अधिक गुणवान्-पदवी प्राप्त करने वाला, (८) नीच दुष्कर्म करने वाला किन्तु स्वराशि या उच्च-राशि का बृहस्पति हो तो अनिष्टकर्मा नही होना अर्थात् जिसके कामो को लोग पसन्द न करें। (९) तपस्वी, (१०) धनी, अपरिमित आय सहित, (१२) खल (दुष्ट)।

शुक्र का विविध भावगत फल—शुक्र का द्वादश भाव मे क्या फल होता है यह नीचे दिया जाता है।

शुक्र यदि प्रथम भाव मे हो तो जातक कामकला मे निपुण और सुखवान् होता है। यदि सप्तम स्थान मे शुक्र हो तो वह कलह-प्रिय या प्रिया से कलह करने वाला तथा सदैव रति की इच्छा करने वाला होता है। यदि पचम स्थान में शुक्र हो तो मनुष्य सुखी होता है। लेकिन यदि नीच का शुक्र हो तो उतना शुभ फल नही दिखावेगा। बाकी भावो में शुक्र का वही फल होता है जो बृहस्पति का।

शनि का विविध भावगत फल—यदि लग्नमे शनि हो तो मनुष्य नित्य दरिद्र, रोगी और कामपीडित होता है। ऐसा व्यक्ति अत्यन्त नीच और बचपन मे व्याधियुक्त भी होता है। ऐसे व्यक्ति को बातचीत करने में प्रगल्भता भी प्राप्त नही होती। किन्तु यदि

तुला, धनु, मकर या कुंभ या मीन राशि का शनि लग्न में हो तो ऊपर जितने भी अनिष्ट फल कहे हैं उनमें से कोई भी अनिष्ट फल नहीं होता बल्कि मनुष्य किसी ग्राम या शहर का स्वामी होता है तथा वह विद्वान् एवं रूपवान् भी होता है।

लग्न में शनि का जो दुष्ट फल कहा है वह तब ही पूर्ण रूप से घटित होता है जब शनि बहुत ही निर्बल हो। बृहस्पति आदि की शुभ दृष्टि होने से मनुष्य तपस्वी, मुमुक्षु (मोक्ष की इच्छा रखने वाला) आदि हो जाता है।

राहु का विविध भावगत फल—यदि जातक के प्रथम भाव में राहु हो तो वह सर्वदा रोगी, व्यर्थ बोलने वाला तथा नीच कर्म करने वाला होता है। परन्तु साथ-ही-साथ साहसिक कार्य करने वाला तथा कुटुम्ब का पालन करने वाला भी होता है। जिस मनुष्य के द्वितीय भाव में राहु हो वह घमंडी, निकृष्ट पदार्थ का सेवन करने वाला, सदैव दुःखी तथा नीच व्यक्ति के संसर्ग में रहने वाला होता है। यदि तृतीय भाव में राहु हो तो जातक धन, स्त्री-पुत्र, मित्र आदि के सुख से पूर्ण रहे परन्तु साथ-ही-साथ भ्रातृ कष्ट भी हो। यदि राहु उच्च का हो तो जातक को सेवक तथा सवारी का सुख प्राप्त होता है। जिसके चतुर्थ भाव में राहु हो ऐसा व्यक्ति धनहीन, भाइयों से अलग रहने वाला, पिशुन व नीच व्यक्तियों का साथी होता है।

पंचम में राहु हो तो उदर-विकार, क्रूर मति और पुत्र-कष्ट करता है। छठे स्थान में राहु बहुत प्रशस्त माना गया है। पुत्र-सुख, धन-सुख तथा शत्रु-नाश होता है। छठे स्थान में राहु की विशेष प्रशंसा की गई है क्योंकि यह मनुष्य को विजयी बनाता है और सब प्रकार के अनिष्टों को दूर करता है। यदि इस स्थान पर मिथुन का राहु हो तो कष्टों को दूर कर अन्य स्त्रियों का सुख भी देता है। यदि सप्तम में राहु हो तो स्त्री-सुख

तथा पति सुख में कमी करे, धन-हानि भी होती है। ऐसा व्यक्ति यदि साझेदारी में कार्य करे तो उसे हानि हो। अष्टम भाव का राहु अनिष्ट माना गया है।

राहुः सदा चाष्टममन्दिरस्थो रोगान्वितं पापरतं प्रगल्भम्।
चौरं कृशं कापुरुषं धनाढ्यम् मायामतीतं पुरुषं करोति॥

अर्थात् ऐसा व्यक्ति रोगी हो या निन्दित कर्म करे या मायावी अर्थात् छली हो।

नवम स्थान में राहु दुर्गा मे भक्ति करता है, किन्तु भाग्य की वृद्धि मे बयालीस वर्ष तक रुकावट पैदा होती है। ऐसा व्यक्ति हिंसक प्रवृत्ति का तथा पिशुन भी होता है। दशम मे राहु बहुत अभ्युदय करता है किन्तु पितृ-सुख मे कमी करता है। ग्यारहवें स्थान मे राहु बहुत लाभकारक होता है। ऐसे व्यक्तियों को उचित तथा अनुचित दोनो मार्गो से धन की विशेष प्राप्ति होती है। व्यय या बारहवे भाव मे राहु का दुष्ट फल होता है। बहुत निरर्थक भ्रमण कराता है और शारीरिक क्लेश तथा द्रव्य-हानि-कारक भी होता है। यदि किसी ग्रह के साथ राहु न हो तब उपर्युक्त फल होगा। यदि किसी ग्रह के साथ हो तो उस ग्रह के प्रभाव से राहु का फल मिश्रित हो जावेगा। राहु के विशेष विचार के लिए चोदहवाँ प्रकरण देखिये।

केतु का विविध भावगत फल—यदि लग्नमे हो तो व्याकुलता रहे शरीर मे वातविकार या पीडा हो और स्त्री-पुत्रादि के सम्बन्ध मे निरंतर चिन्ता बनी रहे। द्वितीय मे केतु होने से केतु की दशात-र्दशा में धन-नाश हो। अपनी वाणी या वचनो के कारण दूसरों से विरोध हो और सग्रहीत धन नष्ट हो जाये। तृतीय भाव मे केतु लोगो से विवाद कराता है किन्तु जातक की विजय होती है। ऐसे व्यक्ति को बाहु-पीड़ा होने की आशका रहती है और चित्त मे उद्वेग (चिन्ता) और भय भी रहता है। यदि चतुर्थ में केतु

हो तो माता के सुख मे न्यूनता हो और पैतृक सम्पत्ति की हानि हो, किन्तु उच्च राशि स्थित केतु हो तो केवल शुभ फल की प्राप्ति होगी। पचम मे केतु सतान-कष्ट करता है। भाइयो से कलह हो और स्वय को वायु-विकार और पेट ठीक न रहे।

छठे स्थान मे केतु शत्रु का नाशक और पराक्रम-वृद्धि-कारक है किन्तु ऐसे व्यक्ति को अपने मामाओ से आदर प्राप्त नही होता। चौपायो (गाय-भैस, घोड़े आदि) से सुख हो। सप्तम मे केतु स्त्री-कष्ट करता है। ऐसे व्यक्ति को सदैव सफर की चिन्ता रहती है। अष्टम भाव मे केतु बवासीर आदि रोग उत्पन्न करता है। किसी सवारी से गिरने का डर भी रहता है। अष्टम मे प्रायः अनिष्ट फल करता है किन्तु यदि मेष, वृष, मिथुन, कन्या और वृश्चिक—इन पाँचो राशियो मे से किसी मे केतु हो तो अष्टम मे होता हुआ भी धन-लाभ करता है :—

भवेदष्टमे राहुपुच्छेऽर्थलाभः सदा कीट कन्या जगोयुग्मकेतुः

नवम भाव मे केतु क्लेश नाश करता है। म्लेच्छ जाति के द्वारा भाग्य में वृद्धि हो। सहोदर भाई-बहन के कारण मन मे व्यथा हो और बाहु रोग हो। यदि दशम भाव मे केतु हो तो पिता का सुख कम होता है। अड़तालीसवे वर्ष के बाद विशेष पराक्रम-वृद्धि हो। यदि मेष, वृष, कन्या या वृश्चिक का केतु दसवे घर मे बैठा हो तो शत्रुओं का नाश करता है। ग्यारहवे भाव मे केतु हर प्रकार से भाग्योदय करता है और लाभकारक होता है। किन्तु सन्तान की उन्नति-कारक नही होता। व्यय भाव का केतु कष्टकारक है। किसी-न-किसी प्रकार का प्रबल रोग उसको घेरे रहता है। पैर, नेत्र या गुदा मे रोगकारक होता है। व्यर्थ मे अपव्यय होता है।

साधारण नियम यह है कि जिस भाव में सौम्य ग्रह हो उस भाव-सम्बन्धी शुभ फल तथा जिस-जिस भाव में पाप ग्रह हो उस भाव-सम्बन्धी कष्ट फल होता है। ऊपर जो भाव-फल बताये गये

हैं उनमें भी, किस भाव का स्वामी होकर ग्रह बैठा है, किस राशि मे बैठा है, आदि के तारतम्य से फल में भिन्नता हो जाती है। उच्चराशि स्थित ग्रह प्राय शुभ फल करते हैं। स्वराशि स्थित ग्रह उत्तम फल ही करते हैं। मित्र-राशि या अधिमित्र राशि में क्रमश: शुभता अधिक होती है, पापफल कम होता है शत्रुराशि या अधिशत्रु राशि में क्रमश शुभता कम होती है, पाप-फल अधिक होता है।

ग्रहों के विशेष वर्ष—सूर्य का २२वाँ, चन्द्रमा का २४वाँ, मगल का २८वाँ, बुध का ३२वाँ, बृहस्पति का १६वाँ, शुक्र का२५वाँ, शनि का ३६वाँ, राहु का ४२वाँ, केतु का ४८वाँ वर्ष होता है।

उदाहरण—यदि सूर्य बलवान् होकर चतुर्थ मे बैठा है या चतुर्थ का स्वामी है तो २२वे वर्ष में स्थान-प्राप्ति, भवन-सुख, वाहन-सुख आदि करावेगा। यदि सूर्य निर्बल होकर चौथे का स्वामी है या चौथे मे बैठा है तो २२वे वर्ष मे मकान या भूमि की हानि, मातृ-कष्ट आदि अशुभ फल करेगा। यदि चन्द्रमा सप्तम मे बलवान् होकर बैठा है या सप्तम का स्वामी है तो २४ वे वर्ष मे विवाह-कारक होगा अर्थात् विवाह करावेगा। शनि यदि चतुर्थ मे है या चतुर्थ का स्वामी है तो ३६ वे वर्ष के बाद भूमि, मकान आदि की प्राप्ति विशेष रूप से करेगा। राहु नवम मे हो तो ४२वे वर्ष के बाद भाग्योदय होगा—आदि भाव, भावेश, भाव पर दृष्टि, भावेश पर दृष्टि आदि का विचार कर फल कहना चाहिए।

चौदहवाँ प्रकरण

भावाधीश विचार

वैसे तो फलित ज्योतिष के अनेक ग्रंथ हैं और अनेक सम्प्रदाय हैं किन्तु पराशर ऋषि-प्रणीत ग्रथो का सर्वोपरि आदर और प्रचार

है। इस ग्रंथ-समुदाय से कुछ थोडे से अमूल्य मोती चुन कर एक पृथक् लड़ी के रूप मे किसी अनुभवी विद्वान् ने सकलित किये है जिस को "उडुदाय-प्रदीप" कहते हैं। 'उडु' कहते हैं नक्षत्र को। नक्षत्र के आधार पर जो दशा लगाई जाती है—वह किसको कैसी जावेगी यही विचार इसमे है। इसी "उडुदाय प्रदीप" का प्रचलित नाम 'लघु पाराशरी' भी है।

नक्षत्र-दशा भी अनेक प्रकार की है। किन्तु 'उडुदाय–'प्रदीप' मे कौन-सी दशा लेना—इसके सम्बन्ध मे ग्रथकार कहते हैं कि विशोत्तरी दशा का ग्रहण करना चाहिए। विंशोत्तरी दशा कैसे निकाली जाती है यह १०वे प्रकरण मे बताया जा चुका है।

द्वादश भाव स्पष्ट कैसे करना है तथा किस भाव से क्या-क्या विचार करना यह भी छठे तथा नवे प्रकरण मे बताया जा चुका है।

केन्द्र-त्रिकोण—प्रथम, चतुर्थ, सप्तम तथा दशम भावो को केन्द्र कहते हैं। पचम तथा नवम भावो को त्रिकोण कहते हैं। बहुत से विद्वानो के मतानुसार लग्न केन्द्र भी है और त्रिकोण भी है।

शुभ-पाप, क्रूर-सौम्य—यह प्रसिद्ध ही है कि शनि, मगल राहु और केतु क्रूर ग्रह हैं तथा बृहस्पति और शुक्र शुभ ग्रह हैं। चन्द्रमा के विषय मे यह सिद्धान्त है कि यदि यह क्षीण हो (कृष्ण पक्ष की दशमी से शुक्ल पक्ष की पचमी तक) तो क्रूर और यदि पक्ष-बल-सहित हो (शुक्ल दशमी से कृष्ण पचमी तक) तो शुभ होता है। बहुत से विद्वान् शुक्ल पक्ष की अष्टमी से कृष्ण पक्ष की अष्टमी तक चन्द्रमा को शुभ और बाकी समय में क्रूर मानते हैं। यदि शुक्ल पक्ष या कृष्ण पक्ष का तारतम्य नही किया जावे तो चन्द्रमा शुभ ग्रह ही समझा जाता है। बुध अपने स्वभाव से पूर्ण शुभ ग्रह ही माना जाता है किन्तु बुध का विशेष गुण है कि जैसे ग्रह के साथ होगा उसका स्वभाव ग्रहण कर लेगा। फलतः शनि व मगल के साथ रहने से अशुभ तथा बृहस्पति–

शुक्र आदि शुभ ग्रह के संग में शुभ हो जाता है। सूर्य क्रूर ग्रह माना जाता है। यदि हम स्थूल रूप से ग्रहों को सौम्य और क्रूर इन दो भागो मे बाँटे तो च०, बु०, वृ०, शु० सौम्य तथा सू०, म०, श०, रा० के० क्रूर माने जावेंगे। इसमें तारतम्य यह है कि म० श०, रा० और केतु क्रूर के साथ पाप भी हैं। किन्तु सूर्य हमारा प्राणदाता है यह पाप नही है—केवल क्रूर है।

दृष्टि—सूर्य आदि सातो ग्रह जिस राशि में बैठे हो उस राशि से ७ वी राशि को देखते हैं और उस सातवी राशि में स्थित ग्रहों को भी देखते हैं। यह सातो ग्रहो के लिए सामान्य नियम है। विशेष नियम यह है कि इस सातवी दृष्टि के अलावा मगल की ४थी और ८ वी राशि पर भी पूर्ण दृष्टि होती है। अन्य ग्रहो की ४थी और ८वीं राशि पर केवल ¾ (पौनी) दृष्टि होती है। वृहस्पति की ५ वी और ९ वी पूर्ण दृष्टि होती है। अन्य ग्रहो की इन दो स्थानो पर केवल आधी दृष्टि होती है। शनि की तृतीय और दशम स्थानो पर पूर्ण दृष्टि होती है। अन्य ग्रहो की केवल ¼ (चौथाई) दृष्टि होती है। आगे जो दृष्टिजनित अर्थात् ग्रहों की परस्पर-दृष्टि होने के कारण जो योग बताये गये हैं वे सब केवल पूर्ण दृष्टि होने पर 'घटित होते हैं। यह नही समझना चाहिए कि आधी दृष्टि होने से योग का आधा फल होगा, चौथाई दृष्टि होने से योग का चौथाई फल होगा।

भावाधिप होने के कारण शुभता—कौन से ग्रह शुभ हैं और कौन से पाप, ये सामान्य नियम ऊपर बताये गये हैं। अब 'पराशर' के अनुसार कौनसा ग्रह शुभ फल देगा तथा कौनसा अनिष्ट फल देगा इसका विशेष निर्णय बताते हैं

त्रिकोण के अर्थात् नवम और पचम भाव के स्वामी कोई भी

नोट—भाव का स्वामी, भावेश, भावाधिप, भावाधिपति सब का एक ही अर्थ है।

ग्रह हों वे शुभ फल ही देते हैं।

तृतीय, छठे तथा ग्यारहवे के स्वामी–"पाराशरी" का श्लोक है—

"पतयस्त्रिषडायानां यदि पापफलप्रदाः।"

इसका साधारणत प्राचीन और अर्वाचीन विद्वान् यही अर्थ करते हैं कि जो ग्रह लग्न से तृतीय, षष्ठ और एकादश भावों के स्वामी हों वे पापफल देने वाले होते हैं। * किन्तु इस श्लोकाश की व्याख्या करते हुए प० विनायक शास्त्री उपनाम वेताल शास्त्री लिखते हैं कि पाप ग्रह यदि तृतीय, छठे या ग्यारहवे के स्वामी हों तो शुभ फल नही देते अर्थात् यदि इन भावों के स्वामी शुभ ग्रह हों तो अपने शुभ स्वभाव का सामान्य शुभ फल देते हैं। वेताल शास्त्री तथा अन्य सस्कृत टीकाकारो में बहुत मतभेद है। हमारा विचार यही है कि यदि तृतीय, षष्ठ या ग्यारहवे का स्वामी बली शुभ ग्रह हो तो अच्छा फल देगा। यदि निर्बल शुभ ग्रह है और षष्ठेश है तो शत्रु-पीड़ा उत्पन्न करेगा और कुछ रोग भी उत्पन्न कर सकता है। साथ-ही-साथ साधारण शुभ फल भी होगा। यदि तृतीय और एकादश का स्वामी है और निर्बल शुभ ग्रह है तो

---

* देखिये "भैरवदत्त कृतोद्योत सस्कृत टीका" पृष्ठ १२, "सज्जन रञ्जनी सस्कृत टीका" पृष्ठ ६३ तथा "सुश्लोक शतक" संस्कृत टीका पृष्ट ३४।

टिप्पणी—यदि शुभ ग्रह बलवान् हो और एकादश का स्वामी होने से उसे पाप मान कर अनिष्ट फल देने वाला मान लिया जावे तो :

लाभेशे लाभ भावस्थे लाभः सर्वेषु कर्मसु।
पाण्डित्यं च सुखं तस्य वर्द्धते च दिने दिने॥

(बृहत्पाराशर, पृ० १३१)

यदि ११वें स्थान का स्वामी ११वें स्थान में हो तो सब कार्यों में लाभ होगा और उसके पांडित्य और सुख में दिनानुदिन वृद्धि होगी—ये सब शुभ फल कैसे घटित होंगे?

किंचित् लाभ करेगा। यदि निर्बल पाप ग्रह है तो तृतीय, छठे और एकादश का स्वामी होने से बहुत पाप फल देने वाला होगा। यदि बलवान् पाप ग्रह है (स्वगृही है, उच्च का है, अच्छे स्थान में स्थित है) तो जिस भाव मे बैठा है उस स्थान को थोडा बिगाड़ेगा किन्तु जिस स्थान का स्वामी है उस भाव की वृद्धि करेगा।

केन्द्रों के स्वामी—'पराशर' का श्लोक है

"न दिशंति शुभं नृणां सौम्याः केन्द्राधिपा यदि।
क्रूराश्चेदशुभं ह्येते प्रबलाश्चोत्तरोत्तराः॥"

इसका भी अधिकतर सस्कृत टीकाओं में यही अर्थ किया गया है कि यदि केन्द्रो के स्वामी सौम्य ग्रह हो तो वे शुभ फल नही देते और केन्द्रो के स्वामी यदि क्रूर ग्रह हो तो वे अशुभ फल नही देते। प० गिरिजाप्रसादजी द्विवेदी, ज्योतिषविभागाध्यक्ष संस्कृत कॉलेज, जयपुर ने अनेक सस्कृत टीकाओ के आधार पर इस श्लोक का निम्नलिखित अर्थ किया है

"जो शुभ ग्रह केंद्र अर्थात् १, ४, ७ और १० स्थान के स्वामी हो तो वे शुभ फल नही देते। यदि पाप ग्रह अर्थात् सूर्य, भौम (मगल), शनि, क्षीण चद्र केंद्र के स्वामी हो तो वे अशुभ फल नही देते। अर्थात् शुभ ग्रह केन्द्राधिपति होने से शुभ फल और अशुभ ग्रह भी केन्द्राधिपति होने के कारण अशुभ फल नही देते। अर्थात् पराशर के मत मे केवल सज्ञा-मात्र से कोई ग्रह शुभ या पाप नहीं है, किन्तु अपनी स्थिति के अनुसार शुभ ग्रह अशुभ एव अशुभ ग्रह शुभ-फलकारक माने गये है। इसलिए 'सुश्लोकशतक' में लिखा है—केंद्राधिपतयः पापा भवन्त्यत्र शुभा यतः।"

किन्तु पडित वेताल शास्त्री की सस्कृत टीका के अनुसार "जो शुभ ग्रह केंद्र अर्थात् ४ थे, ७ वे, १० वे के स्वामी हो तो शुभ फल नहीं देते। इन्ही स्थानो के स्वामी पाप ग्रह हो तो अशुभ फल नही देते।" दोनो अर्थो मे अन्तर यह है कि (१) वेताल शास्त्री

ने इस श्लोक में लग्नेश को केन्द्रेश इसलिए नही माना है कि लग्नेश सदैव शुभ ही होता है, यह आगे बताया गया है। (२) बहुत से लोग यह समझते हैं कि "अशुभ फल नही देते" इसका अर्थ हुआ शुभ फल देते हैं और "शुभ फल नही देते" इसका अर्थ हुआ अशुभ फल देते हैं—ऐसा अर्थ समझना भ्रममूलक है।

भावेशों की परस्पर बल-तुलना—(क) पचम की अपेक्षा नवम विशेष बलवान् होता है।

(ख) तृतीय की अपेक्षा छठा विशेष बलवान् और छठे की अपेक्षा ११वाँ बिशेष बलवान् होता है।

(ग) ४थे से ७वाँ विशेष बलवान्, सातवे से १०वाँ विशेष बलवान् होता है।

(घ) त्रिकोणेश से त्रिषडायपति (३, ६, ११ का स्वामी) पाप-ग्रह विशेष पापी है। और त्रिषडायपति पाप ग्रह से केंद्रेश शुभ ग्रह अधिक पापी है।

(ङ) केंद्रेश शुभ ग्रह से त्रिषडायपति पाप ग्रह शुभ है और इससे (त्रिषडायपति पाप ग्रह से) त्रिकोणेश अधिक शुभ है।

(च) यदि कोई ग्रह दो स्थानो का स्वामी होने से शुभ सिद्ध हो तो उसे अधिक शुभ-फलकारक समझना चाहिए।

(छ) यदि कोई ग्रह दो स्थानों का स्वामी होने से अधिक अशुभकारक हो तो उसे अधिक अनिष्टकारक समझना चहिए।

(ज) ग्रह दीप्त, स्वस्थ आदि अवस्था का है तथा षड्वर्ग में, शुभवर्गो में या स्ववर्ग मे है या शत्रुवर्ग, मे है—इन सब विचारों को निरतर ध्यान मे रखना चाहिए।*

द्वितीय तथा द्वादश स्थान के स्वामी—अब २रे तथा १२ वे स्थान के स्वामी कब शुभ और कब अशुभ होते हैं यह बताया जाता

---

*देखिये १७ वें प्रकरण का अन्तिम भाग, ८ वाँ प्रकरण तथा २४ वे प्रकरण का प्रारम्भिक भाग।

(घ) और (ङ) में पं० वेताल शास्त्री जी का मत दिया है। हमारे विचार से केन्द्रेश-शुभ ग्रह होकर सप्तमेश हो तभी विशेष पाप फल कर सकता है।

है। इन दोनो ग्रहो के स्वामी दूसरे जैसे ग्रह के साथ बैठे हों उसके अनुसार फल देते हैं। अर्थात् यदि द्वितीयेश शुभग्रह के साथ हो तो शुभ फल देता है; यदि अशुभ ग्रह के साथ हो तो अशुभ फल देता है। दूसरी बात यह है कि द्वितीयेश या व्ययेश अन्य ग्रह के साथ जिस भाव में बैठे हों उस भाव के गुणानुसार फल देते हैं। यदि मित्र-राशि मे द्वितीयेश बैठा है तो मित्र से धन मिलेगा। यदि व्ययेश शत्रु की राशि में बैठा है तो शत्रु के द्वारा व्यय होगा। इसके अतिरिक्त यदि दीप्त या स्वस्थ ग्रह के साथ बैठा हो तो शुभ फल; विकल या दु:खित ग्रह के साथ बैठा हो तो अनिष्ट फल, यह साधारण सिद्धान्त भी लागू करना चाहिए।

यहाँ जो शुभ ग्रह या अशुभ ग्रह कहा गया है वह साधारण शुभ-अशुभ नही समझना चाहिए। त्रिकोणेश शुभ होते हैं। लग्नेश भी शुभ होता है, यह अर्थ समझना चाहिए।

व्ययेश के सम्बन्ध मे दक्षिण के ज्योतिष-ग्रन्थो में तथा पराशर के मत में भिन्नता है। ६,८,१२ स्थानो को 'त्रिक' कहते हैं। दक्षिण भारत से प्रकाशित अनेक ग्रंथो मे* ६, ८, १२वें के स्वामी को त्रिकेश होने के कारण महान् अनिष्टकारक कहा है किन्तु पराशर के मतानुसार यदि व्ययेश भी शुभग्रह के साथ शुभ स्थान में बैठे तो शुभ फल ही करेगा। हम पराशर के मत को विशेष मान्य मानते हैं।

अष्टमेश का विचार—आठवाँ स्थान भाग्य स्थान से १२ वाँ है। वैसे तो प्रत्येक स्थान (भाव) से १२ वाँ स्थान उस भाव के लिए हानिकारक होता है—लग्न से १२वाँ स्थान शरीर का व्यय करेगा,

*"षष्ठ द्वादशमष्टमं च मुनयो भावाननिष्टान्विदु
तन्नाथान्वितवीक्षिता यदधिपा ये वा च भावा स्वयम्।
तत्रस्थाश्च यदीश्वरास्त्रय इमे नो सन्ति भावा नृणां।
जाता वा विफला विनष्टविकलास्तत्रातिकष्टोऽष्टमः॥ जातकादेश मार्ग १०-३४

धन से १२ वाँ स्थान लग्न है इसकारण लग्नेश की दशा में धन का विशेष व्यय हो--आदि, किंतु भाग्य स्थान से १२वाँ स्थान भाग्य का व्यय करता है। इसको मृत्यु स्थान भी कहते हैं। भाग्य के व्यय को सबसे अनिष्ट क्यो माना ? भाग्य स्थान को धर्म स्थान भी कहते हैं। नवम स्थान को 'जय' स्थान भी कहते हैं। जब तक धर्म रहता है---धर्म का प्रभाव रहता है तब तक आयु भी रहती है। जब समस्त धर्म का व्यय हो जाता है तो आयु भी समाप्त हो जाती है। इसी कारण अष्टम को सबसे अधिक अनिष्ट कहा है। यहाँ यह भी कहना अप्रासगिक नहीं होगा कि नवम स्थान को धर्म स्थान तथा जय स्थान होने के कारण "यतो धर्मस्ततो जय" यह सिद्धान्त भी लागू होता है। 'पाराशरी' का श्लोक है कि .

भाग्यव्ययाधिपत्येन रन्ध्रेशो न शुभप्रदः।
स एव शुभसन्धाता लग्नाधीशोऽपि चेत् स्वयम् ।।

श्री वेताल शास्त्रीजी इस श्लोक का अर्थ करते हैं कि, "भाग्य का व्यय अर्थात् अष्टम--उसका स्वामी होने से अष्टमेश अत्यन्त अशुभ है। सब व्ययो से भाग्य का व्यय मृत्यु-स्वरूप है इसलिए अत्यन्त अशुभ है। वह अष्टमेश ही लग्न का भी स्वामी हो तो शुभ फल से योग कराता है पूर्ण शुभ नही होता। साराश--अष्टमेश जैसे पापी को शुभ योग कराने वाला लग्नेश अत्यन्त शुभ है यह भी स्पष्ट है।" इस प्रकार वेताल शास्त्रीजी भी अष्टमेश होने के कारण थोडी सी अशुभता मानते हैं। उनके विचार से किंचित् अशुभता लग्नेश होने की अतिशय शुभता मे विलीन हो जाती है। किंतु मन्त्रेश्वर के विचार से कोई ग्रह यदि लग्नेश हो तो वह चाहे किसी भी स्थान का स्वामी हो शुभ फल ही करेगा। वह कहते हैं कि लग्नेश यदि क्रूरग्रह भी हो तो भी वह जिस भाव में बैठेगा उस भाव की वृद्धि ही करेगा। यदि वह किसी दुःस्थान का

(अनिष्ट भाव) का भी स्वामी है तो भी कोई हानि नही करेगा। उदाहरण के लिए यदि मेष लग्न या वृश्चिक लग्न हो तो मगल एक शुभ भाव का (लग्न का) और एक अशुभ भाव का स्वामी होगा किंतु ऐसा मगल यदि पचम में बैठा हो और शुभवीक्षित हो तो पुत्र-प्राप्ति करायेगा। संतान के लिए अहितकारक नही होगा।*

इस प्रकार केंद्र, त्रिकोण,३,६,११,२,१२,८ तथा लग्न के स्वामी का साधारण विचार कर अब केंद्रो के स्वामी का पुन विचार किया जाता है।

शुभग्रह यदि केंद्रों के स्वामी हों:

केंद्राधिपत्यदोषस्तु वलवान् गुरुशुक्रयोः।
मारकत्वेपि च तयोर्मारकस्थानसंस्थितिः॥
बुधस्तदनु चंद्रोपि भवेत्तदनु तद्विधः।
न रंध्रेशत्वदोषस्तु सूर्याचन्द्रमसोर्भवेत्॥

पडित वेताल शास्त्रीजी के मतानुसार केन्द्र के स्वामी होने से शुभ ग्रह औरो से अधिक पापी होते हैं। शुभ ग्रहो मे यह क्रम रखा है—वृहस्पति और शुक्र उसके वाद वुध, उसके वाद चन्द्रमा भी। यदि ये शुभ ग्रह द्वितीय या सप्तम स्थान मे हो (और केन्द्र के स्वामी तो हो ही तो प्रवल मारक होते हैं) प्राय सभी टीकाकारो ने—शुभ ग्रह यदि केन्द्र का स्वामी हो और मारक स्थान (२,७) मे पडा हो तो उसे—प्रवल मारक कहा है। किन्तु हमारे विचार से यदि वृहस्पति, शुक्र या वुध लग्न के स्वामी होने के साथ-साथ अन्य केन्द्र के स्वामी हो तो उनमें मारकता नही होगी। लग्न शरीर है, लग्नेश शरीर का पोषक है।

अष्टमेश होने का दोष वहुत अधिक है यह पहले वताया जा

*विशेष विवरण के लिए देखिये हमारी "फल दीपिका (हिन्दी)" १५ वाँ अध्याय। हमारी "भावार्थ वोधिनी फल दीपिका" (हिन्दी) गोयल एण्ड कम्पनी पुस्तक प्रकाशक तथा विक्रेता, दरीवा कलाँ दिल्ली से मगावें।

चुका है। इस साधारण नियम का एक अपवाद ऊपर के श्लोक में भी बताया गया है कि यदि सूर्य या चंद्रमा अष्टम भाव का स्वामी हो तो उनको अष्टमेश होने का दोष नही लगता। यदि मकर लग्न हो तो सूर्य अष्टमेश होगा; यदि धनु लग्न हो तो चद्रमा अष्टमेश होगा। श्लोक में तो स्पष्ट कहा गया है कि अष्टमेश होने का दोष सूर्य और चन्द्रमा को नही होता और "सुश्लोक शतक" में भी स्पष्ट है कि— 'अष्टमेशोविधुर्वार्को नो पापः शुभ एव सः' किन्तु "सज्जन-रजनी" की टीका मे स्पष्ट कहा गया है कि सूर्य और चंद्रमा यदि अष्टमेश हो तो प्राय. शुभ होते हैं, किन्तु कुछ दोष होता ही है। इसके लिए कोई हेतु न बतलाकर वह लिखते हैं, "इतिगुर्वाज्ञा" अर्थात् गुरु की आज्ञा है। वेताल शास्त्री जी भी लिखते हैं · "अष्टमेश होने का भारी दोष सूर्य-चद्र को नही होता सामान्य दोष तो रहता ही है।

अब मगल के विषय में विशेष विचार उपस्थित करते हैं :

कुजस्य कर्मनेतृत्वप्रयुक्ता शुभकारिता।
त्रिकोणस्यापि नेतृत्वे न कर्मेशत्वमात्रतः॥

भिन्न-भिन्न भावों के स्वामी होने से शुभता होती है या अशुभता, यह बता चुकने पर अब यह बताते हैं कि यदि एक भाव का स्वामी होने से शुभता हो और दूसरे भाव का स्वामी होने से अशुभता हो तो ऐसी स्थिति में किस नतीजे पर पहुँचना चाहिए।

(१) यदि कुम्भ लग्न हो तो मगल तृतीय तथा दशम का स्वामी हुआ। क्रूर ग्रह होने से दशम (केन्द्र) का स्वामी होना अच्छा है, तृतीय का स्वामी होने से पाप फल देता है। नतीजा यह निकला कि फल शुभ नही होगा।

(२) कर्क लग्न वाले का, मगल पचम और दशभ का स्वामी है। केन्द्र का स्वामी क्रूर ग्रह अच्छा है और त्रिकोण (पचम) का स्वामी तो अच्छा होता ही है इस कारण मगल शुभ है।

(३) सिंह लग्न में मगल चतुर्थ तथा नवम का स्वामी हुआ।

चतुर्थ केन्द्र है इस कारण क्रूर ग्रह को इसका स्वामित्व प्राप्त होने से शुभ फल हुआ तथा नवम का—त्रिकोण का स्वामी तो शुभ होता ही है इस कारण मंगल पूर्ण शुभ हुआ।

(४) मेष लग्न में शनि केन्द्रेश होने से शुभ किन्तु एकादश का स्वामी होने से अशुभ हुआ—परिणाम अशुभ।

(५) वृष लग्न होने से नवम दशम का स्वामी होने से शनि शुभ हुआ।

तुला लग्न वाले को शनि चतुर्थ तथा पचम का स्वामी होने से पूर्ण शुभ हुआ। केन्द्र का स्वामी क्रूर ग्रह होने के कारण शुभता तथा त्रिकोणाधिप होने की शुभता। दोनों दृष्टिकोणों से शुभ है।

इस प्रकार विचार करते हुए यह देख लेना चाहिए कि पाप ग्रह केन्द्रेश होने के साथ-साथ त्रिकोण का भी स्वामी हो तो शुभ फल देता है। केवल केन्द्रेश हो तो शुभ फल नहीं देता। यदि पाप ग्रह केन्द्रेश होकर ३, ६, ८ या ११ का भी स्वामी हो तो पाप फल ही देता है। इसी को स्पष्ट करते हुए "सुश्लोक शतक" की टीका में लिखा है :

धर्मस्याप्यष्टमस्येह पतिरेकः खलः स्मृतः।
युग्मलग्ने शनिः पापः स एकोऽष्टमधर्मपः॥
केन्द्रकोणाधिपो यो हि स भवेत्त्रिषडायपः।
दोषयुक् स तु विज्ञेयः पाराशरमुनेर्मतम्॥
केन्द्राधिपः शुभश्चेत्स्यात् स एव त्रिषडायपः।
पाप एव स विज्ञेयः पापश्चेच्छोभनः स्मृतः॥

अर्थात् यदि अष्टम और नवम का स्वामी एक ही ग्रह हो (मिथुन लग्न में शनि होता है) तो वह पापी होता है। यदि कोई ग्रह केन्द्र या कोण का स्वामी होने के साथ-साथ ३, ६, ११ का स्वामी हो तो वह दोषयुक्त हो जाता है—यह पराशर का मत है। यह "सुश्लोक शतक"-कार ने लिखा है। किन्तु वेतालशास्त्री के मत

से शुभ ग्रह ३, ६, ११ का स्वामी होकर कोण का स्वामी हो तो दोषयुक्त नही होता। जैसे कर्क लग्न वाले को बृहस्पति ६ठे और ९वे का स्वामी होता है। यह स्वभावत. शुभ ग्रह है इस कारण इस का दोष नही होगा। हमारा भी यही मत है। यदि शुभ ग्रह केन्द्र का स्वामी होने के साथ-साथ ३, ६, ११ का स्वामी हो तो केन्द्र का स्वामी होने के कारण दोषयुक्त हो जावेगा।

यहाँ पर मन्त्रेश्वर ने कुछ अपने विचार भी दिये हैं। वे लिखते हैं कि :

(१) यदि कोई ग्रह दो भावो का स्वामी हो तो यह देखना चाहिए कि उसकी मूल त्रिकोण, राशि कहा पड़ी है। ३१वे पृष्ठ पर यह बताया गया है कि मूल त्रिकोण राशि कौन-सी है और स्वराशि कौन-सी। यह मूल त्रिकोण राशि जहाँ पर पड़ी हो अर्थात् जो भाव वहाँ पर हो उसी के हिसाब से शुभाशुभत्व स्थिर करना चाहिए। मुख्यता मूल त्रिकोण राशि की होती है।

(२) यदि कोई ग्रह—जो दो राशियो का स्वामी होता है, अपनी दोनों राशियो मे से किसी एक मे स्थित है तो दोनो राशियो के स्वामित्व का प्रभाव उस ग्रह की दशान्तर्दशा मे होगा। लग्न से गिनने पर पहले जो राशि आवे—दशा या अन्तान्तर्दशा के पूर्वार्द्ध में उसका फल और जो राशि बाद मे आवे उसका फल उत्तरार्द्ध मे समझना चाहिए। उदाहरण के लिए किसी व्यक्ति का तुला लग्न है तो पहले वृश्चिक आई, इस कारण पूर्वार्द्ध मे वृश्चिक का फल और उत्तरार्द्ध में मेष का फल होगा।

(३) मन्त्रेश्वर का यह भी मत है कि यदि किसी ग्रह की दो राशियो में से एक अच्छे भाव मे पड़े और एक अनिष्टभाव मे पडे और ग्रह इष्ट भाव वाली राशि मे पडा हो तो अच्छा ही फल करेगा। जो दूसरा अनिष्ट भाव है उसके स्वामित्व का कोई दुष्प्रभाव नही होगा। उदाहरण के लिए यदि किसी व्यक्ति का कन्या

लग्न हो और शनि मकर में हो तो वह पचम और पष्ठ दो भावो का स्वामी हुआ। पचम इष्ट अच्छा (शुभ) भाव है। षष्ठ-अनिष्ट (खराब, अशुभ) भाव है ऐसी स्थिति मे यदि शनि मकर में हो तो वह पाँचवे घर के मालिक होने का शुभ प्रभाव ही करेगा। छठे घर के मालिक होने का दुष्प्रभाव नही करेगा।

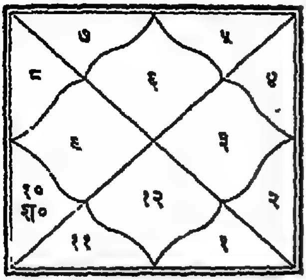

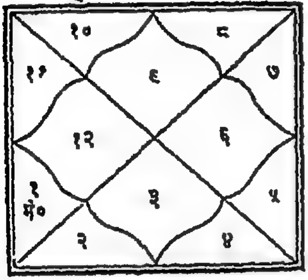

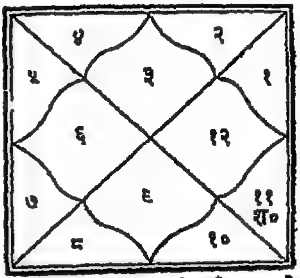

उपर्युक्त धन लग्न वाली कुण्डली मे मङ्गल पाँचवे और १२वे घर का स्वामी है किन्तु पाँचवे घर मे बैठा है। पचम शुभ स्थान है द्वादश अशुभ स्थान है इसका कारण उसे शुभाशुभ दोनो प्रभाव दिखाना चाहिए किन्तु वह मेष मे बैठा है इस कारण पाँचवे घर के मालिक होने का शुभ प्रभाव ही दिखलायेगा। इसी प्रकार मिथुन लग्न वाली कुण्डली मे यदि शनि कुम्भ मे बैठा हुआ नही होता तो अनिष्ट प्रभाव दिखलाता किन्तु कुम्भ मे बैठने से नवम (त्रिकोण) स्वामित्व का शुभ प्रभाव दिखलायेगा। अष्टमेश होने का दोष नही होगा।

नोट —विशेष विवरण के लिए देखिए हमारी "भावार्थ बोधिनी फल दीपिका" (हिन्दी) का अध्याय १६वाँ, पुस्तक-प्राप्ति स्थान गोयल एण्ड कम्पनी, दरीबा, दिल्ली।

राहु और केतु का विचार—राहु और केतु दिखाई देने वाले ग्रह नही हैं। जिस स्थान पर चन्द्रमा का रास्ता पृथ्वी के रास्ते को काटता है उस स्थान का नाम राहु है। उससे ठीक १८० अंश दूरी का बिन्दु (स्थान) केतु कहलाता है। यह राहु और केतु (१) जिस-जिस भाव में हों, (२) जिस-जिस भावेश (भाव के स्वामी) के साथ हों उसका-सा फल दिखलाते हैं। उदाहरण के लिए किसी व्यक्ति की जन्म-कुण्डली में राहु लग्न में बैठा हो और किसी अन्य ग्रह के साथ न हो तो वह लग्न स्थान और लग्नेश का फल दिखावेगा। यदि किसी की कुण्डली में राहु किसी ग्रह के साथ बैठा हो तो साथ वाला ग्रह जिस भाव का स्वामी है उस भाव का फल भी राहु दिखावेगा।

उदाहरण के लिए एक जन्म-कुण्डली नीचे दी जाती है। इसमें राहु लग्न स्थान में नवमेश के साथ है इस कारण राहु चन्द्रमा का तथा लग्न स्थान (एव लग्नेश मंगल) का फल दिखलावेगा। इसी प्रकार सप्तम स्थान में केतु बृहस्पति के साथ है। इस कारण केतु बृहस्पति का

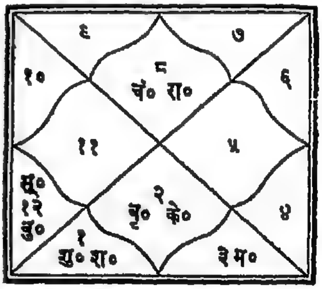

(बृहस्पति दूसरे और पाँचवे घर का मालिक है इस कारण) दूसरे और पाँचवे घर के मालिक का तथा सप्तम स्थान का और (सप्तम स्थान का स्वामी शुक्र है) कारण इस शुक्र का फल प्रबलता से दिखायेगा।

आगे यह बताया जायेगा कि ग्रहों का सम्बन्ध किस प्रकार युति-दृष्टि द्वारा होता है। बहुत से विद्वान् तो यह मानते हैं कि यदि अन्य ग्रह से राहु-केतु दृष्टि द्वारा भी 'सयुक्त' हों तो भी सम्बन्ध हुआ, किन्तु कुछ अन्य विद्वानों का मत है कि राहु-केतु की

किसी ग्रह से युति हो तभी सम्बन्ध मानना चाहिए। यदि दृष्टिवश सम्बन्ध माना जाये तो राहु या केतु से जो सप्तम ग्रह हो उस ग्रह को भी राहु-केतु का ही सम्बन्धी मानकर-उस ग्रह का भी राहु-केतु पर प्रभाव होगा, यह मानना पड़ेगा। "सुश्लोक शतक" में लिखा है कि ·

यत्र भावे स्थितौ राहुकेतू तत्फलदायकौ।
यद्ग्रहस्य तु सम्बंधो तत्फलाय तमो ग्रह : ॥
यद्युक्त. सप्तमो यस्मात् तत् सम्बंधी तमोग्रहः।

यदि यह सिद्धान्त माना जाये तो ऊपर दी हुई कुण्डली में राहु न केवल लग्न–लग्नेश तथा चन्द्रमा का फल करेगा किन्तु बृहस्पति का भी फल करेगा क्योंकि राहु से सप्तम बृहस्पति है।

(१) यदि राहु या केतु त्रिकोण में बैठे हो और किसी केन्द्रेश से सम्बन्ध करते हो अर्थात् केन्द्रेश भी त्रिकोण मे बैठे हुए राहु या केतु के साथ हो तो राजयोग होता है अर्थात् ऐसा त्रिकोण मे बैठा हुआ राहु या केतु अपनी दशातर्दशा मे उत्तम फल दिखाता है। राजयोग का फल किस प्रकार का होगा, यह इस बात पर निर्भर करता है कि पचम मे बैठा है या नवम में–तथा लग्नेश, चतुर्थेश, सप्तमेश या दशमेश किसके साथ बैठा है। इन विचारो के अतिरिक्त जिस ग्रह के साथ बैठा है वह किस-किस बात का कारक है यह भी विचार करना चाहिए। (देखिए पृष्ठ ७०-७१)

(२) यदि राहु या केतु केन्द्र मे बैठे हो और त्रिकोणेश (नवम या पंचम के स्वामी) के साथ हो तो भी विशेष राजयोग होता है। जैसा ऊपर बताया गया है–किस केन्द्र मे बैठा है और किस त्रिकोणेश के साथ बैठा है इस तारतम्य से किस प्रकार का राजयोग होगा यह निर्णय करना पड़ेगा।

पन्द्रहवाँ प्रकरण

राजयोग-विचार

केन्द्रेश और त्रिकोणेश का आपस मे सम्बन्ध होना 'योग' कहलाता है। 'राज' शब्द ऐश्वर्य-बोधक है इस कारण कुण्डली मे कोई भी योग हो, यदि उसका फल शुभ, धनकारक, समृद्धि या उत्कर्ष करने वाला होता है तो उसे ज्योतिषियो की भाषा में 'राजयोग' कहते हैं। ऐसा राजयोग किस हद तक फल दिखायेगा यह सारी कुण्डली की बलशालिता पर, अन्य ग्रहो के बलाबल पर, राजयोग के खडन करने वाले योगो पर तथा देश, काल, पात्र पर निर्भर होता है। योगो की सख्या अपरिमित है। यहाँ केवल त्रिकोण और केन्द्र के स्वामी का योग 'राजयोग' होता है, यह बतलाया जाता है। बहुत से लोग केन्द्रेश व त्रिकोणेश योग को "लक्ष्मी-विष्णु सयोग" भी कहते है। शुभ फल होना स्वाभाविक ही है। किसी भी केन्द्रेश का किसी भी त्रिकोणेश से सबन्ध हो तो वह राजयोगकारक होता है। केन्द्रेश-त्रिकोणेश मे भी तारतम्य होता है। नवमेश-दशमेश का सबन्ध जितना योगकारक हो सकता है उतना चतुर्थेश-पचमेश का नही। इसी प्रकार किसी व्यक्ति की जन्म-कुण्डली मे नवमेश-दशमेश दोनो एक साथ दशम मे बैठे हों तो अधिक योगकारक होंगे। यही दोनो ग्रह यदि एक साथ अष्टम मे बैठे हो तो उतना शुभ फल कैसे दिखा सकते हैं ? यह सब अपनी बुद्धि से ऊहापोह करके समझना चाहिए। इसके अतिरिक्त एक बात की ओर विशेष ध्यान दिलाया जाता है।

"केन्द्रेश-त्रिकोणेश का योग जब अन्य दुष्ट योग से दूषित न हो तब ही विशेष फलदायक होता है।" इसके दो अर्थ हैं :

(१) यदि केन्द्रेश-त्रिकोणेश का योग होने के साथ-साथ ३, ६,

११ का पाप ग्रह स्वामी हो, उसके साथ भी सम्बन्ध होता हो या अष्टमेश (चाहे वह शुभ हो या पाप हो) उससे भी सम्बन्ध होता हो तो विशेष फलदायक नही होता।

(२) दूसरा अर्थ यह है कि त्रिकोणेश का केन्द्रेश से तो सबध हुआ परन्तु केन्द्रेश पापग्रह है और ११ वे का भी स्वामी है तो यह योग विशेप फलदायक नही हो सकता। उदाहरण के लिए मेप लग्न वाले व्यक्ति को सूर्य-शनि का योग उतना फलदायक नही हो सकता क्योकि सूर्य त्रिकोणेश अवश्य है। किन्तु शनि केन्द्रेश (दसवे का मालिक) होने के साथ-साथ 'आय-पति' (ग्यारवे का मालिक) भी है। या दूसरा उदाहरण मेष लग्न वाले का ही लीजिए—शनि और वृहस्पति का सम्बन्ध हो तो, वृहस्पति नवमेश के साथ-साथ १२वे घर का मालिक हो जाता है और १२ वे घर का मालिक होना अच्छा नही समझा जाता, इस कारण शनि-वृहस्पति योग नवमेश-दशमेश योग होने के साथ-साथ व्ययेश—एकादशेश योग, दशमेश-व्ययेश (१२ वे का मालिक) योग करता है। इस कारण "विशेप फलदायक" नही हो सकता। यहाँ "विशेष फलदायक"—इन शब्दों की ओर ध्यान दिलाया जाता है। फलदायक तो होगा किन्तु उतना नही।

(३) पहले बता चुके हैं कि केन्द्रेश यदि शुभग्रह हो तो शुभ नही करता—यह एक प्रकार का दोप हुआ। अन्य प्रकार के दोष ७०वे पृष्ठ पर बताये गये हैं—(जैसे कोई ग्रह नीच हो) अस्तगत हो, शत्रुराशि मे हो—नीचवर्ग मे हो आदि। ये सब दोष हो—तो इस प्रकार के कोई दोप मौजूद होने पर भी केन्द्र त्रिकोण का सम्बन्ध शुभ फलदायक होगा—"विशेप फलदायक" नही होगा—फलदायक तो होगा ही। इसीलिए "सुश्लोक शतक" मे लिखा है

नोट—योगों की विशेष जानकारी के लिए देखिए लेखक की अन्य पुस्तक—'योग रत्नाकर'। जिसमे एक सहस्र से अधिक योगों का संग्रह है।

आयुस्त्रिषष्ठायेशानामसम्बन्धी च यो ग्रहः ।
पुनस्तादृशकेन्द्रेशसम्बन्धी स तु राज्यदः ।
चन्द्रज्ञगुरु काव्यानां मध्ये य केन्द्रनायकः ।
स दुष्टोपि च केन्द्रेशसम्बन्धी राज्यदायकः ।
आयुस्त्रिषष्ठलाभेशः स एव यदि केन्द्रपः ।
दोषयुक्तोप्ययं राज्यं दत्ते संबन्धितस्ततः ।।
एवं त्रिकोणनाथोऽपि दोषयुक्तोऽपि राज्यदः ।
एवं त्रिकोणकेन्द्रेशौ द्वावपीह तु राज्यदौ ।।

सम्बंध किसे कहते हैं—सम्बन्ध चार प्रकार का होता है :

(१) यदि दो ग्रह एक राशि में बैठे हों तो दोनों में पूर्ण सम्बन्ध हुआ । जैसे मेष राशि में सूर्य-मगल बैठे हों, या तुला राशि में चंद्रमा-बृहस्पति बैठे हों इत्यादि ।

(२) यदि ग्रह 'क' जिस राशि में बैठा है उस राशि का स्वामी 'ख' ऐसी राशि में बैठा हो जिसका स्वामी 'क' हो, तो अन्योन्याश्रय सम्बन्ध हुआ । जैसे सूर्य वृश्चिक में बैठा हो, और वृश्चिक राशि का स्वामी मगल सिंह राशि में हो । अर्थात् सूर्य मंगल के घर (राशि) में और मगल सूर्य के घर (राशि) में । इसे भी पूर्ण सम्बन्ध माना है ।

(३) तीसरा दृष्टि-सम्बन्ध—जब दोनों ग्रह एक-दूसरे को पूर्ण दृष्टि से देखते हों तो दोनों में सम्बन्ध माना जाता है । दोनो ग्रहो में परस्पर पूर्ण दृष्टि तभी होगी जब एक-दूसरे से सातवी राशि मे

नोट—इस तृतीय प्रकार के सम्बन्ध का विचार करते समय यह ध्यान में रखना चाहिए कि केवल सप्तम दृष्टि होने पर ही सम्बन्ध होता है । यदि नवम, पंचम दृष्टि हो तो आधी दृष्टि हुई, इसलिए योग या सम्बन्ध का आधा फल होगा यह समझना गलत है । योग का फल तभी पूरा होता है जब हरेक शर्त पूरी हो । जैसे आधी चीनी डालने से दूध कुछ तो मीठा हो जायेगा, ऐसे चौथाई या पौनी दृष्टि होने से कुछ तो योग का फल होगा, यह नहीं समझना चाहिए ।

हों। उदाहरण के लिए सूर्य मिथुन में हो, चन्द्रमा धनु मे हो तो दोनों की एक-दूसरे पर पूर्ण (सप्तम) दृष्टि हुई, इस कारण सूर्य-चद्रमा में पूर्ण सम्वन्ध हुआ।

(४) चौथा सम्वन्ध तब होता है जव ग्रह 'क' जिस राशि में वैठा है उस राशि के स्वामी 'ख' को पूर्ण दृष्टि से देखता हो किंतु ग्रह 'ख' ग्रह 'क' को—पूर्ण दृष्टि से न देखे। उदाहरण के लिए मंगल सिंह राशि मे है और सूर्य मीन मे है तो मगल तो सूर्य के घर में वैठकर सिंह को पूर्ण दृष्टि से देखता है किन्तु सूर्य मंगल को नही देखता।

इन चारो प्रकारो के सम्वन्ध में सवसे अधिक वलवान् नं० (२) उसके वाद नं० (३) है। सवन्ध न० (४) मध्यम वलवान् है और न० (१) सवसे कम वलवान् है:

मुख्यश्चान्योन्यभे खेटौ चान्योन्यं वापि पश्यतः।
संवंधो मध्यमश्चान्यो द्वयोरेकतरो यदा ॥१॥
भवेदेकतरस्थाने तं चापि यदि पश्यति।
एकराशौ यदा द्वौचेत् तदा तेभ्योऽधमः स्मृतः ॥२॥

प्रवल राजयोग—यदि दशम और नवम स्थान के स्वामी एक-दूसरे के स्थान में हो अर्थात् दशमेश नवम मे और नवमेश दशम में हो तो प्रवल राजयोग होता है।

(२) यदि दशमेश नवमेश दोनो नवम स्थान मे हो तो भी प्रवल राजयोग होता है।

(३) यदि दशमेश नवमेश दोनो दशम स्थान मे हो तो प्रवल राजयोग होता है।

नोट—मंगल की ८ वीं दृष्टि भी पूर्ण होती है।

नोट—दशमेश-नवमेश दोनों एक साथ किसी भी स्थान में हो या परस्पर सम्वन्ध करते हो तो शुभ फल देने वाला योग होता है। यह पहले वताया जा चुका है, किन्तु वह प्रवल राजयोग की गणना मे नहीं आता।

(४) "पाराशरी" की "उद्योत टीका" के अनुसार यदि नवमेश-दशमेश दोनो में से एक भी अपने स्थान में हो तो प्रबल राज योग होता है।

"·····उभयोर्मध्ये एक एव वा निजस्थाने निवसेत्तदापि राजयोगकारकौ भवतः।"

किन्तु विनायक शास्त्री जी की सस्कृत टीका के अनुसार यदि दशमेश नवम में हो या नवमेश दशम में हो तभी प्रबल राजयोग होता है। पडित विनायक शास्त्री के मतानुसार दशमेश किसी भी त्रिकोण में हो और नवमेश किसी भी केन्द्र मे हो तो भी राजयोग होता है

"·····यथा कर्कलग्ने केन्द्रेशो भौमो नवमे योगकारक ।

"अथवा त्रिकोणेशो गुरुः सप्तमे योगकारकः॥"

(५) 'प्रकाशा' नामक सस्कृत टीका के अनुसार—"केन्द्रेश त्रिकोण में हो और त्रिकोणेश केन्द्र मे हो यह एक योग हुआ। पहले से यह कुछ न्यून है। केन्द्रेश—त्रिकोणेश दोनो केन्द्र में हो या त्रिकोण मे हो यह दूसरा योग हुआ। यह उससे भी न्यून है। केवल केन्द्रेश त्रिकोण मे हो अथवा केवल त्रिकोणेश केन्द्र मे हो यह तीसरा योग है। यह सबसे न्यून है।"

(६) यदि दशमेश का नवम या पचम किसी भी त्रिकोणेश से सम्बन्ध हो तो राजयोग-कारक होता है। "पाराशरी" में शब्द हैं 'बली केन्द्रनाथ' इसका टीकाकारों ने यह अर्थ किया है कि चतुर्थ की अपेक्षा सप्तम; सप्तम की अपेक्षा दशम बलवान् होता है। इसलिए 'दशमेश' अर्थ लेना। किन्तु इसका दूसरा अर्थ यह भी है कि यदि किसी भी त्रिकोणेश का "बली केन्द्रनाथ" (उच्च, स्वगृही स्वनवाश, शुभस्थान-स्थित, शुभग्रह-दृष्टि आदि के कारण बलवान्) के साथ सम्बन्ध हो तो भी सुयोग होता है। इस मत के अनुसार यदि बली केन्द्रेश का सम्बन्ध नवमेश से हो या पचमेश का बली दश-

मेश से सम्बन्ध हो तो भी विशेष राजयोग होता है।

(७) यदि योगकारक ग्रह जैसे वृष और तुला लग्न वाले को शनि, कर्क और सिंह लग्न वाले को मंगल, कुंभ लग्न वाले को शुक्र अपनी उच्च, स्वगृह, मूल त्रिकोण, स्ववर्ग (नवांश आदि में हों) तो भी उत्तम योग होता है।

(८) यदि राजयोग-कारक नवमेश या दशमेश की दशा हो और शुभग्रह की अन्तर्दशा हो तो—ऐसे शुभ ग्रह का चाहे नवमेश या दशमेश से सम्बन्ध न होता हो तो भी योगफल होता है। इसी प्रकार यदि किसी शुभग्रह की महादशा हो और उससे नवमेश या दशमेश का सम्बन्ध न भी हो तो भी नवमेश या दशमेश की अन्तर्दशा में शुभफल होता है।

(९) जो ग्रह स्वयं पापी भी हैं वे (अपने दशा-काल में) यदि योगकारक से सम्बन्ध रखते हों तो भी उन योगकारक ग्रहों की अन्तर्दशा में योगफल देते हैं।

(१०) यदि कोई केन्द्रेश एक ही त्रिकोणेश से सम्बन्ध करे तो राजयोग और यदि दोनों त्रिकोणेश से सम्बन्ध करे तो विशेष राजयोग होता है। इसी प्रकार यदि पंचमेश केवल एक ही केन्द्रेश से योग करे तो साधारण राजयोग; एक से अधिक केन्द्रेशों से सम्बन्ध करे तो विशेष राजयोग समझना चाहिए। इसी प्रकार यदि नवमेश एक केन्द्रेश से सम्बन्ध करे तो राजयोग, एक से अधिक केन्द्रेशों से सम्बन्ध करे तो विशेष राजयोग समझना चाहिये।

नवमेश, दशमेश की शुभकारिता का अपवाद :

(१) ऊपर नवमेश-दशमेश-सम्बन्ध को बहुत ही प्रबल राज-

नोट—उपर्युक्त (८) और (९) में अन्तर यह है कि योगकारक ग्रह के साथ शुभग्रह का सम्बन्ध हो या न हो, उस शुभ ग्रह की अन्तर्दशा से भाग्योदय हो जाता है। किन्तु पापग्रह की महादशा में यदि उस पापग्रह का योगकारक ग्रह से सम्बन्ध हो तभी योगकारक की अन्तर्दशा में योगफल होता है।

योग बता चुके हैं। किंतु इसका अपवाद भी है। यदि कोई ग्रह नवमेश होने के साथ-साथ अष्टमेश भी हो तो वह योगकारक नही हो सकता। जैसे मिथुन लग्न वाले व्यक्ति की कुण्डली का विचार करते समय शनि को त्रिकोणेश मानकर किसी शुभ योग का विचार नही करना। इसी प्रकार मेष लग्न वाले व्यक्ति की कुण्डली में दशम और लाभ दोनो का स्वामी शनि होता है; इस कारण मेष लग्न की कुण्डली मे शनि से—दशमेश सम्बन्धी जितने योग कहे हैं उन सब का विचार नही करना।

(२) बहुत से विद्वानो के अनुसार-यदि (क) दशमेश लाभेश से सम्बन्ध करे तो भी राजयोग भग होता है और (ख) नवमेश अष्टमेश से सम्बन्ध करे तो भी शुभ फल भग होता है।

(३) जब नवमेश, दशमेश—सबल त्रिकोणेश और केन्द्रेश की—अष्टमेश, लाभेश होने के कारण ऐसी दुर्दशा मान ली गई कि उनको योगकारक होकर शुभ फल करने मे अक्षम मान लिया तो फिर कोई अन्य त्रिकोणेश, अष्टमेश हो—या कोई अन्य केन्द्रेश, लाभेश हो तो वह कैसे राजयोग देने मे समर्थ होगे? अर्थात् नही होगे। इस कारण प्रबल राजयोग-सम्बन्धी जो विचार दिये गये हैं उनमें उपर्युक्त प्रकार से दूषित केन्द्रेश, त्रिकोणेश की योगकारकता का विचार नही करना चाहिए। श्री वेताल शास्त्री लिखते हैं कि "जो त्रिकोणेश अष्टमेश भी हो अथवा जो केन्द्रेश लाभेश भी हो उनके मात्र सम्बन्ध से योग नही होता। जो अन्य त्रिकोणेश अथवा अन्य केन्द्रेश का भी सम्बन्ध हो तो अवश्य योग होगा।"

पंडित वेताल शास्त्री जी के मतानुसार हम एक उदाहरण

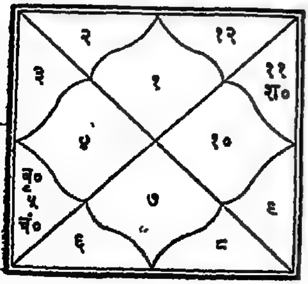

उपस्थित करते हैं। मेष लग्न वाली साथ की कुण्डली मे शनि दशमेश होने के साथ-साथ लाभेश भी है, इस कारण शनि और वृहस्पति का सम्बन्ध (वृहस्पति नवमेश है) योगफल नही उत्पन्न कर सकता किंतु वृहस्पति नवमेश है और चंद्रमा चतुर्थेश है इस कारण

बृहस्पति चंद्रमा का योग तो शुभ फल करेगा ही यह बात ११७ वे पृष्ठ पर समझाई गई है। साधारण फल तो होगा ही—विशिष्ट राजयोग फल नही होगा यह स्मरण रखना चाहिए।

बहुत विशिष्ट राजयोग—(१) यदि लग्नेश और दशमेश दोनों एक साथ लग्न मे हों तो ऐसा मनुष्य बहुत विख्यात होता है।

(२) यदि लग्नेश और दशमेश दोनो दशम मे हो तो भी उपर्युक्त (१) में कहा गया शुभ फल होगा।

(३) यदि लग्नेश दशम मे और दशमेश लग्न मे हो तो भी विशिष्ट राजयोग फल होता है।

(४) नवमेश, दशमेश दोनो (क) दशम में हों या (ख) दोनो नवम मे हो या (ग) नवमेश दशम मे, दशमेश नवम में हो तो विशिष्ट राजयोग होता है।

ऐसे योग वाले व्यक्ति विशिष्ट ख्यातिमान्, विजयी, वीर्यवान्, पराक्रमी, सग्राम, विवाद आदि मे जयशाली होते हैं।

इसी प्रकार लग्नेश व चतुर्थेश के सम्बन्ध से मनुष्य सुखी होता है। लग्नेश व पंचमेश का सम्बन्ध होने से मनुष्य विद्वान् और बुद्धिमान् होता है। लग्नेश, सप्तमेश सम्बन्ध से सत्कलत्रवान् (अच्छी पत्नी वाला) और सत्कर्म करने वाला होता है। लग्नेश-सप्तमेश सम्बन्ध होने से मनुष्य भाग्यवान् होता है। पचम-दशमेश सम्बन्ध से राजकार्यो मे बुद्धिमान् होता है, पंचमेश-चतुर्थेश सम्बन्ध से बुद्धि का सदुपयोग करने के कारण सुखी होता है। पचममेश-सप्तमेश सम्बन्ध से बुद्धिमती पत्नी प्राप्त होने के कारण सद्गृहस्थ होता है। नवम-चतुर्थेश सम्बन्ध होने से भाग्योदय होने के कारण सुखी होता है तथा नवमेश-सप्तमेश सम्बन्ध से भाग्यशाली पत्नी की प्राप्ति से सद्गृहस्थ होता है। नवमेश-दशमेश सम्बन्ध से भाग्यसुख और राज्यसुख प्राप्त होते हैं।

सोलहवाँ प्रकरण

मारक-विचार

जन्म-लग्न से ८वें भाव को आयु का स्थान कहते हैं और इस आठवे भाव से आठवे (अर्थात् जन्म लग्न से तीसरे) भाव को भी आयु-स्थान कहते हैं। आयु विचार मे इन दोनों में मुख्यता आठवे भाव की है। इनके व्यय स्थान (१२वे स्थान) को मारक-स्थान कहते हैं — आयु का व्यय – खर्च हो जाना, समाप्त हो जाना ही मृत्यु है। इसी कारण आठवेका व्यय स्थान (आठवे से बारहवाँ स्थान) लग्न से सप्तम हुआ तथा तृतीये से व्यय स्थान (तृतीय से बारहवाँ स्थान) लग्न से द्वितीय स्थान हुआ। ये दोनो स्थान लग्न से द्वितीय और सप्तम हैं। सप्तम स्थान प्रत्येक कुण्डली मे "मारक स्थान" होता है। मारक स्थान का स्वामी मारक होता है अर्थात् मारने वाला होता है। मृत्यु सबसे अधिक कष्टदायक वस्तु है। उसकी अपेक्षा धन-नाश, मान-नाश अप्रतिष्ठा, दीनता आदि कम कष्टदायक हैं। इस कारण प्रत्येक मारक की दशा में जब मारक की अन्तर्दशा आती है तब मृत्यु नही होती, किन्तु विपत्ति, उलझन, कलह, रोग, मान-नाश, धन-नाश आदि घटनाये अपना फल दिखाती हैं। ऊपर दो आयु के स्थान बताये गये हैं। उन दोनो में चूँकि अष्टम तृतीय की अपेक्षा प्रबल है इसी कारण अष्टम से बारहवाँ अर्थात् लग्न से सप्तम, तृतीय से द्वादश—अर्थात् लग्न से द्वितीय की अपेक्षा विशेष बलवान् है।

यह बतलाने का तात्पर्य यह है कि वैसे तो अस्त, नीच, शत्रु-राशि-स्थत, दु स्थान-स्यित आदि अनेक कारणो से ग्रह अनिष्ट प्रभाव दिखलाता है और द्वितीयेश और सप्तमेश में जो अधिक दुष्ट और अधिक अनिष्ट हो वह अधिक प्रभाव दिखलावेगा। किंतु यदि

दोनो एक ही कक्षा के हो तो उन दोनो मे कौन विशेष मारक-प्रभाव दिखावेगा यह स्पष्ट करने के लिए वताया है कि द्वितीयेश की अपेक्षा सप्तमेश विशेष मारक होता है।

द्वितीय स्थान या सप्तम स्थान के न केवल स्वामी ही मारक होते हैं किन्तु उनसे सम्वन्ध रखने वाले ३, ६, ११ के स्वामी यदि पापग्रह हों तो वे भी अपनी दशान्तर्दशा में मारक प्रभाव दिखाते हैं। इसके अतिरिक्त यदि ३, ६, ११ के स्वामी पापग्रह होकर द्वितीय या सप्तम स्थान में बैठे हो तो भी वे मारक का-सा ही प्रभाव दिखाते हैं। यहाँ तीन बाते वतलाई गई हैं—(क) द्वितीयेश, और सप्तमेश का मारक होना।(ख) द्वितीय और सप्तम स्थानो मे स्थित पापग्रहो का मारक होना। (ग) द्वितीयेश और सप्तमेश से सम्वन्ध रखने वाले पापग्रहो का मारक होना। सम्वन्ध चार प्रकार का होता है यह ११८-१६ पृष्ठ पर वताया जा चुका है। वहुत-से विद्वानो का मत यह है कि पाप-ग्रह द्वितीय और सप्तम के स्वामी के साथ हो तभी मारक प्रभाव दिखाता है। अन्य तीन प्रकार के सम्बन्ध होने से मारक प्रभाव नही दिखाता।

किस ग्रह की दशातर्दशा मृत्यु करेगी—यह निर्णय करने के पहले यह विचार करना चाहिए कि इस व्यक्ति की अल्पायु है, या मध्यायु या दीर्घायु।

अल्पायु, मध्यायु व दीर्घायु विचार—(१) यदि लग्नेश, अष्ट-मेश और दशमेश वलवान् हो तो प्रायः दीर्घायु होती है। किन्तु लग्नेश को अष्टमेश की अपेक्षा विशेष वलवान् होना चाहिए।

(२) केन्द्र मे शुभग्रह हों और पापग्रह (मगल- शनि, राहु) ३, ६, ११वें स्थान मे हो तो मनुष्य प्राय पूर्ण आयु पाता है।

(३) यदि पुरुष की कुण्डली मे सूर्य और स्त्री की कुण्डली में चद्रमा वलवान् हो तो ऐसा पुरुप या स्त्री प्राय दीर्घायु होता है।

(४) बहुत से आयु के योग—६०, वर्ष की आयु हो,—७० वर्ष की आयु हो—आदि योग अनेक सस्कृत ग्रंथों में स्थान-स्थान पर प्राप्त होते हैं। इन आयु-योगों का, राजयोगों का, धन-योगों का, दरिद्र-योगों का तथा विविध प्रकार के योगों का सग्रह हमारे "योग रत्नाकर" नामक ग्रथ मे देखिए।

जैमिनि का मत—आयु-विचार मे प्रायः जैमिनि का मत विशेष प्रचलित है — (१) लग्नेश, अष्टमेश, (२) लग्न, चन्द्रमा, (३) लग्न, होरा लग्न से आयु का विचार किया जाता है। होरा लग्न वनाना आगे बताया गया है। (देखिये पृष्ठ १२७)

यहाँ पुन. इस ओर ध्यान आकर्षित किया जाता है कि मेष, कर्क, तुला और मकर—ये चार 'चर' राशि हैं। वृष, सिह, वृश्चिक और कुम्भ—ये चार 'स्थिर' राशि हैं। मिथुन, कन्या, धनु और मीन—ये चार 'द्विस्वभाव' राशि हैं।

(क) यदि लग्नेश और अष्टमेश दोनो चर राशि में हो या एक स्थिर राशि मे, दूसरा द्विस्वभाव राशि में हो तो दीर्घायु योग होता है। यदि दोनो द्विस्वभाव राशियो में हो अथवा एक चर राशि में, दूसरा स्थिर राशि मे हो तो मध्यायु योग होता है। यदि दोनों स्थिर राशि में हों, या एक चर राशि मे, दूसरा द्विस्वभाव में हो तो अल्पायु योग होता है। लग्नेश और अष्टमेश—इन दोनो से उपर्युक्त विचार करना चाहिए।

(ख) जैसे ऊपर लग्नेश और अष्टमेश से विचार करना बतलाया गया है, उसी प्रकार लग्न और चद्रमा दोनो चर, स्थिर या द्विस्वभाव, किन राशियों मे हैं इस से भी दीर्घायु योग बनता है, या मध्यायु, या अल्पायु यह निर्णय करना उचित है।

(ग) किसी-किसी विद्वान् के मत से लग्न और चन्द्रमा की बजाय शनि और चद्रमा से भी विचार करना विशेष उपयुक्त है।

(घ) जैसे ऊपर लग्नेश और अष्टमेश से विचार करना

बताया गया है उसी प्रकार जन्म-लग्न और होरालग्न से भी विचार करना उचित है कि दोनो चर, स्थिर, द्विस्वभाव—किस प्रकार की राशियो में है।

होरा लग्न—होरा लग्न बनाना नीचे बताया जाता है।*

सूर्योदय से कितनी देर बाद जन्म हुआ है यह देखिये। अर्थात् इष्टकाल क्या है? मान लीजिए किसी का इष्टकाल ३० घडी ५९ पल है इसको १२ से गुणा करने से अश हुए—३७१–४८ (३७१ अंश४८ कला); इन अशों में ३० का भाग देने से आया १२ राशि ११ कला ४८ विकला। राशियो में १२ का भाग देना चाहिए जो शेष बचे वह स्थापित करना उचित है। राशियों में १२ का भाग देने से शेष बचा ०—११—४८। मान लीजिए किसी का जन्मकालीन तात्कालिक सूर्य ७—२९—५१—२४ है। इस तात्कालिक सूर्य में जो ऊपर ०—११—४८ आया है वह जोडिए।

	रा०	अ०	क०	वि०
	७	२९	५१	२४
	०	११	४८	०
योग—	८	११	३९	२४

यह होरा लग्न स्पष्ट हुआ अर्थात् होरा लग्न 'धनु' हुआ। जैसे लग्नेश-अष्टमेश से दीर्घायु, मध्यायु, अल्पायु विचार करना बताया गया है उसी प्रकार जन्म-लग्न तथा होरा-लग्न से भी विचार करना चाहिए कि दीर्घायु, मध्यायु और अल्पायु कौनसा योग बनता है।

* यह उदाहरण "जैमिनि पद्यामृत" नामक सस्कृत ग्रंथ से लिया गया है। विशेष विवरण के लिए देखिए जैमिनि सूत्रानुसार आयुविचार के सिद्धान्त जो महामहोपाध्याय स्वर्गीय पंडित दुर्गाप्रसाद जी द्विवेदी ने उपर्युक्त सस्कृत-ग्रंथ में विस्तार से समझाये है।

ऊपर जो चार प्रकार बताये गये हैं उनमें से तीन से जो योग आवे वह मानना चाहिए। यदि किसी से दीर्घायु, किसी से मध्यायु और किसी से अल्पायु आवे तो दो मतो से जो आवे वह मान्य है। यदि दो मतो से एक योग (दीर्घायु आदि) और अन्य दो मतो से (अल्पायु या मध्यायु)—भिन्न-भिन्न 'आयु' आवे तो यह देखिये कि बृहस्पति केन्द्र मे है या नही। (१) बृहस्पति केन्द्र में हो तो अधिक आयु वाला मत मानना चाहिये। (२) यदि लग्न या सप्तम मे चन्द्रमा बैठा हो और दो मत से आयु का एक निर्णय आवे—अन्य दो मत से भिन्न निर्णय आवे, तो लग्न और होरालग्न से जो निर्णय आवे उसे मानना चाहिये।

३२ वर्ष तक अल्पायु, ३२ से ६४ वर्ष तक मध्यायु, ६४-से ९६ वर्ष तक दीर्घायु होती है। यहाँ जैमिनि द्वारा आयु-विचार की झलक-मात्र दिखाई गई है। पूर्ण आयु-विचार बहुत कठिन है। बहुत से विद्वानो के अनुसार पिण्डायु, निसर्गायु,अशायु आदि बनाकर आयु निर्णय करना चाहिए। परन्तु उतनी ज्योतिष की प्रौढता केवल उन विद्वानो को हो सकती है जो वर्षो तक केवल इस ज्योतिष-विद्या मे अपना तन, मन, धन, लगावे। ज्योतिष के साधारण प्रेमियों के लिए जो जैमिनि के नियम ऊपर बताये गये हैं–वे ही पर्याप्त हैं।

इस प्रकार जब यह समझ में आ जावे कि दीर्घायु, मध्यायु तथा अल्पायु मे कौनसा योग आता है, उस समय मे मारक की महादशा और मारक की अन्तर्दशा आवे तब मृत्यु होती है।

यदि वह मारक की दशा तृतीय, पचम या सप्तम हो तो उसमें मृत्यु होने की विशेष सभावना होती है। ७२वे पृष्ठ पर यह बताया गया है कि महादशा का क्रम निम्नलिखित है :

सू० च० म० रा० बृ० श० बु० के० शु० सू० च० म० रा० बृ० श०

जन्म के समय यदि राहु की दशा है तो पहली दशा राहु की,

तीसरी शनि की, पाँचवी केतु की सातवी सूर्य की हुई। इसी प्रकार सर्वत्र समझना चाहिए। अल्पायु, मध्यायु, दीर्घायु, विचार से जो महादशा 'मारक' मानी है—वह यदि तीसरी, पाँचवी, सातवी हो तो विशेष अनिष्ट प्रभाव दिखलाती है।

मारकेश

१२४वे पृष्ठ पर यह बताया गया है कि कौन, कौन से ग्रह मारक होते हैं—मारक ग्रह की दशा मे मारक ग्रह की अन्तर्दशा मृत्युकारक होती है। यदि दीर्घायु हो और मध्यायु (३२-६४ के बीच मे), या अल्पायु (३२ से पहले) के समय मारकग्रह की महादशा-अन्तर्दशा हो तो ऐसी दशा केवल रोग, क्लेश, ऑपरेशन आदि कष्टकारक होती है—जान से नही मारती।

यदि उस काल में मारकेश की दशा न आवे—

जैमिनि तथा अन्य मत से किसी की आयु-निर्णय करने के उपरान्त . यदि उस समय द्वितीपेश या सप्तमेश की दशा न आती हो तो :—

(१) और यदि वृहस्पति या शुक्र केन्द्र के मालिक होकर मारक स्थान में वैठे हो तो मारक हो सकते हैं—इसमे भी हमारे मत से यह तारतम्य है .—

(क) यदि लग्नेश होकर मारक स्थान में भी वैठेगा तो मारक होने की सम्भावना न्यून है।

(ख) यदि सप्तमेश होकर मारक स्थान मे वैठेगा तो सभावना विशेप है।

(२) किसी मारकेश की दशा न आती हो तो १२ वे घर का मालिक—व्ययेश (लग्न-शरीर है—शरीर के स्थान का व्यय—अर्थात् मृत्यु) की दशा मे भी मृत्यु हो सकती है।

(३) यदि व्ययेश की दशा भी न आवे तो व्ययेश से सम्वन्ध करने वाले ग्रह की महादशा, अन्तर्दशा मे मृत्यु हो सकती है।

(४) यदि व्ययेश के सम्वन्धी की दशा भी न हो तो शुभग्रह

---

*११०वें पृष्ठ पर सूर्य और चन्द्रमा के मारकत्व पर विशेष विचार किया है,—वह भी देखिए।

की दशा मे भी—या अष्टमेश की दशा मे भी मृत्यु हो सकती है।

(५) ऊपर जो 'मारकेश' तथा (१), (२) (३) व (४) मे जो ग्रह बताये गये—उनकी—किसी की भी महादशा न हो तो—केवल मात्र जो पापी है उनकी महादशा तथा अन्तर्दशा में भी मृत्यु हो सकती है। शनि में मगल, मगल में शनि, मंगल में राहु, राहु में मगल, शनि मे राहु, राहु में शनि ये सब क्रूर महादशा में क्रूर अन्तर्दशा के उदाहरण हैं।

(६) सूर्य और चद्रमा प्रायः मारक नही होते।

(७) यह भी स्मरण रखना चाहिये कि जो लग्नेश का अधिमित्र या मित्र हो वह मित्र के घर (लग्न अर्थात् शरीर) का नाश नही करता—मारता नही है।

(८) जो लग्नेश का अधिशत्रु या शत्रु हो वह अपने शत्रु के घर को (लग्न अर्थात् शरीर को) नष्ट करता है—चाहे मार ही डाले या उतना प्रबल नही हो तो पीड़ा अवश्य पहुँचाता है।

शनि की विशेष मारकता—यदि कई ग्रहो की मारकता प्राप्त हो तो (अर्थात् कई ग्रह 'मारक' बनने के अधिकारी हो तो) उन सब मे 'शनि' महाराज प्रबल मारकेश माने जाते हैं। जैसे फौज के कई अफसर हो तो सबसे बड़ा अफसर सलामी लेता है—उसी प्रकार कई ग्रहो के मारक होने पर शनि महाराज को 'मारक' बनने का अधिकार प्राप्त होता है। इस कारण यदि शनि मारक ग्रहों से सम्बन्ध करता हो या स्वय मारकेश हो तो "प्राण की भेंट" इन्ही शनि देव को अर्पण की जाती है। उदाहरण के लिए यदि मारकेश की दशा जा रही है और बृहस्पति, शनि, बुध तीनों को 'मारक होने का अधिकार प्राप्त है तो न बृहस्पति मारक होगा (शनि महाराज आगे आकर अपनी भेंट (प्राण) लेने के लिए विराजमान हैं—इस कारण बृहस्पति की अन्तर्दशा मारक नही होगा ?) न बुध, (क्योंकि चाहे बुध को अधिक मारकत्व प्राप्त हो किन्तु

शनि महाराज पहले ही सफाया कर देंगे)।

किन्तु शनि तभी मारक होता है जब इसको स्वय को मारकता प्राप्त हो या मारकों से सम्बन्ध करे। इसीलिए "सुश्लोक शतक" में लिखा है :

मारकेशस्य सम्बन्धी यदि पापः शनैश्चरः।
मारकः स शनिर्ज्ञेयो नान्ये मारकलक्षणाः॥

यद्यपि कारक (शुभ प्रभाव दिखाने वाले) और मारक इन दोनो का काफी विश्लेषण ऊपर किया गया है और पाठको को इस नतीजे पर पहुँचने मे कोई दिक्कत नही होगी कि कौनसा ग्रह अच्छा प्रभाव दिखलावेगा या कौनसा बुरा–किन्तु फला ग्रह जान से मार ही डालेगा यह नवीन ज्योतिषियो को कहना उचित नही है, क्योकि आयु-निर्णय करना बहुत कठिन बात है। ऋषियो ने स्पष्ट कहा है कि जन्म से ४ वर्ष तक–माता के दोष से मृत्यु होती है (अर्थात् माता की जन्म-कुण्डली मे कोई क्रूर ग्रह पाँचवे भाव मे पडे हो या पाँचवे भाव को देखते हो या पचमेश निर्बल, दोषयुक्त हो या बृहस्पति नीच, दु स्थान गत हो)। ४ से ८ वर्ष की अवस्था तक पिता के दोष से बालक की मृत्यु होती है तथा ८ से १२ तक बालक की स्वयं की जन्म-कुण्डली मे कोई अनिष्ट ग्रह पडे हो–उस दोष से अकाल मृत्यु होती है। पराशर ऋषि ने कहा है कि दीर्घायु, मध्यायु, अल्पायु आदि का विचार २४ वर्ष की अवस्था के बाद करना चाहिए।

इसके अतिरिक्त 'श्रीपतिपद्धति' मे स्पष्ट कहा गया है कि 'जो धर्म-कर्म मे निरत है, विजितेन्द्रिय है, पथ्य भोजन करते है, द्विजो और देवताओ के भक्त हैं (अर्थात् सदाचारी हैं) उनके विषय मे आयु का विचार ठीक बैठता है। जैसे किसी घडी की गारटी ५ वर्ष की है–आप उस घड़ी को अच्छी तरह रखेंगे तो ५ वर्ष चलेगी। अगर आप कभी उसे जेब से गिरा दे या बच्चे को खेलने को

दे दे या लापरवाही से ओस में रख दे तो ऐसी हरकतो से घडी जल्दी ही खराब हो जावेगी :

"ये पापलुब्धाश्चौरा ये देवब्राह्मणनिन्दकाः ।
बह्वाशिनश्च ये तेषामकालमरणं ध्रुवम् ॥"

"जो पापी, लोभी चोर या देवताओ और ब्राह्मणो के निन्दक होते हैं, बहुत खाने वाले होते हैं, उनकी अकालमृत्यु होती है ।"*

कहने का तात्पर्य यह है कि जो आयु हम अपने जन्म के समय विधाता से लेकर आते हैं और जो जन्म-कुण्डली से प्रकट होती है उसको हम यम, नियम, प्राणायाम, सदाचारपूर्वक उपभोग कर सकते हैं और मदिरापान आदि दुर्व्यसनो द्वारा—ब्लड प्रेशर, दिल की बीमारी आदि उत्पन्न कर आयु को कम भी कर देते हैं ।

सत्रहवां प्रकरण

महादशा तथा अन्तर्दशा का फल

पिछले प्रकरणो मे यह बताया जा चुका है कि किस ग्रह को अच्छा समझना—कौनसा ग्रह शुभ फल दिखलावेगा, किसे खराब—अशुभ-फलकारक समझना । यह निर्णय करने के बाद इस नतीजें पर पहुँचना चाहिये कि शुभ फल क्या होगा या अशुभ फल क्या होगा ?

(१) प्राय. ग्रह जिस भाव या जिन भावो का स्वामी होता है उस भाव-सम्बन्धी फल दिखलाता है ।

(२) जिस भाव मे बैठा हुआ होता है उस भाव-सम्बन्धी फल भी दिखलावेगा ।

(३) जिस भाव को देखता हो उस भाव-सम्बन्धी भी फल दिखलावेगा ।

उदाहरण के लिए यह किसी व्यक्ति की जन्म-कुण्डली मे छठे तथा

* श्रीपति पद्धति, अध्याय ४, श्लोक ३७-३८ ।

नवे भाव का मालिक वृहस्पति दशम मे वैठा है। और बृहस्पति यदि वलवान् है तो लग्न से द्वितीय स्थान (जहाँ बैठा है उससे पाचवे स्थान को पूर्ण दृष्टि से देखने के कारण) धन-स्थान को वढ़ावेगा। दशम मे वैठा है इस कारण दशम का फल करेगा और छठे तथा नवे भावो का स्वामी है तो उनका भी फल करेगा।

(४) जिन ग्रहो से सम्बन्ध करता है उन सम्बन्धियो के शुभाशुभ से भी प्रभावित होगा।

इसके अतिरिक्त प्रत्येक ग्रह की कुछ विशेषता—कुछ खास तासीर होती है—कुछ अपना प्रभाव होता है। ग्रह कही भी वैठा हो कुछ विशेप वातों का कारक होता है। (देखिए पृष्ठ ७०-७१)

उदाहरण—कहने का तात्पर्य यह है कि ऊपर वताया गया है कि वृहस्पति पुत्रकारक है, तो यदि वृहस्पति की अन्तर्दशा हो तो चाहे वह पुत्र-भाव (पचम स्थान) का स्वामी न भी हो, पचमेश से सम्वन्ध न भी करता हो—न पचम मे वैठा ही हो तो भी अपनी अन्तर्दशा मे पुत्रोत्पत्ति या पुत्र से लाभ या हर्ष करा सकता है। इसी प्रकार अन्य उदाहरण लीजिए—चाहे शुक्र का सप्तम भाव या सप्तम भावेश से कोई सम्वन्ध न हो तो भी शुक्र की अन्तर्दशा में विवाह, स्त्री-लाभ, विवाह-सुख आदि करा सकता है। ऊपर जो उदाहरण दिए गए हैं वे यह मान कर कि वृहस्पति और शुक्र जन्म-कुण्डली मे अच्छे पडे हैं (स्व-राशि, मित्र-राशि, स्व-नवांश आदि मे स्थित होकर शुभ स्थान में स्थित हैं) यदि इसके विपरीत—वृहस्पति नीच या अप्टम या कप्टकारक अवस्था मे पडा है तो पुत्र-जनित कप्ट करेगा— शुक्र नीच, निर्वल, अशुभ और पीडाकारक पडा है तो स्त्री-जनित कष्ट का अनुभव करावेगा—यह ग्रह के वलावल का विचार कर, अपनी वुद्धि से ऊहापोह कर निर्णय करना चाहिए। अस्तु, ऊपर दिए गए सिद्धांतो को विचार मे रखते हुए किस ग्रह की महादशा मे कौन सी अन्तर्दशा कैसे जावेगी—इसके कुछ नियम

नीचे बताये जाते हैं :

(१) ग्रहों का यह साधारण स्वभाव है कि अपनी महादशा में जब प्रारम्भ में अपनी अन्तर्दशा आती है—उस अन्तर्दशा के काल मे—अपने स्वभाव के अनुसार अपना ही पूर्ण शुभ या अशुभ फल नही—केवल अपना सामान्य शुभ या अशुभ फल देते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि जैसे वर्षा ऋतु के प्रारम्भ होते ही इन्द्रदेव अपनी समस्त वर्षा प्रारम्भ के दिनो में ही नही बरसा देते, या गर्मी के प्रारम्भ होते ही सूर्यदेव अपनी समस्त गर्मी नही डाल देते—उसी प्रकार किसी ग्रह की महादशा लगते ही—अपनी अन्तर्दशा में ही—वह अपना पूर्ण फल नही देता है, सामान्य मात्र देता है।

यहाँ स्वभावतः यह शका होती है कि जब अपनी ही महादशा और उसमें अपनी ही अन्तर्दशा मे पूर्ण फल नही देता तो फिर किन ग्रहो की अन्तर्दशा में अपना पूर्ण फल देता है ? इसका उत्तर यह है कि महादशा जिसकी चल रही रही है, वह ग्रह

(क) अपने--आत्म सम्बन्धी, तथा

(ख) निज सधर्मी ग्रहों की अन्तर्दशा में अपना पूर्ण फल देते हैं।

आत्म-सम्बन्धी और सधर्मी कौन-कौन हैं :

(अ) जिनसे ४ प्रकार में से कोई से*प्रकार का सम्बन्ध हो वे आत्-मसम्बन्धी हुए।

(आ) अपने सदृश जो योगकारक अन्य ग्रह है वे सधर्मी हैं।

(इ) शुभ ग्रहो के अन्य शुभ ग्रह सधर्मी हैं।

(ई) पाप ग्रहों के अन्य पापग्रह सधर्मी हैं।

(२) यह तो बताया अपनी महादशा मेंअपनी अन्तर्दशा का फल, अब अन्य अन्तर्दशाओ के सम्बध में निम्नलिखित बातें याद रखनी चाहिए :

---

*देखिए पृष्ठ ११८-९

(क) शुभ महादशा हो--शुभ अन्तर्दशा हो तो निर्विवाद शुभ फल ही होगा।

(ख) पाप महादशा हो--पाप अन्तर्दशा हो तो निर्विवाद पाप फल ही होगा।

इसमें तो विशेष तारतम्य की आवश्यकता ही नही है। तारतम्य की आवश्यकता तो तब पडती है जब महादशा शुभ हो, अन्तर्दशा अशुभ हो, या महादशा अशुभ हो और अन्तर्दशा शुभ हो तबक्या परिणाम होगा— किसका प्रभाव विशेष होगा ?

यदि महादशानाथ और अन्तर्दशानाथ एकदूसरे के विरुद्ध धर्म वाले हों (एक शुभ एक अशुभ हो)

जो आत्म-सम्बन्धी तथा निजसधर्मी हैं उनकी अन्तर्दशा में क्या फल होगा यह ऊपर (१३४वें पृष्ठ पर) बता चुके हैं अब जो आत्म-सम्बन्धी भी नही है और निजसधर्मी भी नही हैं उनकी अन्तर्दशा मे क्या फल होगा यह बताते हैं। ग्रहों को पहले दो भागो मे विभक्त कीजिए (अ) सम्बन्धी और (आ) असम्बन्धी—इन दोनों प्रकार के ग्रहो को तीन-तीन भागो में विभक्त कीजिए (क) सधर्मी-अपने से धर्म (स्वभाव गुणवाले), (ख) असधर्मी (अपने से विरुद्ध गुण स्वभाव प्रभाव वाले), तथा (ग) जो न सधर्मी हो, न असधर्मी हो।

निम्नलिखित ६ विभाग हुए ·

(क) सम्बन्धी—सधर्मी,
(ख) सम्बन्धी—असधर्मी,
(ग) सम्बन्धी—न सधर्मी, न असधर्मी,
(घ) असम्बन्धी—सधर्मी
(ङ) असम्बन्धी—असधर्मी
(च) असम्बन्धी—न सधर्मी, न असधर्मी

(क) विभाग के ग्रह की अन्तर्दशा में तो महादशा के अनुरूप फल होगा ही।

(ख) और (ग) विभाग वाले ग्रह की अन्तर्दशा में भी महादशा के फल की प्राप्ति होगी यह बताया जा चुका है ·

योगकारक सम्बन्धात्
पापिनोऽपिग्रहाः स्वतः ।
तत् तत् भुक्त्यानु सारेण
दिशेयुर्योगजं फलम् ।।

अर्थात् 'दो योग कारकों की दशा व अन्तर्दशा के बीच मे योग-कारको से सम्बन्ध नही रखने वाले शुभो की दशा व अन्तर्दशा हो तो उसमें प्रायः योगफल होता है। ऐसे ही दो योगकारकों से सम्वध करने वाले पापों की अन्तर्दशा हो तो उसमें निश्चय रूप से योगफल मिलता है।' विशेष विवरण के लिए देखिये पृष्ठ १२१।

अब (घ) असम्बन्धी—किन्तु सधर्मी और (च) असम्बन्धी किन्तु न सधर्मी न असधर्मी को लीजिए—तो इन दोनों प्रकार के ग्रहो की अन्तर्दशाओ में महादशा की अपेक्षा थोड़ा, किन्तु उसी प्रकार का फल होगा। कारण यह है कि (अ) सम्वन्धी की प्रधानता है (आ) सधर्मी की अप्रधानता है।

इस कारण (घ) में महादशा स्वामी ग्रह के अनुसार ही फल होगा।

(च) मे भी महादशा स्वामी ग्रह के अनुसार फल होगा किन्तु (घ) और (च) में अन्तर यह है कि (घ) महादशानाथ का सधर्मी है इस कारण (च) की अपेक्षा (घ) मे महादशानाथ का विशेष प्रभाव होगा।

(च) मे अल्प फल होगा।

अब (ङ) को लीजिए—जो महादशा का असम्वन्धी भी है और उससे विरुद्ध धर्म वाला भी है। ऐसे ग्रह की अन्तर्दशा में मिश्र फल होगा अर्थात् मिल-जुला फल होगा—कुछ महादशा स्वामी का प्रभाव

नोट—योगकारक ग्रहों के योगकारक ग्रह सधर्मी हैं। शुभों के शुभ ग्रह सधर्मी है। 'सम' ग्रहों के सम ग्रह सधर्मी है। पाप ग्रहो के पापग्रह सधर्मी हैं। मारकों के मारक सधर्मी है।

कुछ अन्तर्दशा स्वामी का प्रभाव दोनों के बलाबल का विचार कर लेना चाहिए, जो बली विशेष हो उसका कुछ विशेष फल होगा।

केन्द्र के स्वामी की महादशा में त्रिकोण के स्वामी की अन्तर्दशा

यदि (अ) पापी केन्द्रेश की महादशा में त्रिकोणेश की अन्तर्दशा हो और इन दोनों का-केन्द्रेश और त्रिकोणेश-का सम्बन्ध न हो तो शुभ होगा। यह शुभ फल तभी होगा जब यह त्रिकोणेश पापी न हो। (आ) यदि केन्द्रेश के साथ-साथ त्रिकोणेश भी पापी हो तो शुभ फल नहीं होगा।

पापी कौन-कौन होते हैं :

(क) केन्द्र के स्वामी यदि बृहस्पति, शुक्र, बुध या चन्द्रमा हों।
(ख) ३, ६, ११, ८ का स्वामी भी हो।
(ग) शनि यदि ३ या ११ का स्वामी भी हो।
(घ) मंगल ३, १२ का भी स्वामी हो।

सिंह लग्न वाले व्यक्ति को बृहस्पति पंचम का स्वामी होने के साथ-साथ अष्टम का स्वामी होने से—इस स्थल में पापी समझा जावेगा। कुंभ लग्न वाले को बुध पंचमेश होने के साथ अष्टमेश होने से यहां इसे पापी त्रिकोणेश कहेंगे। कन्या लग्न वाले व्यक्ति के शनि को पांचवें तथा छठे का, मालिक होने से, तथा मिथुन लग्न वाले व्यक्ति को ८ वें तथा ९ वें घर का मालिक होने से पापी त्रिकोणेश कहेंगे।

केन्द्रेश पापी हो और त्रिकोणेश पापी न हो तो केन्द्रेश की दशा में व त्रिकोणेश की अन्तर्दशा में शुभ फल होगा—चाहे इन दोनों का सम्बन्ध न हो, किन्तु यदि केन्द्रेश तो पापी है ही—त्रिकोणेश भी पापी हो गया तो 'योगकारकता' समाप्त हो गई।

नोट—विरुद्धधर्मी (अ) योगकारक ग्रह और पापी ग्रह (आ) योगकारक और मारक ग्रह (इ) शुभ ग्रह और पाप ग्रह (ई) शुभ ग्रह और मारक ग्रह। ये चार विरुद्ध धर्मी ग्रहों के दृष्टान्त हैं। देखिये पृष्ठ १३६।

किन्तु यदि केन्द्रेश पापी न हो, केवल त्रिकोणेश पापी हो तो 'योगकारकता समाप्त नही होती। कारण ? केन्द्रेश पापी नही है।

यदि केन्द्रेश पापी न हो और त्रिकोणेश भी पापी न हो तब तो केन्द्रेश की महादशा मे व त्रिकोणेश की अन्तर्दशा मे पूर्ण शुभ फल होगा ही। इसमे तो विचारना ही क्या है।

त्रिकोणेश की महादशा में केंद्रेश की अन्तर्दशा

(क) त्रिकोणेश पापी हो, केन्द्रेश पापी न हो तो शुभ केन्द्रेश की अन्तर्दशा में शुभ फल होगा।

(ख) त्रिकोणेश साधारण पापी हो और केन्द्रेश भी पापी हो तो भी शुभ फल की सम्भावना है। किन्तु यदि त्रिकोणेश अष्टमेश भी हो और इसकी महादशा में पापी केन्द्रेश की अन्तर्दशा हो तो शुभ फल नहीं होगा।

(ग) त्रिकोणेश पापी न हो, केन्द्रेश पापी हो तो भी शुभ फल की सम्भावना है। इसकी विशेष सम्भावना तभी रहती है जब दोनों में चारों प्रकारो मे से कोई सम्बंध हो।

मारक ग्रह की अंतर्दशा में राजयोग का आरम्भ—(१) यदि किसी मारक ग्रह की अंतर्दशा में राजयोग का प्रारम्भ हो तो 'राजयोग' (अमुक पद या प्रतिष्ठा-प्राप्ति हुई) की ख्याति-मात्र होकर रह जाती है। मारक ग्रह के प्रभाव के कारण राज्य सुख, तेज, बलबुद्धि आदि नही होती; (२) कुछ अन्य विद्वानों के मतानुसार यदि योगकारक ग्रह की महादशा और उस महादशा में उस महादशानाथ के सम्बधी मारक ग्रह की अंतर्दशा हो तो उसमे भी राजयोग का प्रारम्भ हो सकता है।

योगकारक की और शुभग्रह की दशा-अंतर्दशा—(क) योगकारक ग्रह की महादशा मे (१) सम्बन्धी शुभ ग्रह की अंतर्दशा हो तो

नोट - न सधर्मा न ऽसधर्मा : (अ) योगकारक और समग्रह (आ) शुभग्रह और समग्रह (इ) पापग्रह और समग्रह (ई) मारक ग्रह और समग्रह। देखिये पृ० १३५

पूर्ण शुभ फल; (२) असम्वंधी शुभ ग्रह की अंतर्दशा हो तो सामान्य से कुछ ही अधिक फल।

(ख) शुभग्रह की महादशा में (१) सम्बधी योगकारक की अतर्दशा हो तो पूर्ण शुभ फल; (२) असम्वंधी योगकारक की अंतर्दशा हो तो सामान्य से कुछ ही अधिक शुभ फल।

योगकारक की महादशा में ग्रहों की अन्तर्दशा का फल:

योगकारक ग्रह की महादशा है और उसमे (क) सम्बधी मारक ग्रह की अन्तर्दशा हो तो राजयोग का प्रारम्भ हो सकता है।

(ख) सम्वंधी पाप ग्रह की अन्तर्दशा हो तो (क) की अपेक्षा विशेष राजयोग हो सकता है।

(ग) सम्वन्धी शुभ ग्रह की अन्तर्दशा हो तो (ख) की अपेक्षा विशेष राजयोग का फल होगा।

यह (क) (ख) (ग) मे जो शुभ फल ही लिखा है इसका हेतु 'योगकारक' की महादशा होना तथा अन्तर्दशानाथ का महादशानाथ मे सम्बन्ध होना है। इसे विस्मरण नही करना चाहिए।*

राहु और केतु की महादशा तथा अन्तर्दशा

इन ग्रहो की शुभाशुभता का विचार ११४-५ पृष्ठो पर बताया जा चुका है।

यदि राहु या केतु त्रिकोण मे हो और किसी से सम्बन्ध न

• नोट—पिछले २ पृष्ठों में 'सम' का वह अर्थ नहीं है जो मित्र, सम, शत्रु के प्रकरण में बताया गया है। यहां सम वह है जो न योगकारक है, न शुभ है, न पाप है, न मारक है।

* नोट—शुभ ग्रह की महादशा में यदि योग कारक ग्रह की अन्तर्दशा आवे तो कहीं-कहीं योगफल हो जाता है। अन्तर्दशापति यदि स्वयं पूर्ण शुभ हो या योगकारक हो तो सबसे अच्छा योगफल प्राप्त होता है।

करता हो (१) तो भी केन्द्रेश की महादशा में त्रिकोणस्थ राहु या केतु की अन्तर्दशा शुभ होती है। योग का फल मिलता है।

(२) त्रिकोणस्थ राहु या त्रिकोणस्थ केतु की महादशा में जब केन्द्रेश की अन्तर्दशा आती है तब योगफल हो जाता है।

(३) इसी प्रकार केन्द्र मे बैठा हुआ राहु और केतु अपनी महादशा मे त्रिकोणेश की अन्तर्दशा में शुभ फल देते हैं। इसी प्रकार त्रिकोणेश की महादशा में केन्द्र में बैठे हुए राहु व केतु अपनी अन्तर्दशा में शुभ फल देते हैं।

(४) यदि राहु और केतु शुभग्रह के साथ बैठे हों—या केन्द्र या त्रिकोण में बैठे हों और किसी पापी या पाप ग्रह से सम्बन्ध न करते हों तो ऐसे राहु या केतु की महादशा में जब योगकारक ग्रह की अन्तर्दशा आती है तो बहुत उत्तम फल (योगकारक ग्रह का शुभ फल) प्राप्त होता है।

(५) यदि राहु और केतु दुःस्थान (अष्टम या द्वादश) में बैठे हों या अष्टमेश आदि पापी के साथ हों, या पापग्रह के साथ हों तो इनकी दशा—अन्तर्दशा अच्छी नही होती। यदि महादशा राहु या केतु की हो तो साधारण प्रभाव—महादशा का प्रभाव—अनिष्ट होगा। इसके अन्तर्गत जो योगकारक, शुभग्रह, त्रिकोणेश आदि की अन्तर्दशा का समय होगा वह तो अच्छा जावेगा ही।

महादशानाथ यदि पापी हो

महादशानाथ यदि पापी हो तो भिन्न-भिन्न ग्रहों की अन्तर्दशा निम्नलिखित प्रकार की जावेगी :

(क) शुभग्रह की अन्तर्दशा—किन्तु ऐसा शुभग्रह महादशानाथ से सम्बंध न करता हो—पाप का फल देने वाली होती है।

(ख) योगकारक ग्रह की अन्तर्दशा—यदि ऐसा योगकारक महादशानाथ से सम्बंध न करता हो तो अत्यन्त पापफल देने वाली होती है।

(ग) शुभग्रह की अंतर्दशा—यदि अतर्दशानाथ और महादशानाथ

का सम्बध हो—मिश्र (मिला-जुला) फल देने वाली अर्थात् कुछ शुभ फल कुछ अशुभ फल।

(घ) योगकारक ग्रह की अंतर्दशा—यदि अंतर्दशानाथ और महादशानाथ का सम्बंध हो—तो भी मिश्र (मिला-जुला फल देने वाली) किंतु शुभ फल अधिक होगा।

(ङ) समग्रह की अंतर्दशा हो तो भी पाप फल होगा—किंतु पाप-फल न्यून होगा।

(च) पापग्रह की महादशा मे पापग्रह की अंतर्दशा होने से—दोनों सधर्मी हुए, इस कारण महादशा के अनुरूप ही फल होगा, इसमें तो कहने की बात ही क्या है ?

इसी कारण कहा है :

पापा यदि दशानाथाः शुभानां तदसंयुजाम्।
भुक्तयः पापफलदाः तन्संयुक्शुभभुक्तयः॥
भवन्ति मिश्रफलदा भुक्तयो योगकारिणाम्।
अत्यंतपापफलदा भवन्ति तदसंयुजाम्॥

मारक ग्रह की महादशा में मृत्यु किसकी अंतर्दशा में होती है?

जब आयु-विचार से यह निश्चय हो जावे कि अमुक ग्रह की महादशा मृत्युकारक होगी तब उसमें कौनसी अंतर्दशा कैसी जावेगी—अर्थात् कौन सी मृत्यु कर सकती है इसको स्पष्ट करते हुए कहते हैं :

सत्यपि स्वेन सम्बंधे न हन्ति शुभभुक्तिषु।
हन्ति सत्यप्यि सम्बंधे मारकः पापभुक्तिषु॥

अर्थात् यदि मारक ग्रह की महादशा चल रही हो तो चाहे शुभग्रह का मारकेश से सम्बन्ध भी हो किंतु ऐसे शुभग्रह की अंतर्दशा मृत्यु नहीं करती। और मारकग्रह की महादशा में यदि पापग्रह की अंतर्दशा आवे तो चाहे ऐसा पापग्रह महादशानाथ से सम्बन्ध न भी करता हो तो भी मृत्युकारक हो जाता है।

शनि की महादशा मे शुक्र की अन्तर्दशा और शुक्र की महादशा में शनि की अन्तर्दशा :

शुक्रमध्ये गतो मन्दः शौक्रं शुक्रोऽपिमंदगः।
मान्दं शुभाशुभं दत्ते विशेषेण न संशयः ॥

दशाफल के विचार मे साधारणतः मुख्यता अन्तर्दशानाथ की ही होती है। किन्तु शनि-शुक्र इन दो ग्रहो में एक की महादशा दूसरे की अन्तर्दशा हो तो उपर्युक्त साधारण नियम का पालन न होकर कुछ विशेष नियम का अनुपालन होता है.

(क) यदि शनि की महादशा हो—और उसमें शुक्र की अन्तर्दशा हो तो शनि का ही प्रभाव (इष्ट या अनिष्ट–जैसा भी जन्म-कुंडली मे पड़ा हो) विशेष रूप से घटित होगा।

(ख) यदि शुक्र की महादशा हो और—उसमें शनि की अन्तर्दशा हो तो—शुक्र का ही प्रभाव (अच्छा या खराब–जन्म-कुण्डली मे जैसा शुक्र पड़ा हो) विशेष रूप से अपना फल दिखलावेगा।

विशेष विचार–इस प्रकार कोई ग्रह किस भवन का स्वामी है—तथा कोई ग्रह स्वाभाविक रूप से पापग्रह है या शुभग्रह, इसका ध्यान रखते हुए जन्म-कुंडली का पूर्ण विचार कर, यह निश्चय करना बतलाया गया है कि किस ग्रह की महादशा कैसी जावेगी और भिन्न-भिन्न प्रकार के ग्रहों की महादशा में भिन्न-भिन्न प्रकार के ग्रहों की अन्तर्दशा कैसी जावेगी। किंतु ऊपर जो बाते लिखी गई हैं उनका विचार करते समय यह भी ध्यान मे रखना चाहिये कि ग्रह उच्चराशिस्थित है या नीच–राशि स्थित, स्वगृही या मित्रगृही या शत्रुगृही; अस्त, आदि दोष से युक्त तो नही है। यह आगे बताया जाता है।

एक अन्य दृष्टिकोण

ग्रहों को फलादेश के विचार से निम्नलिखित नौ भागों में बांटा गया है :

(१) दीप्त—उच्च राशि मे स्थित ग्रह दीप्त कहलाता है, किन्तु पूर्ण शुभ-फल तभी करेगा जब नवांश मे नीच का न हो। उदाहरण के लिये यदि सूर्य के मेष राशि में २१ अंश हैं, तो उच्च-राशि (मेष) में होता हुआ भी तुला नवांश (नीच नवांश) मे हुआ, ऐसा सूर्य दीप्त का फल नही करेगा।

(२) स्वस्थ—अपनी राशि में स्थित ग्रह स्वस्थ कहलाता है। ऐसा ग्रह शुभ फल देने में विशेष समर्थ होता है।

(३) मुदित या प्रमुदित :—जो ग्रह अपनी अधिमित्र राशि मे हो वह मुदित कहलाता है। मित्रता नैसर्गिक तथा तात्कालिक दो प्रकार ही होती है। दोनों में मित्र होने से "अधिमित्र" होता है।

(४) शांत—'नैसर्गिक' तथा 'तात्कालिक' इन दोनों प्रकार के सम्बन्ध का यदि तारतम्य किया जावे तो 'नैसर्गिक' विशेष बलवान् है। नैसर्गिक मित्र राशि में यदि ग्रह हो तो शांत कहलाता है ग्रह जिसकी राशि मे है वह मित्र होने के साथ-साथ शुभग्रह भी हो तो विशेष शुभ फल होगा।

(५) दीन—'सम' ग्रह (अर्थात् जो न मित्र है न शत्रु है) उसकी राशि मे स्थित ग्रह 'दीन' कहलाता है। समग्रह यदि पापग्रह हो तो शुभ फल कम होता है, पाप फल अधिक।

(६) शक्त—जो सूर्य की किरणों से अस्त न हो उसे 'शक्त' कहते है और जो अस्त होता है उसे 'विकल'[१] कहते हैं। बहुधा पंचांगो मे यह दिया रहता है कि कब कौनसा ग्रह उदित है कब कौनसा ग्रह अस्त है किन्तु इस विषय मे साधारण नियम यह है.

(क) सूर्य से १७ अंश दूर मंगल अस्त हो जाता है।

(ख) सूर्य से ११ अंश की दूरी पर बृहस्पति अस्त हो जाता है।

(ग) सूर्य से १५ अंश की दूरी तक शनि अस्त रहता है।

(घ) सूर्य से १२ अंश के अन्दर चन्द्रमा अस्त रहता है।

---

१. सारावली, अध्याय ४, श्लोक ४।

(ङ.) यदि शुक्र 'मार्गी' हो तो सूर्य से १० अंश तक अस्त रहता है, यदि शुक्र 'वक्री' हो तो सूर्य से ८ अंश तक अस्त रहता है।

(च) यदि बुध 'मार्गी' हो तो सूर्य से १४ अंश तक अस्त रहता है किन्तु 'वक्री' हो तो सूर्य से १२ अंश तक ही अस्त रहता है।

प्रसंग यहाँ था 'अस्त' ग्रह और 'उदित' ग्रह का। उदित ग्रह शुभ फल देने में शक्त होता है किन्तु अस्तग्रह पीड़ा पहुँचाता है। 'अस्त' ग्रह को 'मूढ'[1] भी कहते हैं। कोई-कोई सूर्य-सयुत (अस्त) ग्रह को 'कोपी' भी कहते हैं। कुपित ग्रह कष्ट फल ही करता है।

(७) दुःखित– नैसर्गिक शत्रु की राशि मे होने से ग्रह दुःखित कहलाता है, यह अनिष्ट-फल-कारक है। यदि पाप राशि हो तो और भी कष्टकारक होता है।

(८) विकल—पराशर के मतानुसार (अध्याय ४५, श्लोक ६) पापग्रह युत होने से ग्रह 'विकल'[2] कहलाता है। यह अनिष्ट-फल-कारक है।

(९) खल–पापग्रह की राशि में स्थित होने से ग्रह 'खल' कहलाता है। यह भी अनिष्ट फल देता है। विशेषता यह है कि पापग्रह शुभ भवनों का स्वामी हो, शुभग्रह के वर्गों में हो या शुभ ग्रहों से वीक्षित हो तो उसकी उतनी 'खल' सज्ञा नहीं समझी जावेगी। यदि शनि या

नोट—जब ग्रह आगे की ओर चलता मालूम हो तो उसे 'मार्गी'—स्वाभाविक मार्ग पर—कहते हैं किन्तु जब ग्रह पीछे की ओर चलता मालूम हो तो उसे 'वक्री'— उलटा चलने वाला—कहते हैं। वास्तव में ग्रह सभी आगे की ओर ही चलते है किन्तु पृथ्वी पर से देखने से 'वक्री' प्रतीत होते है। सूर्य और चन्द्र कभी 'वक्री' नहीं होते। राहु-केतु सदैव वक्री रहते हैं।

१. 'फल दीपिका', अ० ४, श्लोक १९।

२. 'बृहत्पाराशर', अ० ४५, श्लोक ६।

मगल की राशि में ग्रह हों—वह शनि या मंगल स्वयं पाप-राशि—पाप-वर्गो मे स्थित होकर, पापग्रह से वीक्षित हो—या नीच आदि राशि में हो तो विशेष रूप से खलता होगी।

उदाहरण के लिए यदि सूर्य, शनि की राशि कुम्भ में है और वह शनि (कुम्भ का स्वामी) अपनी नीच राशि (मेष) मे हो तो सूर्य को विशेष रूप से 'खल' कहेगे। किन्तु यदि शनि बृहस्पति की राशि धनु में हो—धनु के नवांश में भी हो और बृहस्पति से पूर्ण दृष्ट हो तो शनि की राशि में स्थित होने से सूर्य खल तो हुआ किन्तु सूर्य का राशीश (शनि) शुभ ग्रह की राशि में—शुभ नवाश मे—शुभ—वीक्षित है इस कारण सूर्य उतना खल नही समझा जावेगा। इन बातों का सूक्ष्म तारतम्य प्रत्येक स्थान पर कर लेना चाहिए।

जातक विचार का प्रथम भाग समाप्त करने के पहिले हम पाठकों का विचार निम्नलिखित सिद्धान्तो की ओर आकर्षित करना अपना विशेष कर्तव्य समझते हैं।

(१) ग्रहों की स्वाभाविक शुभता तथा क्रूरता को सदैव स्मरण रखिये। (२) किस गृह का या किन गृहों का स्वामी है, इस कारण शुभ हुआ या पाप। (३) राशि तथा होरा द्रेष्काण, नवाश आदि मे-सप्तवर्गो में-बली है या निर्बल। (४) शुभ ग्रहो के वर्ग में स्थित होकर बलवान् शुभ ग्रहों से वीक्षित है या पाप ग्रहों के वर्ग मे स्थित होकर पाप ग्रहो से वीक्षित है। (५) केन्द्र, त्रिकोण लाभ आदि शुभ स्थान में स्थित हैं या अष्टम, द्वादश आदि अनिष्ट स्थानों में। (६) दीप्त, स्वस्थ, मुदित आदि है या दुःखित, विकल आदि। (७) किन-किन ग्रहों से सम्बन्ध करता है—वे कैसे हैं?

सातो कसौटी पर कस कर अन्तिम निर्णय पर पहुँचिये।

द्वितीय भाग

वर्ष-फल-विचार

अठारहवाँ प्रकरण

वर्ष-कुण्डली का सिद्धान्त

वष-कुण्डली बनाने का सिद्धान्त यह है कि जन्म के समय सूर्य जिस राशि, अश, कला, विकला में स्थित था, उसी स्थल पर जब सूर्य पुनः घूमकर आ जाता है तब मनुष्य को एक विशेष शुभाशुभ शक्ति प्रदान करता है। वास्तव में भ्रमण तो पृथ्वी करती है परन्तु लोक-व्यवहार में सूर्य का ही भ्रमण कहलाता है।

सूर्य प्रायः एक वर्ष में उसी राशि, अश, कला-विकला पर आ जाता है। किन्तु उसे ठीक कितना समय लगता है इस विषय में विद्वानों में मतभेद है। 'सूर्य सिद्धान्तानुसार' ३६५ दिन १५ घड़ी, ३१ पल, ३० विपल में सूर्य उसी स्थान पर वापस आ पहुँचता है। किन्तु यह प्राचीन मत है। लन्दन, अमरीका, जर्मनी, रूस और भारतवर्ष में भी जो करोड़ो रुपये लगाकर वेधशालाये (Observatories) बनी हैं इनमें अति सूक्ष्म दूरवीक्षक यन्त्र हैं, इनके आधार पर यह ऐकमत्य से सिद्ध हो चुका है कि सूर्य को उसी राशि, अंश, कला, विकला पर वापस आ पहुँचने में केवल ३६५ दिन १५ घड़ी २२ पल और ५७$\frac{1}{2}$ विपल लगते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि दोनों मतों में करीब ८$\frac{1}{2}$ पल या करीब ३$\frac{1}{3}$* मिनिट का अन्तर है। इस कारण यदि किसी ४० वर्ष के उम्र के व्यक्ति की वर्ष-कुण्डली

*८$\frac{1}{2}$ पल के ३$\frac{2}{5}$ मिनिट होते हैं। देखिये प्रकरण २।

बनाई जावे तो (४० × ३$\frac{१}{३}$ = १३३$\frac{१}{३}$ मिनिट = २घण्टा १३$\frac{१}{३}$ मिनिट) करीव सवा दो घण्टे का वर्ष-प्रवेश-काल मे अन्तर पड जावेगा। इसका परिणाम यह होगा कि एक मत से, वर्ष-प्रवेश लग्न कुछ होगा और दूसरे मत से, वर्ष-प्रवेश-लग्न (३$\frac{१}{३}$ मिनिट प्रतिवर्ष के हिसाव से अन्तर पड जाने से) कुछ और ही आ जावेगा।

प्राचीन मत वाले वर्ष-प्रवेशकाल-निकालने के लिए १४८ पृष्ठ पर दी गई सारिणी काम में लाते हैं।

प्राचीन मतानुसार वर्ष-कुंडली बनाने का प्रकार —

मान लीजिए किसी व्यक्ति का २७,अगस्त, १६०८ वृहस्पतिवार को सूर्योदय से ४० घड़ी, ५३ पल, ३० विपल पर जन्म हुआ तो रविवार, सोमवार, मगलवार, बुधवार, वृहस्पतिवार इस क्रम से गणना करने पर वृहस्पतिवार पाँचवाँ वार होता है, इस कारण जन्म-काल के वार, धडी, पल, विपल की संख्या निम्नलिखित प्रकार से लिखेगे :—

जन्म ५—४०—५३—३०

२७ अगस्त १६५८ को यह ५० वाँ वर्ष समाप्त करेंगे और ५१ वें वर्ष में प्रवेश होगा। हमें ५१वें वर्ष की वर्ष-कुण्डली वनानी है तो गतवर्ष ५० होंगे, इस कारण पृ० १४८ मे दी हुई सारिणी में ५० के नीचे लिखा है ६—५६—१५—० अत. इस सख्या को जन्म के समय की ५—४०—५३—३० सख्या मे निम्नलिखित प्रकार से जोड़ेंगे।

	वार	घड़ी	पल	विपल
जन्म-काल के वारादि	५	४०	५३	३०
गतवर्ष (५०) के वारादि	६	५६	१५	०
योग	५	३७	८	३०

वर्ष-प्रवेशसारिणी

गत वर्ष	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
वा०	१	२	३	५	६	०	१	३	४	५	६	१	२	३	४	६	०	१	२	४	५	६	०	२	३	४	५	०	१	२	४	५
घ०	१५	३१	४६	२	१७	३३	४८	४	१९	३५	५०	६	२१	३७	५२	८	२३	३९	५४	१०	२६	४१	५७	१२	२८	४३	५९	१४	३०	४५	१	१६
प०	३१	३	३४	६	३७	९	४०	१२	४३	१५	४६	१८	४९	२१	५२	२४	५५	२७	५८	३०	१	३३	४	३६	७	३९	१०	४२	१३	४५	१६	४८
वि०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०

गत वर्ष	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४९	५०	५१	५२	५३	५४	५५	५६	५७	५८	५९	६०	६१	६२	६३	६४
वा०	६	०	२	३	४	५	०	१	२	३	५	६	०	१	३	४	५	६	१	२	३	४	६	०	१	३	४	५	६	१	२	३
घ०	३२	४७	३	१८	३४	४९	५	२१	३६	५२	७	२३	३८	५४	९	२५	४०	५६	११	२७	४२	५८	१३	२९	४४	०	१५	३१	४७	२	१८	३३
प०	१९	५१	२२	५४	२५	५७	२८	०	३१	३	३४	६	३७	९	४०	१२	४३	१५	४६	१८	४९	२१	५२	२४	५५	२७	५८	३०	१	३३	४	३६
वि०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०

गत वर्ष	६५	६६	६७	६८	६९	७०	७१	७२	७३	७४	७५	७६	७७	७८	७९	८०	८१	८२	८३	८४	८५	८६	८७	८८	८९	९०	९१	९२	९३	९४	९५	९६
वा०	४	६	०	१	२	४	५	६	०	२	३	४	५	०	१	२	३	५	६	०	१	३	४	५	०	१	२	३	५	६	०	१
घ०	४९	४	२०	३५	५१	६	२२	३७	५३	८	२४	३९	५५	१०	२६	४२	५७	१३	२८	४४	५९	१५	३०	४६	१	१७	३२	४८	३	१९	३४	५०
प०	७	३९	१०	४२	१३	४५	१६	४८	१९	५१	२२	५४	२५	५७	२८	०	३१	३	३४	६	३७	९	४०	१२	४३	१५	४६	१८	४९	२१	५२	२४
वि०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०

३० विपल में ० विपल जोड़े तो ३० विपल आये। १५ पल में ५३ पल जोड़े तो ६८ पल आये। यह ६० से अधिक है। ६० पल की एक घड़ी होती है। इस कारण ६० से भाग देने पर १ घडी ८ पल आये। ८ को पल के नीचे लिखकर १ को हासिल मानकर ४० में जोड़ने से ४१ हुए; ४१ और ५६ को जोड़ा तो ९७ हुए। यह संख्या ६० से अधिक है। ६० घडी का १ अहोरात्र (दिन-रात) होता है इस कारण ६० का भाग देने से ३७ बचे और हासिल १ आया—३७ को घड़ी के नीचे लिखा और १ हासिल को ५ में जोड़ने से ६ हुए; इन ६ को नीचे के ६ मे जोडा तो १२ हुए। सप्ताह मे ७ वार से अधिक नही होते इस कारण १२ में ७ का भाग देने पर शेष ५ बचे। इन ५ को वार के नीचे लिखा। यह जो योग संख्या ५ – ३७—८—३० आई। यह ५१वें वर्ष-प्रवेश का समय है अर्थात् २७ अगस्त १९५८ के आसपास (जिस अंग्रेजी तारीख को जन्म होता है प्रायः उसी अंग्रेजी तारीख के लगभग वर्ष-प्रवेश होता है।) जिस दिन वृहस्पतिवार होगा उस दिन (योग में ५ आया है; रविवार से गिनने पर ५वाँ वार वृहस्पति होता है इस कारण वृहस्पति कहा) ३७ घडी ८ पल पर (सूर्योदय के ३७ घडी ८ पल बाद) वर्ष-प्रवेश होगा। १९५८ को पचांग देखने से विदित हुआ कि २८ अगस्त, १९५८ को वृहस्पतिवार पड़ेगा। इस कारण २८–८–१९५८ को ३७ घड़ी ८ पल पर वर्ष-प्रवेश होगा। यह वर्ष-प्रवेश का इष्ट हुआ। अब जैसे जन्म के इष्टकाल का लग्न निकालना बताया गया है (देखिये ५वाँ प्रकरण,) उसी प्रकार इस इष्टकाल से लग्न निकालना चाहिए। इस प्रकार वर्ष-प्रवेश का लग्न मीन आवेगा और लग्न स्पष्ट ११ –२५ होगा।

प्राचीन मत से वर्ष-कुण्डली

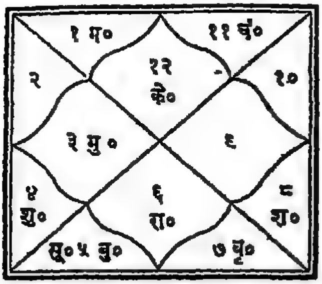

मुंथा कहां रखना ?

जिन सज्जन की ऊपर ५१वे वर्ष-प्रवेश की कुंडली बनायी है उनका जन्म-लग्न मेष है। मेष प्रथम राशि है इस कारण गत वर्ष ५० में १ जोडा (जन्म लग्न मेष है इस कारण १ जोड़ा है) तो ५१ हुए इसमें १२ का भाग देने से ३ शेष बचे तो मेष से गिनने पर मेष, वृष मिथुन-तृतीय राशि मिथुन हुई, इस कारण मिथुन में मुंथा रखी। मुथा वर्ष-प्रवेश-कुण्डली में एक विशेष महत्व की वस्तु है। इसके सम्बन्ध में विशेष आगे बताया जावेगा। यहाँ केवल— वर्ष-कुण्डली मे मुथा किस राशि मे रखना यह बताया गया है।

नवीन मतानुसार वर्षकुंडली

अब नवीन मतानुसार वर्ष-प्रवेश-कुण्डली बनाना बताया जाता है। पहले लिखा जा चुका है कि सूर्य के भ्रमण-काल के विषय में दोनों मे मतभेद है। सर्वप्रथम काशी के सुप्रसिद्ध विद्वान् स्वर्गीय श्री बापूदेव जी शास्त्री ने नवीन मतानुसार शुद्ध वर्ष-प्रवेश-सारिणी अपने पचाग मे देना प्रारम्भ किया। श्री केतकर जी तथा भारत के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध विद्वान् जो आधुनिक वैज्ञानिक युग के सत्य सिद्धांतों को मानते हैं—इसी नवीन सारिणी का उपयोग करते हैं। हमने इस विषय में एक लेख भी 'ज्योतिष्मती' में प्रकाशित कराया था और 'ज्योतिष्मती' के सुयोग्य सम्पादक 'श्री विश्व-विजय

पंचाग' के निर्माता ज्योतिष-मार्तण्ड, दैवज्ञ-शिरोमणि पण्डित श्री हरदेवजी शर्मा ने भी नवीन सारिणी का जोरदार शब्दों में समर्थन किया। १५२ वे पृष्ठ पर वर्ष-प्रवेश की वेध-सिद्ध नवीन सारिणी दी जा रही है।

अब जो पहले ५१ वे वर्ष की वर्ष-कुण्डली बनाई है (देखिए पृष्ठ १५०) वही ५१ वे वर्ष-प्रवेश की कुण्डली नवीन मतानुसार बनाना बताया जाता है।

	वार	घड़ी	पल	विपल
जन्म के समय का	५	४०	५३	३०
५१ वें वर्ष का प्रवेश अर्थात् गत वर्ष ५० के नीचे जो सारिणी मे संख्या दी है। (पृष्ठ १५२)	६	४६	७	३०
योग	५	३०	१	०

अर्थात् बृहस्पतिवार २८ अगस्त, १९५८ को सूर्योदय के ३० घड़ी १ पल पर ५१ वां वर्ष-प्रवेश होगा। इस समय का लग्न निकालने से लग्न ९–२७ अर्थात् मकर लग्न के २७ अंश आये और प्रवेश-कुण्डली निम्नलिखित हुई :

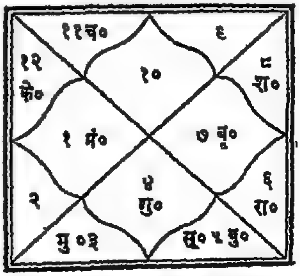

नोट—मुथा जन्म—लग्न से गणना करने पर जिस राशि में आती है उसमें लिखी जाती है। इस कारण मिथुन राशि में आई। इसमें कोई अंतर नहीं पड़ा।

इस प्रकार नवीन मतानुसार मकर लग्न आया। अब आप

देखिए "ज्योतिष्मती" वर्ष १ संख्या २ यह ज्योतिष विषय की उत्कृष्ट पत्रिका है। प्राप्ति-स्थान—गोयल एण्ड कम्पनी, दरीबा, दिल्ली।

वेधसिद्ध नवीनवर्षमानानुसार वर्षप्रवेश सारिणी

गताब्दाः	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०
वार	१	२	३	५	६	०	१	३	४	५	६	१	२	३	४	६	०	१	२	४
घटी	१५	३०	४६	१	१६	३२	४७	३	१८	३३	४९	४	१९	३५	५०	६	२१	३६	५२	७
पल	२२	४५	८	३१	५४	१७	४०	३	२६	४९	१२	३५	२८	२१	४४	७	३०	५३	१६	३९
विपल	५७	५४	५१	४८	४५	४२	३९	३६	३३	३०	२७	२४	२१	१८	१५	१२	९	६	३	०
गताब्दाः	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०
वार	५	६	०	२	३	४	५	०	१	२	[illegible]	[illegible]	६	०	१	३	४	५	६	१
घटी	२३	३८	५३	९	२४	३९	५५	१०	२६	४१	५६	१२	२७	४३	५८	१३	२९	४४	५९	१५
पल	१	२४	४७	१०	३३	५६	१९	४२	५	२८	५१	१४	३७	०	२३	४६	९	३२	५५	१८
विपल	५७	५४	५१	४८	४५	४२	३९	३६	३३	३०	२७	२४	२१	१८	१५	१२	९	६	३	०
गताब्दाः	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४९	५०	५१	५२	५३	५४	५५	५६	५७	५८	५९	६०
वार	२	३	५	६	०	१	३	४	५	६	१	२	३	४	६	०	१	२	४	५
घटी	३०	४६	१	१६	३२	४७	२	१८	३३	४९	४	१९	३५	५०	६	२१	३६	५२	७	२२
पल	४०	३	२६	४९	१२	४५	५८	२१	४४	७	३०	५३	१६	३९	२	२५	४८	११	३४	५७
विपल	५७	५४	५१	४८	३५	४२	३९	३६	३३	३०	२७	२४	२१	१८	१५	१२	९	६	३	०
गताब्दाः	६१	६२	६३	६४	६५	६६	६७	६८	६९	७०	७१	७२	७३	७४	७५	७६	७७	७८	७९	८०
वार	६	०	२	३	४	५	०	१	२	३	५	६	०	१	३	४	५	६	१	२
घटी	३८	५३	९	२४	३९	५५	१०	२६	१	५६	१२	२७	४३	५८	१३	२९	४४	५९	१५	३०
पल	१९	४२	५	२८	५१	१४	३७	०	४३	४६	९	३२	५५	१८	४१	४	२७	५०	१३	३६
विपल	५७	५४	५१	४८	४५	४२	३९	३६	३३	३०	२७	२४	२१	१८	१५	१२	९	६	३	०

देखिए जो ज्योतिषी प्राचीन मतानुसार वर्ष-कुण्डली बना रहे हैं वे कितनी अशुद्ध गणना करते हैं। लग्न ही बदल जाता है। लग्न बदल जाने पर भी जो अशुद्ध वर्ष-कुण्डली बनाने वालों का फलादेश कुछ मिल जाता है उसका कारण यह है कि शुभग्रह लग्न में भी उत्तम, द्वितीय स्थान में भी उत्तम, चतुर्थ में भी उत्तम, पञ्चम में भी उत्तम; नवम में भी उत्तम, दशम में भी उत्तम, एकादश में भी उत्तम और पापग्रह द्वादश में भी खराब, धन स्थान में भी खराब—चतुर्थ में भी पीड़ाकारक, पञ्चम में भी पीड़ाकारक—सप्तम में भी अनिष्टकारक, अष्टम में भी अनिष्टकारक—इस प्रकार वर्ष-प्रवेश का अशुद्ध लग्न लाने पर भी—ग्रहों के भाव बदल जाने पर भी—कहीं-कहीं घुणाक्षर-न्याय से (लकड़ी में घुन लग जाती है तो कहीं संयोग से कोई अक्षर बन जाता है) उसी प्रकार फलादेश ठीक बैठ जाता है। आज बड़े-बड़े ज्योतिष के पंडित भी अशुद्ध वर्ष-कुण्डलियाँ बना रहे हैं; इस बात का विचार नहीं करते कि पृथ्वी की गति में सूक्ष्म अंतर आ गया है। इसका विचार करना चाहिए।

अशुद्ध वर्ष-कुंडली का एक अन्य कारण

आज जो बहुत-सी वर्ष-कुण्डलियाँ अशुद्ध बन रही हैं उसका एक अन्य कारण भी है। ऊपर के उदाहरण में तो ऐसे व्यक्ति की वर्ष-कुण्डली बनाई गई है जिसका जन्म भी दिल्ली में हुआ और जो ५१वें वर्ष-प्रवेश में भी दिल्ली में रहेंगे। अब मान लीजिए उक्त सज्जन का जन्म कलकत्ता में हुआ था और वह इस समय दिल्ली में हैं। तो वर्ष-प्रवेश का जो इष्ट ३० घड़ी १ पल आया है उसका अर्थ हुआ कि २८ अगस्त, १९५८ को कलकत्ता में जब सूर्योदय होगा उसके ३० घड़ी १ पल बाद या यह कहिये कि १२ घंटे २४ सैकिंड बाद (३० घड़ी के १२ घंटे, १ पल के करीब २४ सैकिंड) वर्ष-प्रवेश होगा। यदि २८ अगस्त, १९५८ को कलकत्ता में

५ बज-कर २१ मिनिट (भारतीय स्टैन्डर्ड टाइम) पर सूर्योदय हुआ तो वर्ष-प्रवेश-काल निम्नलिखित होगा :

	भारतीय स्टैन्डर्ड टाइम घंटा मिनिट सैकिंड
कलकत्ता का सूर्योदय काल	५ — २१ — ०
३० घड़ी १ पल के= १२ घंटे २४ सैकिंड जोड़े	१२ — ० —२४
वर्ष-प्रवेश-काल	१७ — २१ —२४

इस प्रकार वर्ष-प्रवेश-काल सायकाल ५ बजकर २१ मिनिट २४ सैंकड पर भारतीय स्टैंडर्ड टाइम आया।

अब यदि हमें बिना इस बात का विचार किये हुए कि (वर्ष-प्रवेश-काल ३० घड़ी १ पल कलकत्ता-जन्म स्थान के सूर्योदय काल के बाद का समय है)—दिल्ली में यह इष्ट-काल कायम करना है तो दिल्ली का २८ अगस्त, १९५८ का सूर्योदय काल है ६ बजकर १ मिनिट (भारतीय स्टैंडर्ड टाइम) इसमें इष्टकाल जोड़ने से वर्ष-प्रवेश-काल निम्नलिखित होगा :

	भारतीय स्टैंडर्ड टाइम घंटा मिनिट सैकिंड
दिल्ली का सूर्योदय काल २८ अगस्त, १९५८	६ — १ — ०
इष्टकाल ३० घड़ी १ पल के घंटे मिनिट सैकिंड बनाकर जोड़े	१२ — ० —२४
योग	१८ — १ —२४

इस प्रकार वर्ष-प्रवेश-काल आया सायंकाल के ६ बजकर १ मिनिट २४ सैकड पर; अब आप देखिए कि जो ज्योतिषी वर्ष-कुण्डली बनाते हैं वे इस बात को भूल जाते हैं कि इष्ट इतने घड़ी इतने पल का अर्थ

नोट—सैकिंडो को स्थूल रूप से छोड़ भी सकते हैं।

हैं अमुक स्थान में सूर्योदय होने के उपरांत इतने घड़ी इतने पल बाद! परिणाम यह होता है कि इष्टकाल होता है बम्बई, कलकत्ता, मद्रास कश्मीर या अन्य स्थान का भी, किंतु उस इष्ट को दिल्ली का या जहाँ सर्वज्ञ ज्योतिषी जी विराजमान हो, वहीं का इष्टकाल मानकर धड़ाधड़ वर्ष-कुण्डली बना देते हैं और ग्राहक के मुख से उसकी भविष्य में उन्नति, अवनति आदि की क्या-क्या सम्भावना हैं यह सुनकर उसे ही अपने शब्दों में दोहरा देते हैं! अच्छा फल हुआ तो केन्द्रगत किसी शुभ ग्रह को सारा श्रेय मिल जाता है और यदि ज्योतिषी जी का अन्दाज़ है कि इस मुसीबत के मारे ग्राहक को और मुसीबत उठानी है तो मुन्था या मुन्थेश या कोई भी ग्रह जो अशुद्ध वर्ष-कुण्डली में ८ वें, १२वें हो उसे पकड़कर सारा दोष उस पर मढ देते हैं कि उसके कारण वर्ष में तकलीफ उठानी पड़ेगी !!!

कहने का तात्पर्य यह है कि वर्ष-प्रवेश-काल निकालने में वर्ष का इष्टकाल निकालकर एक संस्कार और करना चाहिए। यदि जन्म कलकत्ते का है तो वर्ष-प्रवेश-काल ३० घडी १ पल कलकत्ता के सूर्योदय काल के बाद आया।

(क) यदि आप—जातक कहीं भी हो (दिल्ली या कलकत्ता या बम्बई अथवा विलायत में) २८ अगस्त, १९५८ को कलकत्ते मे क्या लग्न था यह निकालना चाहते हैं तो हो इष्टम् ३०।१ का कलकत्ते की सारिणी से लग्न निकालिये।

(ख) यदि आपका पक्ष यह है कि जातक दिल्ली में वर्ष-प्रवेश-काल के समय है इस कारण उस समय दिल्ली में क्या लग्न था यह निकाल कर वर्ष-कुण्डली बनानी चाहिए तो जिस समय कलकत्ते में सूर्योदय के बाद ३० घड़ी १ पल का समय होगा उस समय दिल्ली के सूर्योदय के बाद कितने घडी कितने पल होंगे यह निका-

लिए और उस इष्टकाल का दिल्ली की सारिणी के अनुसार लग्न बना लें।

इसका सबसे सरल तरीका यह है कि जैसे ऊपर पृष्ठ १५४ पर बताया गया है कि जहाँ जन्म-स्थान हो वहाँ का वर्ष-प्रवेश-काल घंटों तथा मिनिट में निकाल लेना चाहिए। उदाहरण के लिये कलकत्ते में जन्म हुआ हो तो वर्ष-प्रवेश-काल ५ बजकर २१ मिनट ० सैकिंड सायंकाल आया (देखिए, पृष्ठ १५४), यह भारतीय स्टैंडर्ड टाइम है। यह सर्वत्र समान है। इसलिए यदि यह सज्जन दिल्ली में हैं तो ५ बजकर २१ मिनिट ० सैकिंड पर (भारतीय स्टैंडर्ड टाइम) दिल्ली में क्या लग्न था यह निकालिए और उसके अनुसार वर्ष-कुण्डली बनाइये।

उन्नीसवाँ प्रकरण

वर्ष-कुण्डली-विचार

भाव स्पष्ट और ग्रह स्पष्ट :

वर्ष-कुण्डली बनाने के उपरान्त जैसे जन्म-कुण्डली में ग्रह स्पष्ट और भाव स्पष्ट करना बताया गया है उसी प्रकार ग्रह स्पष्ट और भाव स्पष्ट कर लेने चाहिए। इसके बाद चलित चक्र में किस भाव में कौनसा ग्रह है इसका विचार करना।

(१) प्रायः अष्टम और द्वादश में सभी ग्रह अनिष्ट होते हैं।

(२) किन्तु यदि कोई ग्रह स्वगृही हो, तो वह कहीं भी पड़ा हो अच्छा ही फल करता है। उसे अनिष्ट नहीं गिनना चाहिए। यह अवश्य है कि १२वें घर का स्वामी यदि १२वें घर में हो तो बहुत खर्च कराता है। यदि शुभ ग्रह हो तो शुभ काम में व्यय करावे।

विवाह, उत्सव, आमोद-प्रमोद, जेवर, कपड़ा, मोटर, मकान, तीर्थ-यात्रा, धार्मिक कार्य आदि में व्यय शुभ व्यय समझा जाता है। यदि पाप ग्रह व्यय में हो तो खराब कामों में पैसा बरबाद होता है—इनकमटैक्स दण्ड, राजदण्ड, फौजदारी या दीवानी मुकदमे में व्यय, जुए या सट्टे वा व्यापार में घाटा आदि अपव्यय कहलाते हैं।

(३) यदि शुभ ग्रह केन्द्र में और क्रूर ग्रह तृतीय, छठे या ग्यारहवें में हो तो: शुभ है। ग्यारहवें में सभी ग्रह उत्तम माने जाते हैं।

(४) जन्म-कुण्डली-विचार के प्रकरण में तथा प्रश्न-खण्ड में भी यह बताया गया है (देखिये प्रकरण ६ तथा २५) कि किस भाव से क्या विचार करना चाहिए। जिस भाव में शुभ ग्रह हो उस भाव की वृद्धि होती है। जिस भाव में क्रूर ग्रह हो उस भाव की हानि होती है।

(५) सूर्य, मंगल, शनि, राहु, केतु क्रूर ग्रह समझे जाते हैं। बहुत से लोग कृष्ण पक्ष की अष्टमी से शुक्ल पक्ष की पंचमी तक चन्द्रमा को भी क्रूर मानते हैं। बुध, बृहस्पति, शुक्र, तथा चन्द्रमा प्रायः शुभग्रह माने जाते हैं।

(६) जब कोई क्रूर ग्रह किसी स्थान पर बैठा हो तो उसकी स्वाभाविक शुभता या क्रूरता के अतिरिक्त यह भी विचार कर लेना चाहिए कि वह किस भवन का स्वामी है। आगे दो कुण्डली दी जाती हैं।

(१)

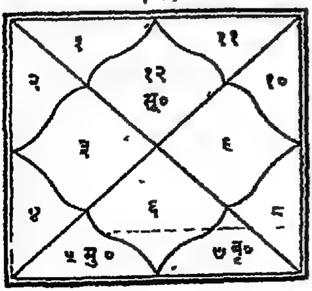

(२)

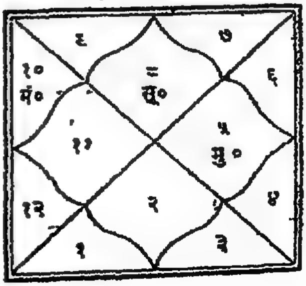

दोनों कुण्डलियों मे सूर्य लग्न मे है किन्तु पहली कुण्डली में सूर्य लग्न में निकृष्ट फल करेगा। छठे घर का स्वामी होकर लग्न में बैठा है। यदि सूर्य प्रथम भाव मे अनिष्ट प्रभावकारक हो तो वात और पित्त से शरीर मे पीड़ा, सिरदर्द, नेत्र-रोग, मुख में पीड़ा, उद्वेग आदि अशुभ प्रभाव करेगा। लग्नेश भी अष्टम गया है इस कारण इस फलादेश की पुष्टि होती है। किन्तु दूसरी कुण्डली में सूर्य लग्न में होते हुए भी लग्न और दशमेश का योग होता है। यदि लग्नेश और दशमेश दोनों का इत्थशाल* हो तो अवश्य ही लग्नस्थ सूर्य पद-प्राप्ति करावेगा। कहने का तात्पर्य यह है कि यह तो साधारण नियम है कि जिस भाव में क्रूर ग्रह हो उस भाव को पीड़ा पहुँचाता है (उदाहरण के लिए मंगल पचम में हो तो सन्तान-कष्ट, चोट लगने का डर, पेट में पीड़ा आदि); किन्तु यह विचार भी परमावश्यक है कि किस भवन का स्वामी है।

(७) ग्रहों के वर्ग—राशि, होरा, द्रेष्काण आदि भी बनाकर देखना चाहिए कि शुभ वर्गो में ग्रह है या अशुभ वर्गो में। 'ताजिक' में दो प्रकार से वर्गो का विचार किया जाता है।

(क) ग्रह, होरा, द्रेष्काण, चतुर्थांश, पंचमांश, षष्ठांश, सप्तमांश, अष्टमांश, नवमांश, दशमांश, एकादशांश तथा द्वादशांश बनाकर देखना चाहिए कि इन १२ वर्गो में कितने शुभ वर्ग में ग्रह पड़ा है। जितने शुभ ग्रहों के वर्ग में हो उतना ही अच्छा। १२ वर्गों का विचार बहुत विस्तृत है इसलिए इस पुस्तक में नही दिया जा रहा है।

(ख) दूसरा विचार पंचवर्गी बल देखने का है। यह पचवर्गी बल आगे बताया गया है। पंचवर्गी बल में केवल निम्नलिखित ५ बल लिये जाते हैं। उच्च बल, गृह बल, हद्दा बल, द्रेष्काण बल, नवांश बल।

---

* इस योग के विवरण के लिए देखिए प्रकरण २०।

(८) इसके अतिरिक्त कुण्डली में एक विशेष बल और देखा जाता है। इसे हर्ष-बल कहते हैं।

(क) सूर्य को नवम में, चन्द्रमा को तृतीय में, मगल को छठे में, बुध को प्रथम भाव में, वृहस्पति को ११वें, शुक्र को पाँचवें और शनि को १२वें भाव मे हर्ष-बल प्राप्त होता है।

(ख) यदि कोई ग्रह स्वगृही (अपनी राशि में) या अपनी उच्च राशि मे हो तो भी उसे हर्ष-बल प्राप्त होता है।

(ग) पुरुष ग्रह-सूर्य, मंगल, वृहस्पति इनमे से जो कोई चतुर्थ पंचम, पष्ठ, दशम, एकादश या द्वादश मे हो वह हर्षित माना जाता है।

स्त्री ग्रह—चन्द्रमा, शुक्र, वुध, शनि इसमें से जो ग्रह प्रथम द्वितीय, तृतीय, सप्तम, अष्टम या नवम में हो वह हर्षित माना जाता है।

(घ) स्त्री ग्रह (च०, वु०, शु०, श०) रात्रि मे हर्षित माने जाते हैं अर्थात् यदि सूर्यास्त के वाद और सूर्योदय काल के पहले वर्ष-प्रवेश हो तो ये हर्षित माने जायेंगे। पुरुष ग्रह (सू०, म०, बृ०), दिन में हर्षित होते हैं। अर्थात् यदि वर्ष-प्रवेश-काल सूर्योदय के वाद और सूर्यास्त के पहले हो तो ये हर्षित माने जायेंगे।

यदि कोई ग्रह उपर्युक्त चारो प्रकार से हर्षित हो तो पूर्ण हर्षित माना जाता है। यदि तीन प्रकार से भी हो तो भी अच्छा ही समझेंगे। दो प्रकार से भी हर्षित होना अच्छा होता है।

(९) आगे २०वें प्रकरण मे जो षोडश योग वताये जाते हैं उन योगों से भी विचार करके देखना चाहिए कि कौनसे ग्रह सहायक हैं और कौनसे वाधक हैं। जो सहायक ग्रह हों उन्हे शुभ मानना चाहिए और जो वाधाकारक हैं उन्हे अशुभ।

(१०) इसके अतिरिक्त इस पुस्तक के १७वें तथा २४वे प्रकरण में ग्रहों की दीप्त, मुदित, स्वस्थ, अस्तंगत आदि जो दशायें

बताई गई हैं उनका भी उचित विचार करते हुए किस राशि या भाव में ग्रह है, किसका स्वामी है, किससे सम्बन्ध करता है, किस-किस घर को मित्र-दृष्टि से देखता है,किस-किस को शत्रु दृष्टि से,आदि का उचित विचार कर प्रत्येक ग्रह का फलादेश करना उचित हैं।'

'ताजिक' में मित्र-शत्रु-दृष्टि और पंचवर्गी बल—

जो प्रथम खण्ड मे नैसर्गिक मैत्री, तात्कालिक मैत्री और पंचधा मैत्री का विचार बताया गया है उसको वर्ष-कुण्डली मे लागू नहीं करना चाहिए। वर्ष-कुण्डली मे ग्रहों की मित्रता, समता तथा शत्रुता का बिलकुल भिन्न सिद्धान्त है। ताजिक-शास्त्र मे दृष्टि के निम्न-लिखित सिद्धान्त हैं :

(१) अपने स्थान से नवम और पंचम प्रत्यक्ष स्नेह वाली, मेलापक, कार्य साधन करने वाली दृष्टि होती है। परन्तु यह दृष्टि केवल तीन चरण (अर्थात ३।४) मानी जाती है।

(२) अपने स्थान से तृतीय या एकादश दृष्टि गुप्त स्नेहवाली, कार्य सिद्ध करने वाली मानी जाती है परन्तु तृतीय दृष्टि की मात्रा केवल दो तृतीयाश (अर्थात् २।३) मानी जाती है। एकादश दृष्टि इसकी अपेक्षा कुछ बलवान् है। इसकी मात्रा ५।६ है अर्थात् तृतीय दृष्टि का प्रभाव रुपये मे ६७ नये पैसे तो एकादश दृष्टि का प्रभाव ८४ नये पैसे।

(३) अपने स्थान से चतुर्थ और दशम दृष्टि गुप्त शत्रुता वाली दृष्टि कहलाती है। इसका प्रभाव १ रु० मे २५ नये पैसे।

(४) प्रथम तथा सप्तम दृष्टि प्रत्यक्ष वैर वाली दृष्टि होती है, परन्तु सम्पूर्ण दृष्टि मानी जाती है। अर्थात् इसका प्रभाव १०० फीसदी होता है (१ रुपये मे १०० नये पैसे के बराबर)। इसी आधार पर मित्रामित्र चक्र बनाया जाता है। परिणाम यह निकला कि—

(क) यदि दो ग्रह प्रथम, चतुर्थ, दशम या सप्तम हों तो दोन

शत्रु होते हैं।

(ख) यदि दो ग्रह परस्पर तृतीय, एकादश या नवम-पचम हों तो मित्र होते है।

(ग) यदि दो ग्रह परस्पर छठे-आठवें हों या दूसरे-बारहवे हो तो वे सम (न मित्र; न शत्रु) समझे जाते हैं।

अब १५२ वे पृष्ठ पर जो वर्ष-कुण्डली है उसके ग्रहो का उपर्युक्त सिद्धान्त पर मित्र सम-शत्रु चक्र बनाया जाता है।

मित्र-सम-शत्रु चक्र

ग्रह	मित्र	सम	शत्रु
सूर्य	मगल और बृहस्पति	शुक्र	चन्द्रमा, बुध, शनि
चन्द्र	मगल और बृहस्पति	शुक्र	सूर्य, बुध, शनि
मंगल	सूर्य, चन्द्र, बुध	शनि	बृहस्पति, शुक्र
बुध	मंगल और बृहस्पति	शुक्र	सूर्य, चन्द्र, शनि
बृहस्पति	सूर्य, चन्द्र, बुध	शनि	मंगल और शुक्र
शुक्र	शनि	सू०, च०, बु०	मगल, बृहस्पति
शनि	शुक्र	मगल, बृ०	सूर्य, चन्द्र, बुध

पंचवर्गी बल :

(१) उच्च बल—सूर्यादि सप्त ग्रहो के पूर्णोच्च स्थान अर्थात् जहाँ ग्रह पूर्ण उच्च होते हैं ३१वे पृष्ठ पर बताये गये हैं। उनके परम नीच स्थान भी उसी पृष्ठ पर दिये गये हैं। जो ग्रह पूर्ण उच्च स्थान पर हो उसे पूर्ण बली कहते हैं। इसकी नाप २० है। अर्थात् उदाहरण के लिए यदि किसी की वर्ष-प्रवेश-कुण्डली मे मगल के मकर के२८ अंश हो तो उसे २० बल मिलेगा। यदि मगल परम नीच स्थान में

हो अर्थात् कर्क राशि के २८वें अंश पर हो तो उसे उच्च बल के नाम से० प्राप्त होगा, मध्य में अनुपात से समझना चाहिए। परमोच्च और परम नीच में १८० अंश का अन्तर होता है। इसलिए यदि कोई ग्रह परमोच्च स्थान से ४५ अंश दूर हो तो उसे उच्च बल १५ प्राप्त होगा। यदि परमोच्च स्थान से ९० अंश दूर हो तो उच्च बल १० प्राप्त होगा। इसी प्रकार त्रैराशिक से* बल निकालना चाहिए।

(२) स्वगृही बल : यदि कोई ग्रह स्वराशि में हो तो उसे ३० बल प्रप्त होता है। यदि मित्र की राशि में हो तो २२½, यदि सम की राशि में हो तो. १५, शत्रु की राशि में हो तो ७½।

हद्दा चक्र :

मे०	वृ०	मि०	क०	सिं०	क०	तु०	वृ०	ध०	म०	कुं०	मी०
बृ० ६	शु० ८	बु० ६	मं० ७	बृ० ६	बु० ७	श० ६	मं० ७	बृ० १२	बु० ७	शु० ७	शु० १२
शु० ६	बु० ६	शु० ६	शु० ६	शु० ५	शु० १०	बु० ८	शु० ४	शु० ५	बृ० ७	बु० ६	बृ० ४
बु० ८	बृ० ८	बृ० ५	बु० ६	श० ७	बृ० ४	बृ० ७	बु० ८	बु० ४	शु० ८	बृ० ७	बु० ३
म० ५	श० ५	मं० ७	बृ० ७	बु० ६	मं० ७	शु० ७	बृ० ५	मं० ५	श० ४	मं० ५	मं० ९
श० ५	म० ३	श० ६	श० ४	म० ६	श० २	मं० २	श० ६	श० ४	मं० ४	श० ५	श० २

* इसे बहुत से लोग 'इकाई' का नियम भी कहते हैं।

नोट—हद्दा चक्र का प्रयोजन पृष्ठ १६३ पर बताया गया है।

(३) हद्दा वल—यदि ग्रह अपनी हद्दा में हो तो उसे १५ वल प्राप्त होता है। यदि मित्र की हद्दा मे हो ११¼। यदि सम की हद्दा में हो तो ७½, यदि शत्रु की हद्दा मे हो तो ३¾। पृ० १६२ पर हद्दा चक्र दिया गया है अर्थात् मेष राशि में प्रारम्भिक ६ अशों का स्वामी वृहस्पति,७ से १२तक शुक्र, १३ से २० तक वुध, २१ से २५ तक मंगल, २६ से ३० तक शनि। ऊपर जो मेष से मीन तक हद्दाओ के स्वामी दिये गये हैं इस चक्र से यह विचार करे कि विचारणीय ग्रह स्वयं अपनी या किसी अन्य ग्रह की हद्दा मे है और जिसकी हद्दा में है वह विचारणीय ग्रह का मित्र, सम या शत्रु है।

(४) द्रेष्काण वल—यदि वर्ष-कुण्डली में ग्रह अपने द्रेष्काण में हो तो १० वल, मित्र के द्रेष्काण में हो तो ७½, सम के द्रेष्काण में ५ और शत्रु के द्रेष्काण मे २½ वल मिलता है।*

(५) नवांश वल—यदि ग्रह अपने नवांश में हो तो ५ वल, यदि मित्र के नवांश में हो तो ३¾, यदि सम के नवांश में हो तो २½ और यदि शत्रु के नवांश मे हो तो १¼ वल मिलता है।

इस प्रकार उच्च वल के २०, स्वगृही के ३०, हद्दा के १५, द्रेष्काण के १०, और नवांश के ५, कुल-पूर्ण सख्या ८० हुई। प्राचीन सम्प्रदाय यह है कि पहले वीघा का विशेष प्रचार था और १ वीघा में २० विस्वा होते हैं इस कारण लोग वलावल को २० विस्वा, १५ विस्वा, १० विस्वा, ५ विस्वा इस प्रकार की भाषा मे व्यक्त करते थे।

अतः प्राचीन ग्रन्थों मे लिखा है कि जितनी वल-सख्या आवे

---

*नोट—यवन मतानुसार १२ राशियों के जो ३६ द्रेष्काण होते है उनके स्वामी निम्नलिखित हैं। (१) मं० सू० शु०, (२) वु० च० श० (३) वृ० मं० सू० (४) शु० वु० चं० (५) श० वृ० मं (६) सू० शु० वु० (७) चं० श० वृ० (८) मं० सू० शु० (९) वु० चं० श० (१०) वृ० म० सू० (११) शु० वु० चं० (१२) श० वृ० मं०। यही मत विशेष प्रचलित है।

उसके ४ से भाग देकर बिस्वा बना ले। ८० पूर्ण संख्या है, ८० को ४ से भाग दिया तो २० विस्वा हुए, जिसका अर्थ है पूर्ण बली। इस प्रकार जितनी बल-संख्या किसी ग्रह को प्राप्त हो उसका चतुर्थांश कर बिस्वा बनाना चाहिए।

(क) १५ बिस्वा से २० बिस्वा तक बल प्राप्त हो तो पूर्ण बली। (ख) १० विस्वा से १५ बिस्वा तक हो तो बली। (ग) ५ बिस्वा से १० विस्वा तक हो तो हीन बली। (घ) ५ बिस्वा से भी कम हो तो अत्यन्त निर्बल समझ लेना चाहिए।

वर्षेश-निर्णय

ऊपर जो पचवर्गी बल विस्तार से बताया गया है इसके दो प्रयोजन हैं। एक तो यह कि जो ग्रह बली हो वह शुभ फल देता है, और जो निर्बल हो वह कष्टकारक सिद्ध होता है। दूसरा प्रयोजन यह है कि वर्ष-कुण्डली में यह विचार बहुत मुख्य है कि वर्षेश कौन-सा ग्रह है यह स्थिर किया जावे। वर्षेश होने के अधिकारी निम्नलिखित ५ ग्रह हो सकते हैं :

(१) जन्म-कुण्डली में जो लग्न का स्वामी हो उसे जन्म-लग्नपति कहते हैं। (२) वर्ष-कुण्डली में जो लग्न का स्वामी हो उसे वर्ष-लग्नपति कहते हैं। (३) यदि दिन में (सूर्योदय से सूर्यास्त के बीच में) वर्ष-प्रवेश हो तो उसे दिवालग्न कहते हैं। यदि रात्रि में (सूर्यास्त के बाद सूर्योदय से पहिले) वर्ष-प्रवेश हो तो उसे रात्रिलग्न कहते हैं। तो इसके अनुसार निम्नलिखित वर्षेश होने का अधिकारी होता है।

लग्न	मे०	वृ०	मि०	क०	सि.	क०	तु०	वृ०	ध०	म०	कुं०	मी
यदि दिवा लग्न हो :	सू०	शु०	श०	शु०	बृ०	च०	बु०	म०	श०	म०	बृ०	च०
यदि रात्रि लग्न हो :	बृ०	चं०	बु०	म०	सू०	शु०	श०	शु०	श०	म०	बृ०	चं०

इस प्रकार दिन में वर्ष-प्रवेश है या रात्रि में वर्ष-प्रवेश है और वर्ष-लग्न कौन-सा आता है—इस विचार से जो ग्रह वर्षेश होने का अधिकारी होता है उसे त्रिराशिपति कहते हैं।

(४) (क)—दिन में वर्ष-प्रवेश हो तो सूर्य जिस राशि में हो, उस राशि का स्वामी वर्षेश होने का अधिकारी होता है।

(ख)—यदि रात्रि में वर्ष-प्रवेश हो तो चन्द्रमा वर्ष-कुण्डली में जिस राशि में हो उस राशि का स्वामी वर्षेश होने का अधिकारी होता है।

(५) मुंथा जिस राशि में हो उस राशि के स्वामी को मुंथेश कहते हैं। मुंथा किस राशि में रखना है यह १४६वें पृष्ठ पर बताया जा चुका है। मुंथेश भी वर्षेश होने का अधिकारी होता है।

इस प्रकार ऊपर वर्षेश होने के पाँच अधिकारी या उम्मीदवार हो सकते हैं। अब यह देखना चाहिए कि इन पाँचों में कौन-कौन लग्न को देखते हैं। पाँचों उम्मीदवारों में जो ग्रह लग्न को देखें उनका पंचवर्गी बल निकालकर यह देखना चाहिए कि सबसे बली कौन है। जो सबसे बली होता है वही वर्षेश होता है। वर्षेश यदि पूर्ण बलवान् हो तो वर्ष शुभ जाता है। वर्षेश जिस भाव के स्वामी से इत्थशाल करता है (यह योग आगे २०वें प्रकरण में समझाया गया है) उस भाव-सम्बन्धी शुभ फल देता है। वर्षेश यदि निर्बल, अशुभ स्थान में अथवा पापग्रहों से आक्रान्त और दृष्ट हो तो वर्ष पीडाकारक, अनिष्ट प्रभाव उत्पन्न करने वाला होता है।

दीप्तांश

आगे के प्रकरण में इक्कबाल आदि १६ योग बताने के पहले यह स्पष्ट कर देना उचित है कि यद्यपि मित्र, सम, शत्रु दृष्टि-विचार में (देखिये पृष्ठ १६०) राशि से राशि गिनना बताया गया है किन्तु जहाँ योगों का विचार करना हो वहाँ वर्ष-कुण्डली में अंश-से-अंश गिनने चाहिए।

साथ की कुण्डली देखिए। चन्द्रमा, सूर्य से नवें घर में है। लेकिन चन्द्रमा के ८ अंश हैं और सूर्य के २६, इसलिए नवम-पंचम होते हुए भी दोनों के राशिगत अंशो में (२६-८)=१८ अंशों का फासला है। यह अत्यन्त अधिक होने के कारण जहाँ योगों का विचार करना हो वहाँ यह दृष्टि कारगर

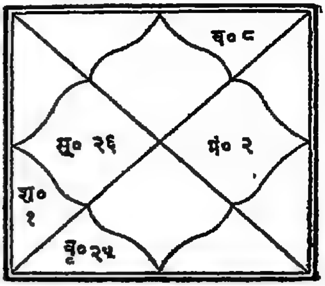

नही होगी। इसी प्रकार चन्द्रमा और बृहस्पति यद्यपि एक-दूसरे से सातवें हैं किंतु चंद्रमा के ८ अंश हैं और बृहस्पति के २५ अंश, इस कारण इन दोनो की दृष्टि भी पूर्ण कारआमद सिद्ध नहीं होगी। सूर्य और बृहस्पति दोनों एक-दूसरे से तृतीय-एकादश हैं। इस प्रकार एक-दूसरे को देखते हैं (ताजक में जातक से भिन्न दृष्टि के सिद्धांत हैं। यह १६०वें पृष्ठ पर बताया जा चुका है।) और सूर्य के—जिस राशि मे वह है—उसमें २६ अंश हैं तथा बृहस्पति के २५ अंश। इस प्रकार दोनों के राशिगत अंशों में केवल १ अंश का अन्तर है इस कारण ऐसी दृष्टि, 'योग' मे प्रभावोत्पादक मानी जायेगी। इसी प्रकार चंद्रमा के राशिगत अंश ८ हैं और मंगल के २, दोनों मे राशिगत केवल ६ अंशों का अन्तर है। इस कारण यह दृष्टि भी 'योग' का प्रभाव उत्पन्न कर सकती है। सूर्य और शनि यद्यपि एक-दूसरे से बारहवे और दूसरे हैं और ताजिक शास्त्रानुसार दोनो में कोई दृष्टि नही है किंतु सूर्य शनि से पिछली राशि में २६ अंश पर है और शनि सूर्य से अग्रिम राशि में १ अंश पर, इस कारण दोनों में वास्तविक अन्तर केवल ५ अंशो का है। अतः

*इस वर्ष-कुण्डली में जो ग्रहो के साथ संख्या दी गई है वह ग्रहों के अंशों की है।

दोनों में दृष्टि न होते हुए भी—वर्ष-कुण्डली में योगों के विचार से दोनों ऐसे अंशों के अन्तर्गत माने जायेंगे जहाँ एक ग्रह दूसरे को अपना तेज देने में समर्थ है। इन अंशों की सख्या को 'दीप्तांश' कहते हैं। कितने अश हों जिनके अन्तर्गत होने से द्विर्द्वादश होने की स्थिति में भी, अथवा नवम, पंचम, तृतीयेकादश या एक दूसरे से सातवेहोने पर या चतुर्थ-दशम दृष्टि होने पर या एक ही राशि में दो ग्रहों में'योग' प्रभाव उत्पन्न हो सकता हैं ? यह जो प्रश्न है, इसका उत्तर यह है कि भिन्न-भिन्न ग्रहों के दीप्तांश भिन्न-भिन्न हैं।

दीप्तांश चक्र

ग्रह	सू०	च०	म०	बु०	वृ०	शु०	श०
दीप्तांश	१५	१२	८	७	९	७	९

दीप्तांश देखने का प्रकार—जिन ग्रहों में दृष्टि हो उनके दीप्तांशों को जोड़िये और उनको आधा कीजिए। उदाहरण के लिए आपको चंद्रमा और मंगल में दृष्टि देखनी हैं कि यह दृष्टि 'योग' फल उत्पन्न कर सकती है या नहीं। चद्रमा के दीप्तांश १२ हैं, मंगल के ८, दोनों का योग २० हुआ, इसका आधा १०। तो चन्द्रमा और मंगल मे १० अंशों तक राशिगत अन्तर होने पर दोनो दीप्तांश के अन्तर्गत माने जायेंगे। इस सिद्धांत के अनुसार १६६वें पृष्ठ पर जो कुण्डली बनायी गयी है—उसमें चन्द्रमा और मंगल के अपनी-अपनी राशिगत केवल ६ अंशों का अंतर है; इसी लिए दोनो दीप्तांश मे हैं।

बीसवाँ प्रकरण

षोडश योग

इक्कबाल आदि षोडश योग

वर्ष-कुंडली में १६ योग बहुत महत्व के हैं। इनका न केवल वर्ष-कुंडली में विचार करना चाहिए अपितु प्रश्न कुंडली में भी विचार बहुत फलकारक सिद्ध होता है।

(१) **इक्कबाल योग**—ताजिक शास्त्र यवनो से लिया गया है इस कारण इसके योगों के नाम भी प्रायः फारसी, अरबी आदि से लिये गये हैं। यदि सब ग्रह केन्द्र और पणफर में हों तो 'इक्कबाल' योग होता है। (केंद्र, पणफर, आपोक्लिम किन स्थानों को कहते हैं यह पृष्ठ ३८वे पर बता चुके हैं।) यद्यपि अष्टम स्थान पणफर स्थान है किंतु यह योग तब ही फलित होता है जब अष्टम स्थान के अतिरिक्त पणफर स्थान तथा केंद्रों में ही ग्रह हों। यह योग उन्नति और वृद्धिकारक है।

(२) **इन्दुवार**—यदि सब ग्रह पणफर स्थानों में हो तो 'इन्दुवार' योग होता है। जिस वर्ष में यह योग हो उस वर्ष में मानसिक चिन्ता, उद्वेग और अवनति होती है।

(३) **इत्थशाल**—यदि लग्नेश और किसी ग्रह में (क) परस्पर दृष्टि हो और (ख) दोनों ग्रह दीप्तांश के अन्तर्गत हों— जैसा कि १६६-७वे पृष्ठ पर समझाया गया है; और (ग) शीघ्र गति वाले ग्रह के राशिगत अंश कम हों और धीरे चलने वाले ग्रह के राशिगत अंश अधिक हों तो वर्ष-प्रवेश के आगे के दिनों में शीघ्र गति वाला ग्रह-विशेष तेजी से चलने के कारण उतने ही अंशों का हो जायेगा जितने अंशों का मंद गति ग्रह है।

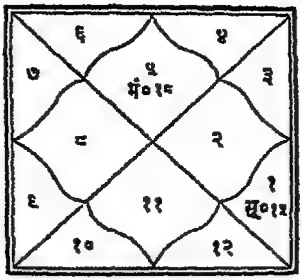

साथ की वर्ष-कुडली मे लग्नेश सूर्य के १५ अश है और मगल के १८ अग हैं। यदि सूर्य प्रतिदिन १ अश चलता है और मगल प्रतिदिन ४५ कला चल रहा है तो दोनो की चाल मे १५ कला का अंतर होगा। इस प्रकार सूर्य और मगल की रफतार मे अतर होने की वजह से १२ दिन वाद मगल—१२ × ४५ = ५४० कला = ९ अश आगे वढ जायेगा और उसके २७ अश हो जायेंगे और सूर्य प्रतिदिन १ अश चलता है इस कारण १२ दिन वाद सूर्य के भी २७ अश हो जावेगे (१५ + १२ = २७)। मगल और सूर्य के—अपनी-अपनी राशिगत अश समान हो जाने से एक-दूसरे को अपना तेज दे सकेंगे। यदि मन्दगति वाला ग्रह थोडे अश का हो और शीघ्रगामी ग्रह अधिक अश का हो तो दोनो के अश समान नही हो सकते। किंतु यदि शीघ्रगामी ग्रह के अधिक अश होने पर भी वह वक्री हो तो दोनो ग्रहो के समान अश हो जावेगे। इस कारण इत्थशाल योग हो जावेगा। लग्नेश का जिस भाव के स्वामी से इत्थशाल हो उस भाव का फल उस वर्ष मे अवश्य होता है। अष्टम, द्वादश अशुभ भाव हैं। इन भावो के स्वामियो से इत्थशाल होना अच्छा नही। नवम भाव के स्वामी से लग्नेश का इत्थशाल होगा तो उस वर्ष भाग्य-वृद्धि होगी। जिस प्रकार लग्नेश से इत्थशाल देखते हैं उसी प्रकार वर्षेश से भी किस भाव के स्वामी का इत्थशाल होता है, यह विचार करना चाहिए।

(४) **इसराफ़**—इत्थशाल क़ा बिलकुल उल्टा इसराफ है। जहाँ लग्नेश और अन्य भाव के स्वामी मे दृष्टि हो किंतु शीघ्रगामी ग्रह के अधिक अंश हों और धीरे चलने वाले ग्रह के अंश थोड़े हों, वहाँ शीघ्रगामी ग्रह निरन्तर आगे बढता जायगा और दोनों ग्रहो के राशिगत अंशो मे समानता नही होगी, इस कारण 'इसराफ' योग होगा। इसका फल इत्थशाल योग के बिलकुल विरुद्ध है। जिस भवन के स्वामी के साथ इसराफ हो उस भाव-सम्बन्धी फल की हानि होती है। कोई-कोई आचार्य यह मानते हैं कि लग्नेश का यदि शुभ ग्रह से इसराफ हो तो इतना हानिकारक नही होता।'

(५) **नक्त योग**—यदि लग्नेश और कार्येश (जिस भाव-सम्बन्धी विचार करना हो उस भाव के स्वामी को कार्येश कहते हैं) में परस्पर दृष्टि न हो और उन दोनो के बीच में दीप्तांशो के अन्तर्गत ऐसा शीघ्रगामी ग्रह हो जो लग्नेश और कार्येश दोनो को देखता हो तो वह एक ग्रह के तेज को लेकर दूसरे को दे देता है। उदाहरण के लिए साथ की वर्ष-कुण्डली में बुध और बृहस्पति में दृष्टि नही है। बुध के ६ अंश और बृहस्पति के १२ अंश। यदि चन्द्रमा वृषभ राशि में ८ अंश का है तो वह बुध को भी देखता है और बृहस्पति को भी, और शीघ्र चलने वाले बुध का तेज लेकर अधिक चलने वाले बृहस्पति को दे देता है। ऐसा योग होने से किसी अन्य व्यक्ति के द्वारा कार्य-सिद्धि होगी यह कहना चाहिए।

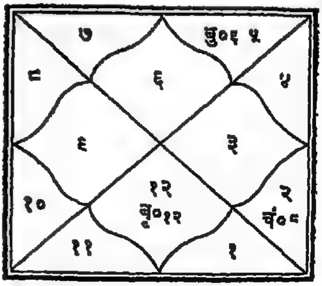

(६) **यमया योग**—जो परिस्थिति नक्त योग में बतायी गयी है वही परिस्थिति यमया योग मे होती है। लग्नेश व कार्येश के अपनी-अपनी राशिगत अंश ऐसे होते हैं कि यदि लग्नेश-कार्येश में परस्पर दृष्टि होती तो इत्थशाल होता, किंतु लग्नेश व कार्येश में

दृष्टि नही है। अब इन दोनो की अपेक्षा मन्दगामी (धीरे चलने वाला ग्रह) किसी ऐसी राशि मे है जहाँ से वह लग्नेश व कार्येश दोनों से दृष्टि करता है तो यमया योग हुआ। यमया योग और नक्त योग मे अन्तर यह है कि यदि लग्नेश व कार्येश दोनो की अपेक्षा शीघ्रगामी ग्रह की सहायता से कार्य-सम्पादन हो तो नक्त योग। यदि दोनो की अपेक्षा मन्दगामी ग्रह यह कार्य सम्पादन करे तो यमया योग होता है।

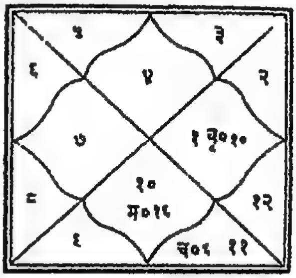

उदाहरण—लग्नेश चन्द्रमा के ६ अंश हैं, कार्येश मंगल के १६ अंश; यदि दोनो मे दृष्टि होती तो इत्थशाल योग होता, किंतु इन दोनो मे दृष्टि नही है। यहाँ बृहस्पति १०वें घर मे है और दोनो को देखता है। दोनो से मन्दगामी है और दोनो के अंशो के बीच के इसके अंश हैं, इस कारण लग्नेश, कार्येश की दृष्टि न होते हुए भी अन्य व्यक्ति की सहायता से कार्यसिद्धि हो जावेगी।

(७) मणऊ योग—मणऊ योग का सिद्धान्त यह है कि यदि लग्नेश व कार्येश मे इत्थशाल हो रहा हो किंतु कोई पापग्रह (मंगल या शनि) दोनो या एक को भी शत्रु-दृष्टि से देखता हो, और दीप्तांशो के अंतर्गत हो तो कार्य-नाश करता है। यह अशुभ योग है।

(८) कम्बूल योग—यदि लग्नेश और कार्येश मे परस्पर इत्थशाल हो और इन दोनो मे एक से भी चन्द्रमा इत्थशाल करता हो तो कम्बूल योग होता है। लग्नेश, कार्येश और चन्द्रमा तीनो उच्च राशि या स्वराशि के बलवान् हो तो बहुत बढ़िया कम्बूल योग बनता है। यदि नीचराशि, शत्रुराशि के निर्बल हो तो निर्बल कम्बूल

बनता है। लग्नेश और कार्येश मे इत्थशाल के द्वारा जो शुभता प्रकट होती है उसकी बहुत अधिक मात्रा मे कम्बूल योग द्वारा पुष्टि होती है।

(९) गैर कम्बूल—यदि लग्नेश और कार्येश में दृष्टि हो, किंतु यदि चन्द्रमा लग्नेश और कार्येश से दृष्टि न करता हो (चन्द्रमा स्वराशि या उच्चराशि में न हो—राशि के अंतिम भाग में हो और किसी से दृष्टि न करता हो) किंतु अग्रिम राशि में जाकर किसी अन्य (गैर का अर्थ है अन्य, दीगर) बलवान् ग्रह से कम्बूल योग करता हो तो भी कार्यसाधक होता है। यदि चन्द्रमा आगे की राशि में जाने वाला हो और उस आगे की राशि में कोई उच्च या स्वगृही बलवान् ग्रह चन्द्रमा के दीप्तांश के अन्तर्गत हो तभी गैर कम्बूल बनता है। यदि अग्रिम राशि में जाकर नीच या निर्बल ग्रह से दृष्टि-योग करे तो गैर कम्बूल योग नही बनता। गैर कम्बूल योग भी शुभ है। किसी अन्य की सहायता से कार्य बनता है।

(१०) खल्लासर योग—यह कार्यनाशक योग है। यदि लग्नेश और कार्येश में इत्थशाल हो किंतु न चन्द्रमा कबूल योग करता हो और न गैर कम्बूल करता हो तथा चन्द्रमा अपनी राशि या उच्चराशि आदि मे न होकर शून्य मार्ग में हो तो खल्लासर योग होता है। जब कोई ग्रह अधिकारहीन हो अर्थात् अपनी राशि, उच्च राशि आदि मे न हो और न अपनी नीच राशि आदि में हो और किसी

नोट—यदि शीघ्रगामी ग्रह ३, ६, ९, १२ इनमे से कहीं स्थित होकर केन्द्रस्थ धीरे चलने वाले ग्रह से इत्थशाल करे तो पहले कार्य में बाधा पडेगी किंतु बाद में सफलता मिलेगी। किंतु यदि मन्दगति ग्रह ३, ६, ९, १२ स्थान में स्थित हो और उससे इत्थशाल करने वाला शीघ्रगति केन्द्र में हो तो प्रारंभ से तो आशा दिखाई देगी किंतु कार्य बनेगा नहीं। इस योग का वर्ष-कुंडली तथा प्रश्न-कुंडली दोनों में उपयोग करना चाहिए।

ग्रह से दृष्टि भी न हो तो उसे शून्य मार्ग में स्थित कहते हैं।

(११) रद्द योग—रद्द योग शुभ योगो को रद्दी कर देता है। यदि इत्थशाल करने वाले दोनो ग्रह अस्त हो, नीच हों, शत्रु-राशि में हो, क्रूर ग्रहो के साथ हो, अष्टम आदि दुःस्थान मे हो, या दोनों मे से एक भी ऐसा हो तो कार्य नही बनता।

(१२) दुफालिकुत्थ योग—लग्नेश और कार्येश यदि इन दोनो में इत्थशाल हो और (१) इन दोनो में धीरे चलने वाला ग्रह अपनी स्वराशि या उच्चराशि, हद्दा, द्रेष्काण आदि मे बलवान् हो तथा (२) शीघ्रगामी ग्रह अपनी उच्च, स्वराशि आदि मे न हो और निर्बल हो तो दुफालिकुत्थ योग होता है। यह कार्यसाधक है।

(१३) दुत्थकुत्थीर योग—यदि लग्नेश व कार्येश दोनो निर्बली हो इस कारण इत्थशाल होने पर भी कार्य-सफलता उत्पन्न न कर सकते हो किंतु दोनो मे से एक भी किसी स्वगृही, उच्च, बलवान् ग्रह से इत्थशाल करता हो तो किसी अन्य व्यक्ति की सहायता से कार्यसिद्धि होगी यह कहना चाहिये।

(१४) शुभतम्बीर योग—यदि लग्नेश और कार्येश दोनो मे पर-स्पर दृष्टि न हो किन्तु इन दोनो मे से एक राशि के अंत मे स्थित हो और आगामी (आगे की) राशि मे स्थित बलवान् ग्रह से इत्थशाल करता हो तो शुभतम्बीर योग होता है। ऐसे योग मे अन्य की सहायता से कार्यसाधन होता है।

(१५) कुत्थ योग—यदि वर्ष-कुंडली में लग्नेश, कार्येश आदि बलवान् हों तो कुत्थ योग होता है। केन्द्र और पणफर मे स्थित,

---

नोट—शीघ्रगति ग्रह निर्बल हो इसका अर्थ केवल यह है कि वह पंचवर्गी बल के अनुसार कमजोर हो किंतु दोनों ग्रहों में से कोई भी वक्री या अस्तंगत या शत्रुराशिस्थ नहीं होना चाहिए।

नोट—अथवा कोई भी दो बलवान् ग्रह लग्नेश या कार्येश से इत्थशाल करते हों तो भी कार्य सिद्ध होता है।

पंचवर्गी बल के अनुसार बलवान् ग्रह बली होता है। आपोक्लिम में स्थित वक्री या अस्तंगत तथा पचवर्गी बल के अनुसार निर्बल ग्रह को निर्बल समझना चाहिए। चारों प्रकार के हर्ष बल का विचार भी कर लेना उचित है। (देखिये पृष्ठ १५६ से १६३ तक) कुत्थ योग होने से उस वर्ष मे पूर्ण उन्नति, सफलता तथा हर्ष प्रदान करने वाले शुभ कार्य होते हैं।

(१६) दुरूफ़ योग—यह कुत्थ योग का उलटा है। इसका फल कष्ट, विपत्ति, शरीर-पीड़ा, मानसिक त्रास, धन-हानि, कलह आदि है। यदि वर्ष-कुंडली मे सब ग्रह निर्बल हो तो यह योग होता है। निर्बल ग्रह किसे कहते हैं यह ऊपर कुत्थ योग के प्रसंग मे बता दिया गया है।

ये १६ योग वर्ष के प्राण हैं। इनका उचित विचार कर फलादेश करना चाहिए। प्रश्न-कुण्डली में भी इनका विचार परमावश्यक है।

बहुत से व्यक्ति सहमों को भी बहुत प्रधानता देते हैं। किंतु वर्ष-कुण्डली में सहम-विचार तभी ठीक से किया जा सकता है जब जन्म-कुण्डली में सहम लगाये गए हों। जन्म-पत्रों में १ लाख कुण्डली में से एक में भी सहम नही लगाए जाते हैं। इस कारण यहाँ भी यह विषय नही दिया जा रहा है।

मुंथा विचार

मुथा किस राशि में रखनी चाहिए यह १५० पृष्ठ पर बताया जा चुका है। यदि वर्ष-कुण्डली में मुथा चौथे या सातवे घर मे पड़े तो अशुभ फल देती है। यदि छठे या आठवे घर में पड़े तो शत्रु व रोग-वृद्धि, शरीर-पीडा आदि घोर कष्ट देती है। द्वादश में अनिष्टकारी है। बहुत व्यय-कारक होती है। यदि मुथा पाप ग्रह के साथ हो तो शुभ-स्थित मुथा भी शुभ फल देने में समर्थ नही होती और दुःस्थान स्थित मुंथा तो और भी अधिक पीड़ाकारक हो

जाती है। इसी प्रकार यदि मुथा शुभ ग्रह के साथ हो और शुभ राशि में हो तो पूर्ण शुभ फल देती है। किंतु यदि ४, ६, ७, ८, १२ स्थान में स्थित हो और शुभ ग्रह से दृष्ट या युत हो तो उतना कष्ट नहीं पहुंचाती। जो पाप या शुभ ग्रह की युति का फल ऊपर बताया गया है उसी प्रकार जैसे ग्रह मुथा को देखते हो उनकी दृष्टि के अनुसार भी फल होता है। यदि राहु के भोग्य अंश मे मुथा हो तो शुभ फल देती है। यदि राशि के जिन अंशों को राहु भोग कर चुका है (राहु उलटा चलता है यह याद रखना चाहिए) उनमे मुथा हो तो अशुभ फल करती है। जिस प्रकार मुंथा का विचार करते हैं उसी प्रकार मुथेश का भी विचार करना चाहिए। शुभ ग्रह से युत दृष्ट शुभ स्थान में स्थित शुभ होता है। पापग्रह से युत, दृष्ट दु स्थान में स्थित मुथेश अशुभ होता है।

त्रिपताकी चक्र

नीचे लिखे प्रकार से त्रिपताकी चक्र बनाना चाहिए।

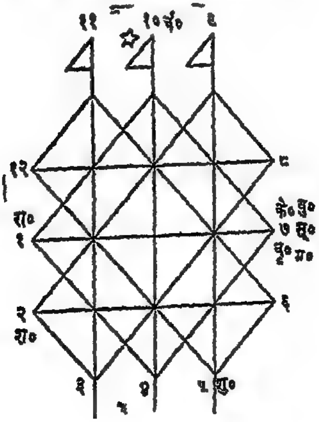

मध्य में जहाँ * तारे का चिह्न है वर्ष-लग्न स्थापित कर जिस प्रकार वर्ष-कुण्डली लिखते है उस प्रकार अन्य राशियो की संख्या लिखिये। पृष्ठ १५१ पर जो वर्ष-कुण्डली बनाई है उसमे मकर लग्न आया है। इस कारण मध्य पताका के स्थान मे १० लिखा। वर्ष-लग्न के अनुसार–त्रिपताकी चक्र में केवल लग्न भरा जाता है। वर्ष-कुण्डली के ग्रह इस पताकी चक्र मे नही भरे जाते है। ग्रह भरने का निम्नलिखित प्रकार है।

जिन सज्जन की ५१ वे वर्ष-प्रवेश की वर्ष-कुण्डली १५१ पृष्ठ पर बनाई गई है। उनकी जन्म-कुण्डली निम्नलिखित है :

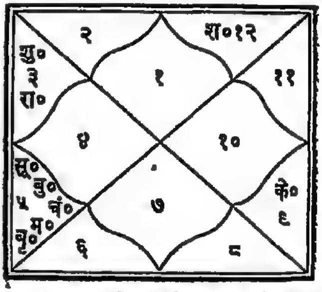

(क) ५१वे वर्ष-प्रवेश का त्रिपताकी चक्र बनाना है इस कारण ५१ मे ९ का भाग दिया। शेष ६ बचे इस कारण जन्म-कुण्डली मे जिस राशि मे चद्रमा है उससे छठे स्थान पर, अर्थात् सिह से छठे मकर मे चन्द्रमा स्थापित किया।

(ख) प्रवेशाब्द ५१ है। इसमें ४ का भाग दिया शेष ३ बचे। इस कारण जन्म-कुण्डली मे सिह मे सूर्य है, सिह से तीसरे तुला में सूर्य रखा। इसी प्रकार अन्य ग्रहो से (जन्म में जिस राशि में जो ग्रह है) तृतीय स्थान पर क्रमश मगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि स्थापित किए। मगल, बुध, बृहस्पति तुला में आये, इसलिए जहाँ ७ लिखा है वहाँ त्रिपताकी चक्र में इन ग्रहो को रखा। शुक्र सिह में तथा शनि वृषभ में आया। राहु और केतु को भी अपनी-अपनी

नोट—यदि ९ से सख्या दने पर ९ हीं बचे अर्थात् एक पुरा-पुरा भाग लग जाय तो जन्म राशिस्थ चंद्रमा से नवे स्थान पर त्रिपताकी चक्र में चंद्रमा रखना चाहिए। इसी प्रकार यदि ४ से भाग देने परे पूरा-पूरा भाग चला जाये तो जन्म-राशिस्थ ग्रह से चौथे स्थान पर अन्य ग्रह को रखना चाहिए।

जन्मस्थ राशि से तृतीय मे रखना चाहिए। किन्तु राहु और केतु उलटा चलते हैं इस कारण मिथुन में राहु है—आगे की ओर न गिनकर पीछे की ओर गिनना चाहिए। मिथुन, वृषभ, मेष अर्थात् जहाँ १ लिखा है वहाँ त्रिपताकी चक्र मे राहु स्थापित किया। इसी प्रकार जन्मस्थ धनु मे केतु होने के कारण उलटा गिनने पर तुला आई इसमें केतु स्थापित किया।

त्रिपताकी चक्र से शुभाशुभ विचार

स्वर्भानुविद्धे हिमगौ त्वरिष्टं पातार्किविद्धे सरुजो भवंति।
महीजविद्धे तु शरीरपीड़ा शुभैश्च विद्धे बहुसौख्यलाभः।
शुभाशुभं व्योमगवीर्यतोऽत्र फलञ्च वर्षस्य वदेत् सुधीमान् ॥

अर्थात् (अ) राहु और चद्रमा का वेध होने से अरिष्ट(कष्ट) होता है।

(आ) चद्रमा का यदि शनि या केतु से वेध हो तो शरीर-पीडा, रोग आदि होता है।

(इ) यदि चद्र और मंगल का वेध हो तो भी शरीर-पीडा होती है।

(ई) यदि चद्रमा का शुभ ग्रह से वेध हो तो बहुत सुख और लाभ होता है।

टिप्पणी—चद्रमा का जिस ग्रह से वेध हो रहा है वह पूर्ण बलवान् और शुभ होगा तो सुख और लाभ भी अधिक होगा। निर्बल शुभ ग्रह से वेध होने पर थोडा लाभ होता है। इसी प्रकार पापग्रह वक्री, अस्तगत, हीन-बली होकर चद्रमा से वेध करे तो शरीर-पीडा विशेष होती है। यदि चंद्रमा कई पापग्रहो से वेध करे तो भी विशेष अरिष्ट समझना चाहिए। ऊपर जो ग्रह स्थापित किये गये हैं वे जब एक ही राशि में हो, या दाये, बाये या सामने जाने वाली लाइन जहाँ समाप्त होती हैं उस राशि मे कोई ग्रह हो तो वेध कहे—अर्थात् वेध लाता है। उदाहरण के लिए पृष्ठ १७५ पर जो

त्रिपताकी चक्र दिया गया है उसमें शनि से जो तीन रेखाये चलती हैं उनके अन्त पर ६, ६, और ३, (अर्थात्, धनु, कन्या और मिथुन राशि हैं) इन तीनो राशियों में कोई ग्रह नही है इसलिए शनि का किसी ग्रह से वेध नही होता। चद्रमा १० (मकर) राशि मे है इससे ३ रेखाये चलती हैं एक, ७ (तुला), दूसरी ४ (कर्क), तीसरी १ (मेप) राशि पर समाप्त होती है। कर्क में कोई ग्रह नही है। किन्तु तुला में सूर्य, मगल, बुध, बृहस्पति, केतु हैं—इनसे चद्रमा का वेध होता है। मेष मे राहु है इस कारण चद्रमा और राहु का भी वेध होता है। प्रस्तुत त्रिपताकी चक्र मे राहु, मगल, केतु से चद्रमा का वेध शरीर पीड़ा-कारक है। बुध, बृहस्पति से चद्रमा का वेध शुभ--सौख्य, लाभ-कारक हैं।

इक्कीसवां प्रकरण

दशा-पद्धति

वर्ष में दशा लगाने का प्रकार

जिस प्रकार जन्म-कुण्डली में ४३ प्रकार की महादशाएं बताई गई है किन्तु विशोत्तरी* (१२० वर्ष की), अष्टोत्तरी* (१०८ वर्ष की) तथा योगिनी (३६ वर्ष की) दशा लगाने का विशेष प्रचार है। बाकी ४० प्रकार की दशा लगाना प्राय· लुप्त हो गया है। उसी प्रकार वर्ष में कु डली मे अनेक प्रकार की दशा लगाने का प्रचार था। अब प्राय मुद्दा दशा और कही कही "हीनांशा, पात्यांशा" दशा भी लगाते हैं। मुद्दादशा लगाना नीचे बताया जाता है।

* * अधिकतर विंशोत्तरी दशा ही लगाते हैं।

मुद्दा दशा

इसको बहुत से लोग मुग्धा दशा भी कहते हैं। जन्म-नक्षत्र की संख्या में गत *वर्ष जोडिये और उसमें से २ घटाकर ६ का भाग दीजिए। यदि एक शेष रहे तो सूर्य से दशा प्रारम्भ होगी, २ शेष रहे तो चन्द्रमा से, ३ बचने पर मंगल से, यदि ४ बाकी बचे तो सर्व-प्रथम राहु की दशा, ५ शेष रहे तो बृहस्पति से, ६ बाकी बचने पर शनि से, ७ शेष रहने से बुध से महादशा का प्रारम्भ गिनना चाहिए। यदि ८ शेष रहे तो केतु से महादशा प्रारम्भ होगी और यदि ९ से पूरा भाग चला जाय तो प्रारम्भ में शुक्र की दशा मानना चाहिए।

प्रत्येक ग्रह की महादशा का समय नीचे दिया जाता है :

सूर्य :	१८ दिन	बृहस्पति :	४८ दिन
चन्द्रमा :	३० दिन	शनि :	५७ दिन
मंगल :	२१ दिन	बुध :	५१ दिन
राहु :	५४ दिन	केतु	२१ दिन
	शुक्र :	६० दिन	

इस प्रकार इन सब दिनों का योग ३६० होता है किन्तु वर्ष-प्रवेश ३६५ दिन, १५ घडी, २२ पल और ५७ विपल पर होता है जिसका मान ३६५$\frac{१}{४}$ दिन के करीब आया तब ५$\frac{१}{४}$ दिन किसकी दशा मानी जाय यह शंका होना स्वाभाविक है। इसका उत्तर यह है कि १२ राशि में ३६० अंश होते हैं। सूर्य जब १ अंश चल ले तब एक सौर (सूर्य का) दिन होता है। यह दशा अंशों के हिसाब से लगाई जाती है। उदाहरण के लिए यदि शुक्र की दशा ५/११, (अर्थात् सूर्य जब सिंह राशि पार कर कन्या राशि में ११ अंश

*. जातक अपनी आयु के जितने वर्ष पूरे कर चुका है उसे गत वर्ष कहते हैं।

पार कर चुका) पर प्रारम्भ हुई तो इसमें ६० अश (६० सौर दिन) जोड़ने से ७।११ हुआ। इस कारण जब सूर्य के वृश्चिक राशि के ११ अंश पूरे होगे तब शुक्र की दशा समाप्त होगी

उदाहरण जिन सज्जन की वर्ष-कुण्डली १५० पृष्ठ पर दी गई है उनका जन्म-नक्षत्र पूर्वाफाल्गुनी है। अश्विनी से गिनने पर पूर्वाफाल्गुनी की सख्या ११ आती है। हमे ५१वे वर्ष की कुंडली मे मुद्दा दशा लगाना है तो गत वर्ष ५० होने से—५० में ११ जोड़े तो ६१ हुए, इसमे से २ घटाये तो ५९ बचे। ९ का भाग दिया, शेष ५ आये। १७९ पृष्ठ पर बताया गया है कि ५ शेष बचे तो बृहस्पति से महादशा गिननी चाहिए। इसलिए इन की वर्ष की दशा का चक्र निम्नलिखित होगा।

ग्रह	बृ०	श०	बु०	के०	शु०	सू०	च०	म०	रा०
सौर दिन	४८	५७	५१	२१	६०	१८	३०	२१	५४

वर्ष-कुण्डली मे जो विविध विचार बताये गये हैं उनसे यह निर्णय करना चाहिए कि कौनसा ग्रह शुभ फल करेगा और कौन-सा कष्ट कारक होगा। जो शुभफल-कारक ग्रह है वह अपनी दशा में शुभ फल देगा। जो कष्टकारक ग्रह है वह अपनी दशा में कष्ट करेगा। शुभ फल क्या होगा और कष्ट-फल क्या होगा यह इस पर से निश्चय करना चाहिए कि ग्रह कौनसा है इसका गुण, प्रकृति कैसी है। वह किन-किन बातों का कारक है। किस राशि और किस भाव मे है। किन ग्रहो से सम्बन्ध करता है; उन ग्रहों की क्या-क्या प्रकृति और गुण हैं।

जिस प्रकार त्रैराशिक द्वारा जन्म-कुंडली की महादशाओ में (सूर्य के ६ वर्ष चन्द्रमा, के १० वर्ष आदि) मे अन्तर्दशा लगाई जाती है वैसे ही वर्ष-कुण्डली की दशा मे अन्तर्दशा भी लगाते हैं। जिस ग्रह की दशा मे अन्तर्दशा लगाना हो उसके प्रारम्भ मे उसी

ग्रह की अन्तर्दशा होगी। उदाहरण के लिए शुक्र की ६० सौर-दिन की दशा है इसमे अन्तर्दशाएं लगाना है तो चूंकि सम्पूर्ण वर्ष के ३६० सौर दिनो मे शुक्र की दशा ६० दिन की अर्थात् पष्ठांश (छ) होती है इस अनुपात मे से ६० को ६ से भाग देने से ६०—६=१० सौर-दिनो की अन्तर्दशा शुक्र की होगी। शुक्र के वाद सूर्य की अन्तर्दशा होगी। सूर्य की वर्प मे दशा १८ दिन की होती है। यह वर्ष =३६० सौर दिन का २०वॉ हिस्सा है इसलिए शूक्र मे सूर्य की अन्तर्दशा—

$$\frac{\text{शूक्र की महादशा}}{२०} = \frac{६०}{२०} = ३ \text{ सौर दिन हो गये}$$

इसी प्रकार प्रत्येक ग्रह की महादशा मे सब ग्रहो की अन्तर्दशा भी वहुत से ज्योतिपी लगाते हैं परन्तु मुख्यतः केवल महादशा लगाने का प्रचार है।

वाईसवॉ प्रकरण

गोचर-विचार

किसी व्यक्ति के सवध मे शुभाशुभ निर्देश करने के अनेक प्रकार हैं। जन्म-कुडली द्वारा महादशा, अन्तर्दशा तथा प्रत्यन्तर्दशा आदि का विचार कर शुभाशुभ वताने का प्रकार पहले वताया जा चुका है। अव एक अन्य प्रकार वताया जाता है जिसे "गोचर" कहते हैं। 'गो' शव्द के अनेक अर्थ हैं। गो का प्रसिद्ध अर्थ "गौ" तो सबको मालूम है। किंतु गो का अर्थ 'तारे', 'आकाश', 'सूर्य', 'चन्द्र' 'प्रकाश की किरण' आदि भी होता है। इस कारण गोचर का अर्थ

हुआ आकाश मे चलने वाले। ज्योतिष में जब गोचर कहा जाय तब उसका अर्थ होता है आकाश में चलने वाले ग्रह। इन निरतर चलने वाले ग्रहों का प्रत्येक मनुष्य पर प्रभाव पड़ता है। यदि आप साधारण मिर्च डली हुई पकौड़ियां दो व्यक्तियो को खिलाये और उनमें से एक तो मिर्च खाने का अभ्यस्त हो और स्वस्थ हो और दूसरा मिर्च खाने का अभ्यस्त न हो और उसके मुँह में छाले हो तो उन साधारण मिर्च डली हुई पकौड़ियों को खाने मे एक को तो मजा आवेगा और दूसरा मुख की झल्लाहट से परेशान हो जावेगा। एक अन्य उदाहरण लीजिये। आप अपने प्रिय पात्र की पीठ पर प्रेम से हाथ रखते हैं तो उसे आनन्द का अनुभव होगा। किंतु यदि उसकी कमीज के नीचे जहाँ आपने हाथ रखा है, भयकर फोड़ा हो तो वह दर्द के मारे चिल्ला उठेगा। कहने का तात्पर्य यह है कि सूर्य, चन्द्र, मगल आदि ग्रह निरतर चलते रहते हैं। सभी पर अपना निरतर प्रभाव डालते हैं किंतु जिस व्यक्ति के (जन्म-कुडली मे पीड़ित) स्थान पर से जाते हैं उस मनुष्य को जेरबार कर देते हैं और जिस मनुष्य के शुभस्थान में जाते हैं उसे निहाल कर देते हैं।

सूर्यादि नौ ग्रह इस समय कहाँ जा रहे हैं; यह विचार करने के लिए शुद्ध पञ्चाग पास मे रखना चाहिए। इसके अतिरिक्त जिस व्यक्ति के लिए शुभाशुभ विचार करना हो उसकी जन्म-कुडली भी पास मे होनी चाहिए। जन्म-कुडली मे प्रत्येक भाव का महत्व है। "प्रश्न मार्ग" मे लिखा है कि जन्म-कुडली के जिस भाव मे शनि जा रहा हो—यदि उस भाव से अष्टमेश की अन्तर्दशा भी जा रही हो तो उस भाव को बिगाड़ता है।

मूर्त्याद्या निजरन्ध्रयेण शनिना वा स्वयंदा संयुता.
स्वस्वारिव्ययरन्ध्रपापहृतय–स्तत्स्थस्य वा चेत्तदा ।।
तत्तद्भावविपत्तिरस्ति नियमा–देवं वरांगादिषु ।
ब्रूयादंध्रियुगान्तिमेषु च वपु–र्भागेषु रोगान् सुधीः ।।
("प्रश्न मार्ग,–१४–४६)

अर्थात् यदि किसी भाव मे शनि गोचर-वश जा रहा हो या उस भाव से अष्टम का स्वामी उस भाव मे गोचर से जा रहा हो और (क) उस भाव से छठे, आठवे या बारहवे के स्वामी पापग्रह की अन्तर्दशा हो या (ख) उस भाव से छठे, आठवे व बारहवे मे जन्म-कुंडली मे कोई पापग्रह हो तो उस भाव को कष्ट पहुँचाता है। या शरीर के उस भाग मे रोग करता है। इसको एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जाता है।

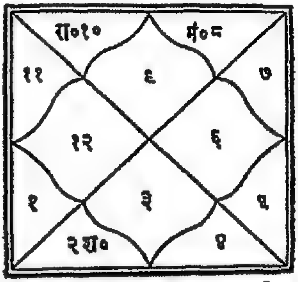

यदि किसी का जन्म-लग्न धनु है और सप्तम स्थान मे गोचर-वश शनि मिथुन राशि मे जा रहा है ऐसी स्थिति मे यदि उस व्यक्ति को सप्तग स्थान से षष्ठ वृश्चिक के स्वामी मगल की अंतर्दशा हो या सप्तम से अष्टम मकर के स्वामी शनि की अन्तर्दशा हो या सप्तम से द्वादश वृषभ राशि के स्वामी शुक्र की अन्तर्दशा हो या सप्तम स्थान से गिनने पर ६, ८, १२, इन स्थानो मे स्थित (सप्तम स्थान से ६, ८, १२, स्थान हुए जन्म-कुण्डली के द्वादश, द्वितीय, और षष्ठ भाव) किसी पापग्रह की अन्तर्दशा हो तो सप्तम भाव-सम्बन्धी विपत्ति होती है– स्त्री-कष्ट हो, मामले-मुकदमे मे हार हो जाये, साझीदार बेईमानी करे, व्यापार मे घाटा लगे–इनमे से कोई बात जातक को परेशान करेगी। कहने का तात्पर्य यह है कि शनि जन्म-कुंडली के जिस भाव मे गोचर-वश भ्रमण करता है उसको प्रायः बिगाड़ता है। इसका एक ही अपवाद है। यदि शनि जन्म-कुन्डली में लग्नेश या योगकारक हो और गोचर-वश स्वराशि या उच्च राशि मे जा रहा हो तो अनिष्ट फल नही करेगा।

भारतीय ज्योतिष मे गोचर-विचार के कई प्रकार हैं: (१)

जन्म-नक्षत्र द्वारा। मनुष्य का जो जन्म-नक्षत्र है वह तथा उससे दसवाँ, सोलहवाँ, उन्नीसवाँ आदि नक्षत्र जब पाप ग्रहो से विद्ध होते हैं तब मनुष्य को पीड़ा होती है। 'वाल्मीकि रामायण' अयोध्याकांड के चतुर्थ सर्ग मे राजा दशरथ ने मृत्यु के कुछ पूर्व कहा है कि ज्योतिषी कहते हैं कि मेरा नक्षत्र सूर्य, अगारक (मगल) और राहु से पीडित होने वाला है। इसलिए मेरे लिए कोई विपत्ति का समय शीघ्र आने वाला है।

अवष्टब्धं च मे राम नक्षत्रं दारुणैर्ग्रहैः।
आवेदयन्ति दैवज्ञाः सूर्यांगारकराहुभिः॥

नक्षत्र-वेध का सबसे अच्छा विचार "सर्वतोभद्रचक्र" द्वारा होता है' इसके लिए निम्नलिखित ग्रन्थ देखिये। *इस छोटी सी पुस्तक मे "सर्वतोभद्र चक्र" या अन्य नक्षत्रवेध-पद्धतियो* का विचार करना संभव नही।

(२) दूसरा विचार जन्म-स्थानीय सूर्यादि सातो ग्रहो तथा जन्म-लग्न से (इन आठो से) किया जाता है। कोई ग्रह इस समय किस राशि मे जा रहा है—वह इस समय अमुक व्यक्ति की जन्म-कुंडली मे जहाँ सूर्य स्थित है वहाँ से शुभ-है या अशुभ, जन्मकालीन चद्रमा से शुभ है या अशुभ, जन्मकालीन मगल से शुभ है या अशुभ इस प्रकार सातो ग्रहो मे देखने के उपरान्त जन्म-लग्न से शुभ है या अशुभ यह विचार कर जब यह निर्णय किया जाता है कि जन्म-कालीन सातो ग्रह और जन्म-लग्न इन आठो से परिणामत. शुभ

---

१. "सर्वतोभद्र चक्र" (१) देखिये "बृहद्वज्ञरजनस्" प्रकरण
२. "जन्मपत्रिका विधान"
३. "फल दीपिका" ३२ तथा (२) "ज्योर्तिनिबंध"
४. "जातक सारदीप"

*अयोध्याकांड चतुर्थ, सर्ग, श्लोक १८।

या अशुभ—यह वर्ग-विचार कहलाता है सूर्यादि-सातों ग्रहो तथा राहु-केतु का अष्टक वर्ग द्वारा विचार किया जाता है। इसके लिए निम्नलिखित ग्रंथ देखने चाहिए। यह बहुत विस्तृत विषय है। इस कारण इसका विवेचन यहाँ सम्भव नही है।

(३) तीसरा गोचर-विचार जन्म-राशि से किया जाता है। अर्थात् जन्म के समय चन्द्रमा जिस राशि मे था उस राशि से—जन्मकालीन चन्द्र-स्थिति से यदि कोई ग्रह शुभस्थान पर जा रहा हो तो वह शुभ फल करता है। यदि कोई ग्रह अशुभस्थान पर जा रहा हो तो अशुभ फल करता है। भारतवर्ष मे—भारतीय ज्योतिष मे चन्द्रमा का विशेष महत्व है।

सर्वेषु लग्नेष्वपि सत्सु चन्द्रलग्नं प्रधानं खलु गोचरेषु।
तस्मात्तदृक्षादपि वर्तमानग्रहेन्द्र चारैः कथयेत्फलानि॥

("फलदीपिका"–२६–१)

इसका तात्पर्य यह है कि यद्यपि अन्य ग्रह भी हैं और जन्म-लग्न का भी अपना महत्व है किन्तु सब लग्नो की अपेक्षा चन्द्रलग्न की प्रधानता है। यही कारण है कि उत्तर भारत मे जो कुंडलियाँ बनती हैं उनमें पहले जन्म-कुण्डली चक्र बनाया जाता है—जिसमें जन्म-लग्न से प्रारम्भ करते हैं और उसके नीचे चन्द्र-कुण्डली बनाई जाती है—जिसमे चन्द्रमा जन्म-काल में जिस राशि मे होता है—उस राशि से प्रारम्भ करते हैं। तात्पर्य यह है कि चन्द्रमा मन है :

---

१ 'बृहत्पाराशर होराशास्त्र'।
२ "बृहत्जातक" नवम अध्याय।
३ 'फल दीपिका' अध्याय २३ से २६ तक।
४ "जातक सार दीप" अध्याय ७६।
५. 'सारावली' अध्याय ५३।
६. 'अष्टक वर्ग' यह ३०० पृष्ठ की पुस्तक केवल अष्टक वर्ग के सम्बन्ध में है।

"चन्द्रमा मनसो जात"

यह वेद का वाक्य है। ज्योतिष शास्त्र मे भी लिखा है 'मनस्तु हिमगु. (बृहज्जातक) "शीतकरस्तु चेतः" . (सारावली)। चन्द्रमा मन है। जब मन पर दु खद प्रभाव पडे तो दु ख, जब सुखद प्रभाव पडे तब सुख होता है। एक मनुष्य को लाखो का घाटा लग जाता है और वह सैर-सपाटे करता फिरता है। उसका मन खूब खुश रहता है। दूसरा मनुष्य चार हजार का वेतन पाता है–बगला, कार, अधिकार, रुपया-पैसा सब कुछ है किन्तु एक विशिष्ट पद के लिए उसको न चुनकर उसके एक मातहत को चुन लिया जाता है। अपने न चुने जाने के कारण वह मनुष्य घोर दु खी रहता है। इसी प्रकार बहुत सी परिस्थितियाँ हैं। बहुत बार हमारे दु ख के लिए कोई कारण न होने पर भी हमारा मन काल्पनिक या आशकावश परम दु खी रहता है। बहुत बार अनेक कष्टों से घिरे रहने पर भी हम लोग परवाह नहीं करते। कहने का तात्पर्य यह है कि मन पर ही सुख-दु ख की छाप पडती है और चन्द्रमा मन का अधिष्ठाता है, इस कारण जन्मकालीन चन्द्र राशि से गोचर का विचार किया जाता है। अग्रेज लोग भी चन्द्रमा और मन का घनिष्ठ सम्बन्ध मानते हैं। चन्द्रमा को अग्रेजी मे "ल्यूना" कहते हैं। 'ल्यूनर' का अर्थ होता है चन्द्रमा-सम्बन्धी। इसी शब्द से "ल्यूनेसी" बना है जिसका अर्थ होता है पागलपन। जब दिमाग या मन खराब हो जाता है तब मनुष्य पागल हो जाता है। इसी कारण अन्य सब विचार छोड़कर केवल जन्म-राशि से (जन्म के समय जहाँ चन्द्रमा था) गोचर-विचार भारतवर्ष में बहुत प्रचलित है। जहाँ जन्म-राशि मालूम न हो वहाँ नाम के प्रथम अक्षर से ही विचार करना चाहिए। किस अक्षर से कौनसी राशि यह २५ वे पृष्ठ पर देखिए।

विवाहे सर्वमाङ्गल्ये यात्रादौ ग्रहगोचरे।
जन्मराशेः प्रधानत्वं नामराशि न चिन्तयेत ॥

("ज्योतिनिबन्ध"–पृष्ठ ६६)

गोचर-विचार मे प्रधानता जन्म-राशि की ही है। अब सूर्यादि नौ ग्रह गोचर-वश (अर्थात् चन्द्र राशि से गिनने पर इस समय कौनसी राशि पर हैं) क्या प्रभाव उत्पन्न करते हैं यह बताया जाता है।

मान लीजिए किसी की जन्म-राशि कर्क है और १७ जुलाई १९५८ को सूर्य कर्क मे है, चन्द्रमा कर्क में, मगल मेष में, बुध कर्क में, बृहस्पति कन्या मे, शुक्र मिथुन में, शनि वृश्चिक मे, राहु तुला में और केतु मेष मे हो तो गोचर-विचार से भिन्न-भिन्न ग्रहों के निम्नलिखित स्थान हुए।

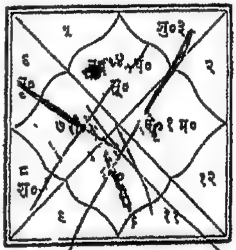

'४' से प्रारम्भ इसलिए किया गया है कि जिस मनुष्य की जन्म-राशि से गोचर का शुभाशुभ विचार कर रहे हैं उसकी जन्मराशि कर्क है और मेष, वृष, मिथुन, कर्क इस प्रकार गणना करने से कर्क की संख्या ४ आती है। इस प्रकार गोचर कुंडली बनाने से यह ज्ञात होता है कि १७ जुलाई, १९५८ को कर्क राशि वाले व्यक्ति के लिए सूर्य प्रथम स्थान मे, चन्द्रमा प्रथम स्थान मे, मगल दशम स्थान मे, बुध प्रथम स्थान मे, बृहस्पति तृतीय स्थान मे, शुक्र द्वादश स्थान मे, शनि पचम स्थान मे, राहु चतुर्थ स्थान मे और केतु दशम स्थान मे है।

जन्म-राशि से गिनने पर प्रत्येक ग्रह किस स्थान पर क्या प्रभाव दिखाता है यह नीचे बताया जाता है

सूर्य

(१) स्थान नाश, यात्रा, (२) हानि, भय (३) सुख लक्ष्मी-प्राप्ति (४) रोग भय, मान नाश (५) दीनता, अर्थनाश

(६) शत्रु नाश, सुख (७) गमन, धन हानि, (८)भय, रोग (९) कान्तिक्षय, पापवृद्धि (१०) सुख, कर्मसिद्धि (कार्य में सफलता) (११) धन प्राप्ति, सुख (१२) द्रव्य नाश, पीड़ा, भय—ये प्रभाव उत्पन्न करता है।

: चन्द्रमा :

(१) पुष्टि, लाभ (२) धन-लाभ, सुख (३) द्रव्य-प्राप्ति, सुख (४) रोग, धन-नाश, मान-नाश (५) सुख, कार्यनाश (६) वित्त (धन) लाभ (७) द्रव्य प्राप्ति, सुख (८) क्लेश, भय, मृत्यु (९) मान, नृप भय (१०) शुभ, सुख (११)अनेक प्रकार के लाभ (१२) रोग धन नाश—ये प्रभाव चन्द्रमा उत्पन्न करता है।

: मंगल :

(१) भय, पीड़ा (२) धन नाश, नेत्र पीड़ा (३) सुख, लक्ष्मी-प्राप्ति (४) कष्ट, शत्रु से भय (५) रोग भय, धन नाश (६) सुख, शत्रुओ पर विजय, धन लाभ (७) शरीर की कृशता, धन-नाश (८) भय, पाप-वृद्धि (९) रोग भय (१०) कष्ट, दुःख (११) लाभ, सुख प्राप्ति (१२) रोग, शोक, व्यय—मगल ये प्रभाव उत्पन्न करता है।

: बुध :

(१) बधन, भय (२) धन लाभ (३) शत्रु से भय (४) धन-प्राप्ति, सुख (५) रोग, शोक (६) लाभ स्थिति (७) झगड़ा, पीडा, भय (८) लाभ (९) रोग भय, धन नाश (१०) सुख, सुभोग (११) शुभ, धनागम १२ शोक, धननाश—बुध ये प्रभाव करता है।

---

*टिप्पणी—गोचर प्रकरण में जहाँ-जहाँ मृत्यु शब्द आवे उसका अर्थ वास्तविक मृत्यु न समझकर शरीर-पीडा, चिन्ता, उद्वेग, मानहानि, धनहानि, सकट, असफलता आदि समझना चाहिए।

बृहस्पति

(१) कष्ट, भय, (२) धन लाभ, समृद्धि, (३) भय, पीड़ा, रोग (४) शत्रु वृद्धि, धन-हानि, भय (५) लाभ, सुख (६) रोग, शोक (७) सम्मान, सुख (८) मृत्यु, भय, रोग, पीड़ा (९) सुख, सम्मान (१०) अति दीनता (मानसिक या आर्थिक) (११) सम्मान, सौख्य, धन प्राप्ति (१२) देह-पीड़ा, भय।

जन्म-राशि से गिनने पर जिस स्थान पर बृहस्पति जाता है उस स्थान के अनुसार उपर्युक्त फल करता है।

: शुक्र

(१) सुख, शत्रु नाश (२) धन लाभ, सुख (३) धन लाभ, सुख (४) धनागम (५) लाभ, सन्तान सुख (६) शत्रु-वृद्धि, पीड़ा (७) शोक, अति भय (८) लाभ (९) सुख लाभ, वस्त्र-लाभ (१०) पीड़ा, धर्म नाश, असुख (कष्ट) (११) सुख, वित्त लाभ (१२) लाभ, धनागम। जन्म-राशि से गिनने पर शुक्र स्थानवश उपर्युक्त फल देता है।

: शनि :

(१) सर्वनाश, पीड़ा, भय, स्थान-हानि (२) क्लेश, शोक, धन-हानि, (३) सुख, धनलाभ, (४) पीड़ा, भय, शत्रु-वृद्धि, स्थान नाश (५) धन नाश, पुत्र कष्ट, उद्वेग (६) सुख, धन लाभ (७) दोष, पीड़ा, भय, स्त्री-सुख मे हानि (८) पीड़ा, भय, शत्रु वृद्धि (९) धन नाश, पाप (१०) वैमनस्य, धन हानि (११) धन लाभ, सुख, (१२) क्लेश।

जब जन्म-राशि से द्वादश, प्रथम (जन्म-राशि मे) तथा जन्म-राशि से द्वितीय—इन तीनो राशियो में शनि रहता है उस समय को साढे साती शनि कहते हैं। इसका कारण यह है कि शनि प्रत्येक राशि मे करीब ढाई वर्ष रहता है और ऊपर जो साढे साती की तीन राशि गिनाई गई हैं इन तीनों को पार करने

में शनि को करीब २½+२½ +२½=७½ साढे सात वर्ष लगते हैं। यह साढे सात वर्ष का समय समान रूप से कष्टप्रद नही होता किन्तु माता-पिता, स्त्री-पति, पुत्र-पुत्री, भ्राता-भगिनी आदि किसी प्रिय जन की मृत्यु या तो साढ़े साती में होती है या मनुष्य घोर संकट, सर्वनाश, दिवाला आदि का शिकार होता है या अति रुग्ण रहता है, पद हानि होती है, नौकरी छूटती है, घोर अर्थ-सकट का सामना करना पडता है। एलेन लिओ ने अपनी एक पुस्तक में लिखा है कि जब किसी कुटुम्व में कई व्यक्तियों को एक साथ ज्योतिष के मत से कष्टप्रद समय आवे तब प्रायः बहुत विपत्ति का सामना करना पडता है। हमारे अनुभव में भी यही आया है कि जब एक कुटुम्ब में अनेक व्यक्तियों की एक राशि होती है तब उस कुटुम्ब के अधिपति को भी कष्ट उठाना पड़ता है।

राहु

राहु जन्म-राशि से गिनने पर गोचरवश निम्नलिखित प्रभाव दिखाताहै

(१) हानि, कष्ट (२) निर्धनता, व्यय (३) निरोगता, धन-प्र्प्ति(४) शोक, वैर (५) हानि, शोक (६) सुख, लक्ष्मी-प्राप्ति, (७)हानि, कलह (८) रोग, भय (९) पाप कर्म (१०) वैर, सुख (११) सुख, धन प्राप्ति (१२) हानि, पीड़ा।

केतु :

(१) हानि रोग, भय (२)वैर, वित्तनाश!(३) सुख, लाभ, वृद्धि (४) भय, पीड़ा(५) शोक, धन नाश (६) सुख, धन-प्राप्ति (७) दुर्गति, पीडा, (८) पीड़ा, भय, हानि (९) पाप, दीनता (मानसिक या आर्थिक) (१०) भय, शोक (११) ख्याति, यश, धन-लाभ (१२). पीड़ा और वैर।

चन्द्रमा से (जन्म कुण्डली मे जिस राशि में चन्द्रमा हो उससे) गिनने पर ––जिस स्थान पर केतु हो उस स्थानवश केतु का उपर्युक्त गोचर फल होता है।

जब गोचर का विचार किया जावे तब चन्द्र राशि से तो गिनना ही चाहिए किन्तु जन्म-लग्न से भी यह विचार कर लेना चाहिए कि किस स्थान में ग्रह जा रहा है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित कुंडली पर दृष्टि डालिए।

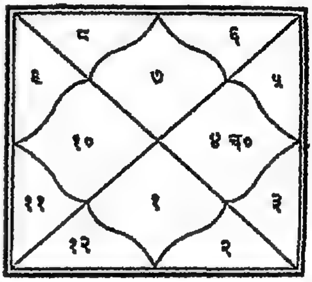

इस जन्म-कुंडली मे जब गोचरवश शनि कर्क राशि में आवेगा तो चन्द्रमा से प्रथम राशि में रहने के कारण "सर्वनाश, पीड़ा, भय, स्थान हानि" आदि कष्ट-फल करेगा। इस जातक की कुंडली में कर्क राशि दशम में है जिससे पिता का विचार किया जाता है। इस कारण जब इस व्यक्ति के चन्द्रमा से प्रथम और लग्न से दशम (पिता का स्थान) पर शनि गोचरवश आया तब इसके पिता की तेरह वर्ष की लगी हुई अच्छी नोकरी छूट गई। कहने का तात्पर्य यह है कि चन्द्र राशि से गोचरवश ग्रह कहाँ जा रहा है यह निर्णय करने के उपरान्त यह भी देख लेना चाहिए कि जन्म-कुण्डली के किस भाव मे जा रहा है। दोनो का सामंजस्य कर फल कहना उचित है।

वेध विचार

जिन-जिन ज्योतिष-ग्रथो में गोचर-विचार दिए हैं उनमे वेध-विचार भी दिए हैं। वेध-विचार का अर्थ है कि "गोचर फल" के भाव को रोकना। उदाहरण के लिए यदि नल को खोल दिया जाय तो पानी गिरना चाहिए किन्तु यदि नल के मुँह में कसकर

कपड़ा ठूँस दिया जाय तो पानी नीचे नही गिरेगा। जब कोई एक प्रभाव उत्पन्न होने के लिए कारण होते हैं तब यह भी देख लेना चाहिये कि उस उत्पन्न करने वाले कारण के कोई अन्य बाधक कारण तो नही हैं। इसे वेध कहते हैं।

नीचे प्रत्येक ग्रह का शुभस्थान और वेध-स्थान दिया जाता है।

सूर्य	शुभ स्थान	३, ६, १०, ११
(क्रमश)	वेध स्थान	६, १२, ४, ५
कृष्ण पक्ष का		
चन्द्रमा	शुभ स्थान	१, ३, ६, ७, १०, ११
(क्रमश)	वेध स्थान	५, ९, १२, २, ४, ८
शुक्ल पक्ष का		
चन्द्रमा	शुभ स्थान	२, ५, ६,
(क्रमश)	वेध स्थान	१, ६, १०,
मंगल	शुभ स्थान	३, ६, ११,
(क्रमश)	वेध स्थान	१२, ६, ५
बुध :	शुभ स्थान	२, ४, ६, ८, १०, ११
(क्रमश)	वेध स्थान	५, ३, ६, १, ८, १२
बृहस्पति	शुभ स्थान	२, ५, ७, ६, ११
(क्रमश)	वेध स्थान	१२, ४, ३, १०, ८
शुक्र	शुभ स्थान	१, २, ३, ४, ५, ८, ६, ११, १२
(क्रमश)	वेध स्थान	८, ७, १, १०, ६, ५, ११, ३, ६
शनि	शुभ स्थान	३, ६, ११
(क्रमश)	वेध स्थान	१२, ६, ५
राहु	शुभ स्थान	३, ६, ११
(क्रमश)	वेध स्थान	१२, ६, ५
केतु	शुभ स्थान	३, ६, ११
(क्रमश)	वेध स्थान	१२, ६, ५

साधारणत. 'गोचर' स्थान में कोई ग्रह हो और 'वेध' स्थान में भी कोई ग्रह हो तो 'गोचर' फल में रुकावट पैदा करता है।

वेध-विचार किस प्रकार किया जाता है यह अब समझाया जाता है। सूर्य जन्मराशि से तृतीय मे गोचरवश शुभ फल देता है किन्तु यदि जन्म-राशि से नवम में (देखिये सूर्य के शुभ स्थान ३ के नीचे ९ की संख्या पृष्ठ १६२ पर दी गई है।) शनि के अतिरिक्त और कोई ग्रह हो तो सूर्य का जो गोचरवश शुभ फल कहा गया है वह नहीं होगा। इसी प्रकार चन्द्रमा से (जन्म-राशि से) छठे सूर्य हो तो शुभ फल होना चाहिए किन्तु यदि जन्म-राशि से द्वादश राशि मे शनि के अतिरिक्त कोई ग्रह हो तो सूर्य का गोचर-फल नही होगा।

सूर्य पिता है शनि उनका पुत्र। चन्द्रमा पिता है बुध उसका पुत्र। पिता-पुत्र में वेध नही होता। इसका तात्पर्य यह है कि जन्म-राशि से यदि गोचरवश सूर्य तृतीय जा रहा हो और जन्म-राशि से नवम मे यदि गोचरवश शनि हो तो सूर्य के गोचर फल को नहीं रोकेगा। अब एक अन्य उदाहरण लीजिए। बुध जन्म-राशि से चतुर्थ स्थान मे गोचरवश शुभ फल करता है। किंतु चतुर्थ शुभ स्थान का वेध स्थान तृतीय है। इसलिए चन्द्रमा के अतिरिक्त (चन्द्रमा इसलिए नहीं है कि चन्द्रमा बुध का पिता है और पिता-पुत्र का वेध नही होता) कोई ग्रह यदि जन्म-राशि से तृतीय में हो तो बुध का शुभ फल नही होगा

पृष्ठ १६२ पर शुभ स्थान तथा वेध स्थान दिये गये हैं। उनको क्रमश. समझना चाहिए। उदाहरण के लिए यदि बृहस्पति के शुभ स्थान और वेध स्थान का विचार करना है तो द्वितीय शुभ स्थान का वेध स्थान द्वादश, पञ्चम का चतुर्थ, सप्तम का तृतीय, नवम का दशम और एकादश का अष्टम समझना चाहिए।

"स्वजन्मराशेरिह वेधमाहुः
अन्ये ग्रहाधिष्ठितराशितः सः"

(मुहूर्त चिन्तामणि ४–५)

बहुत से विद्वान् वेध का विचार ही नही करते केवल गोचर का विचार करते हैं।

विपरीत वेध-विचार

जिस प्रकार गोचर के शुभ फल का बाधक वेध-स्थान-स्थित ग्रह होता है उसी प्रकार जब कोई ग्रह जन्म-राशि से अशुभ स्थान में गोचरवश हो और अशुभ फल कर रहा हो किंतु विपरीत वेध-स्थान में कोई अन्य ग्रह हो (यहाँ भी पिता-पुत्र का वेध नही होता इस कारण पिता-पुत्र के अतिरिक्त अन्य कोई ग्रह विपरीत वेध-स्थान में होना चाहिए) तो गोचरवश जो अशुभ फल होने को होता है उसमें बाधा हो जाती है अर्थात् अशुभ फल नही होता।

नीचे ग्रहों के अशुभ स्थान और उनके क्रमश. वेध स्थान दिये जाते है:

सूर्य : (चन्द्र राशि से गिनने पर) शुभ स्थान ४–५–६ –११
(तात्कालिक सूर्य राशि से गिनने पर) वेध स्थान ३–६–१०–११

चन्द्रमा .(जन्म राशि से गिनने पर शुभ स्थान १–४–५–८–६–१२
(कृष्णपक्ष) (तात्कालिक चन्द्रराशि से) वेध स्थान २–३–६–७–१०–११

नोट—ये शुभ स्थान तथा वेध स्थान—दोनों चंद्रमा से गिनने उपयुक्त । किन्तु नारद, कश्यप, गुरु आदि विविध आचार्यो में मतभेद है। किसी-किसी का मत है कि शुभ स्थान तो चन्द्र राशि से गिने किन्तु वेध स्थान—जिस ग्रह का गोचरवश विचार किया जा रहा हो वह ग्रह फल विचार के समय जिस राशि में हो उस राशि से वेध स्थान गिनना चाहिए, किन्तु यह मत अधिक मान्य नहीं है। विशेष जिज्ञासु निम्नलिखित ग्रन्थ* देखें।

* १. मुहूर्त्त चिन्तामणि।
२ पीयूष धारा टीका, पृष्ठ १४०—१५०।

चंद्रमा :	(जन्म राशि से गिनने पर) शुभ स्थान	४–६–८
(शुक्लपक्ष) :	(तात्कालिक चन्द्र राशि से वेध स्थान	२–५–९
मंगल :	(जन्म राशि से गिनने पर) शुभ स्थान	५–९–१२
	(गोचरस्थ मगल से गिनने पर) वेध स्थान	३–६–११
बुध .	(जन्म राशि से गिनने पर) शुभ स्थान	३–६–७–९ –१२
	(गोचरस्थ बुध से गिनने पर) वेध स्थान	२–५–८ १०–११
बृहस्पति :	(जन्म राशि से गिनने पर) शुभ स्थान	३–४–१०–१२
	(गोचरस्थ गुरु से गिनने पर) वेध स्थान	२–५–९–११
शुक्र :	(जन्म राशि से गिनने पर) शुभ स्थान	६–७–१०
	(गोचरस्थ शुक्र से गिनने पर) वेध स्थान	२–५–९
शनि :	(जन्म राशि से गिनने पर) शुभ स्थान	५–९–१२
	(गोचरस्थ शनि से गिनने पर) वेध स्थान	३–६–११
राहु :	(जन्म राशि से गिनने पर) शुभ स्थान	५–९–१२
	(गोचरस्थ राहु से गिनने पर) वेध स्थान	३–६–११
केतु .	(जन्म राशि से गिनने पर) शुभ स्थान	५–९–१२
	(गोचरस्थ राहु से गिनने पर) वेध स्थान	३–६–११

"दुष्टोऽपि खेटो विपरीतवेधात् शुभो ....."

विपरीत वेध का विचार करने में विशेपता यह है कि जन्म-कालीन चन्द्र राशि (जन्म-कुण्डली मे जिस राशि में चन्द्रमा हो) उस राशि से तो गोचरस्थ ग्रह* गिना जाता है और विपरीत वेध-स्थान जन्मराशि से न गिनकर, गोचरस्थ ग्रह की राशि से गिनते हैं। उदाहरण—किसी की जन्मराशि कर्क है। मिथुन राशि मे जब गोचरवश बृहस्पति आया तव उसे जन्मराशि से द्वादश होने के कारण अशुभ फल करेगा। किंतु यदि—बृहस्पति का विचार कर

* जिस ग्रह का गोचरवश शुभाशुभ विचार कर रहे हों।

रहे हं इसलिए यह गोचरस्थ ग्रह है। यह मिथुन राशि में है इसलिए मिथुन राशि से एकादश अर्थात् मेप राशि में कोई ग्रह हो तो विपरीत वेध के सिद्धान्त के अनुसार अशुभ गुरु भी शुभ फल करेगा।

गोचर फलादेश में कुछ विशेष सिद्धान्त

गोचर फल, बेध-विचार तथा विपरीत वेध-विचार बताने के वाद अब गोचर फलादेश के सम्बन्ध में कुछ विशेष विचार बताये जाते हैं.

(१) जो ग्रह जन्म-कुण्डली मे अशुभ भवन का स्वामी हो या दुःस्थान मे पडा हो या दुर्बल, नीच राशि या नीच नवाश मे हो वह गोचर-विचार से शुभ स्थान में होते हुए भी विशेष शुभ फल नही करता।

(२) जिस समय गोचर का विचार किया जा रहा हो उस समय भी यदि वह ग्रह नीच राशि, नीच नवाश अपने शत्रु से अवलोकित, अस्तगत, क्रूर ग्रहो से युक्त हो तो शुभ भाव मे होने पर भी विशेष शुभ फल करने मे अक्षम होता है। उपर्युक्त (१) तथा (२) मे जो सिद्धान्त दिया गया है उसको एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जाता है। मान लीजिए आपका कोई मित्र है। आपके साथ सद्भाव रखता है किन्तु वह स्वय निर्धन और दुर्बल है या दुष्टो से घिरा हुआ है (पापाक्रान्त पापदृष्ट है) तो भलाई की ओर प्रवृत्त होने पर भी वह आपकी क्या सहायता कर सकता है?

(३) ऊपर (१) या (२) मे जो कहा गया है उससे विपरीत जिस ग्रह का गोचर मे विचार कर रहे हैं वह जन्म-कुण्डली मे शुभ भवन का स्वामी, शुभस्थान में उच्च, स्वराशि या मित्र-राशि मे है और गोचर के समय भी बलवान् (उच्च या स्वराशि मे) शभग्रह-युत शुभग्रह वीक्षित है तो वह पूर्ण शुभफल करेगा। यदि कोई

राजा, महाराजा या करोड़पति स्वयं अत्यन्त धनी आप पर कृपालु हो तो विशेष चमत्कारिक फल उत्पन्न हो सकता है।

(४) यदि गोचरवश कोई ग्रह अशुभ फलकारक हो किंतु जन्म-कुण्डली में यह योग कारक हो, शुभ भाव का स्वामी, शुभ भाव मे स्थित, लग्नेश का मित्र, षड्वर्ग से बलवान हो तो वह विशेष अशुभ फल नही करता।

(५) गोचर के समय भी यदि वह ग्रह स्वराशि या उच्च राशि में शुभ ग्रहों से वीक्षित हो तो विशेष अशुभ फल नही करता।

(६) किंतु ऊपर (४) और (५) मे जो स्थिति बतायी गयी है उससे विपरीत—जन्म-कुण्डली तथा गोचर के समय कोई ग्रह नीच राशि, शत्रु राशि, नीच नवांश मे या अस्तगत या क्रूर ग्रहो से युतव वीक्षित हो तो घोर अशुभ फल करता है

सौम्येक्षितेऽनिष्टफलः शुभदः पापवीक्षितः।
निष्फलौ तौ ग्रहौ स्वेन शत्रुणा चावलोकितः॥

(मु० चि० पीयूषधरा टीका, पृ० १४४)

(७) जिस जन्म-कुण्डली में गोचर का विचार किया जा रहा है। उसमें गोचरस्थ राशि मे ग्रह हैं या नही यह देखिये।

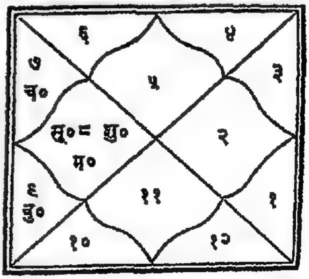

उदाहरण के लिए साथ की कुण्डली में वृश्चिक राशि मे सूर्य मंगल व शुक्र हैं। सूर्य लग्नेश है। मंगल यद्यपि क्रूर ग्रह है तथापि सिंह लग्न वालो के लिए चतुर्थ और नवम का स्वामी होने के कारण योगकारक और शुभ है। शुक्र राज्येश और तृतीयेश है। इसलिए यदि तुला राशि से द्वितीय वृश्चिक राशि मे जब बृहस्पति जावेगा तब जन्म-कुण्डली स्थित अन्य ग्रहो के ऊपर जाने से विशेष शुभ फल

करेगा और शनि जब वृश्चिक में जावेगा तब—सूर्य, मगल आदि पर गुजरने पर विशेष अशुभ फल करेगा।

(८) जब ग्रह गोचरवश शुभ जा रहा हो और अन्य भाव-स्थित (जन्म-कुण्डली में) ग्रह से अंशात्मक-दृष्टि योग करे तब विशेष शुभ फल करता है।

उपर्युक्त जन्म-कुण्डली में यदि बुध के १७° हों तो गोचरवश जब मिथुन राशि में बृहस्पति १०° का होगा तब बुध को अशात्मक पूर्ण दृष्टि से देखेगा। चन्द्र राशि से नवम बृहस्पति शुभकारक तो है ही, जब लाभेश धनेश बुध को पूर्ण दृष्टि से देखेगा तब विशेष धनागम होगा।

(९) जैसे ऊपर (८) में अशात्मक दृष्टियोग के प्रभाव से किस समय विशेष शुभ फल् होगा यह बताया गया है उसी प्रकार अशात्मक दृष्टि योग से अशुभ फल भी होता है। उपर्युक्त कु डली में मान लीजिये सूर्य के २१° हैं। जब गोचरवश शनि वृष राशि मे जायेगा तब चन्द्रमा से अष्टम होने से अशुभ फल करेगा। अब जिस समय वृप राशि में गोचरवश शनि २१ अश का होगा तब वृश्चिक राशि स्थित (जन्म-कुण्डली मे) सूर्य को अशात्मक पूर्ण दृष्टि से देखेगा। इस कारण लग्न-सम्बन्धी (क्योकि सूर्य लग्न का स्वामी है) तथा सूर्य जिन-जिन का कारक है (आत्म प्रभाव, सम्मान, पिता, शक्ति आदि) उन-उन बातों सम्बन्धी कष्ट या सकट उपस्थित करेगा।

(१०) गोचर मे ग्रह मार्गी से जब वक्री होता है या वक्री से मार्गी होता है तब विशेष प्रभाव दिखाता है।

(११) जब ग्रह अग्रिम राशि मे चला जाता है और थोड़े अर्से के लिए वक्री होकर पिछली राशि मे आ जाता है तब भी वह आगे की राशि का ही प्रभाव दिखाता रहता है।

(१२) जिसके जन्म-नक्षत्र पर (जन्म के समय चन्द्रमा जिस

नक्षत्र मे हो) ग्रहण पड़ता है (सूर्य का ग्रहण हो तो सूर्य उस नक्षत्र मे हो—चन्द्रमा का ग्रहण हो तो चन्द्रमा ग्रहण के समय उस नक्षत्र मे हो) उस व्यक्ति को बहुत पीडा उठानी पडती है।

(१३) गोचर-विचार मे कौन-कौनसे ग्रह राशि मे प्रवेश करते ही फल दिखाते हैं—कौन-कौनसे ग्रह राशि के मध्य भाग में और कौनसे ग्रह राशि के अन्तिम भाग में—इस सम्बन्ध में प्राचीन मत यह है कि यदि राशि (३० अंशो को) तीन भागो मे विभक्त किया जावे तो सूर्य और मगल राशि मे घुसते ही अर्थात् प्रथम दस अंशो में ही अपना फल दिखाते ह। वृहस्पति और शुक्र राशि के मध्य भाग में अर्थात् १० अंश से २० अंश तक और चन्द्रमा तथा शनि राशि के अन्तिम तृतीयांश मे—अर्थात् २० अंश से ३० अंश तक। बुध समस्त राशियो मे भ्रमण करता हुआ अपना फल दिखाता रहता है। अर्थात् इसके लिए राशि का कोई विशेष भाग, जहाँ यह विशेष फल दिखावे निश्चित नही है। प्राय: यह मत 'वृहज्जातक', 'सारावली', 'होरामकरन्द', 'फलदीपिका', 'जातक-पारिजात' आदि सभी में दिया गया है। अन्य ग्रंथ राहु का गोचरवश कब विशेष प्रभाव दिखाता है इसका उल्लेख नही करते किन्तु 'फल दीपिका' के अनुसार राहु समस्त राशियों मे गोचरवश अपना प्रभाव दिखाता रहता है। 'काल प्रकाशिका' का मत सूर्य, मगल, वृहस्पति, शुक्र और शनि के सम्बन्ध मे तो वही है जो अन्य ग्रंथो मे दिया गया है, किन्तु चन्द्रमा तथा राहु के सम्बध मे 'काल प्रकाशिका' का भिन्न मत है :

सूर्यारौ फलदावादौ गुरुशुक्रौ तु मध्यगौ।
मन्दाही फलदावन्त्ये बुधचद्रौ तु सर्वदा ॥

अर्थात् सूर्य और मगल आदि मे फल दिखाते हैं। वृहस्पति और शुक्र मध्य में, शनि और राहु अंत में, बुध और चद्र सर्वदा।

संक्रांतिवश गोचर-विचार

भारतीय ज्योतिष में यह भी विचार किया गया है कि कौन-सा सौर मास (सूर्य की एक सङ्क्रान्ति से दूसरी सङ्क्रान्ति तक) कैसा जावेगा। यह जानने के लिए एक तो जिस मनुष्य के लिए विचार किया जा रहा हो उसका जन्म-नक्षत्र जानना आवश्यक है और जिस समय सङ्क्रान्ति हो (सूर्य एक राशि से दूसरी राशि में गोचरवश जा रहा हो) उस समय चन्द्रमा किस नक्षत्र मे है यह ज्ञात होना चाहिए।

सूर्य-सङ्क्रान्ति के समय चन्द्रमा जिस नक्षत्र मे हो उसके पहले के नक्षत्र से गिनना प्रारभ करना चाहिए और जिस का विचार करना हो उसके जन्म-नक्षत्र तक गिने और देखे कि कौनसी सख्या आई।

(क) यदि एक से ३ तक सख्या आवे तो उस महीने में यात्रा होती है।

(ख) यदि ४ से ९ तक सख्या आवे तो सुख-प्राप्ति।

(ग) यदि १० से १२ तक सख्या आवे तो पीड़ा।

(घ) यदि १३ से १८ तक सख्या आवे तो वस्त्र-प्राप्ति अर्थात् शुभ समय।

(ड) यदि १९ से २१ तक सख्या आवे तो धन-हानि।

(च) यदि २२ से २७ तक सख्या आवे तो धनागम।

उदाहरण—तारीख १६ जुलाई, १९५८ को दोपहर के १ बज कर २८ मिनिट पर (भारतीय स्टैन्डर्ड टाइम) सूर्य ने मिथुन राशि से निष्क्रमण कर कर्क राशि मे प्रवेश किया। उस समय चन्द्रमा पुनर्वसु नक्षत्र में था। अब हमे किसी ऐसे सज्जन के लिए विचार करना है जिसका जन्म-नक्षत्र पुष्य है तो, सङ्क्रान्ति के समय चन्द्रमा पुनर्वसु नक्षत्र में था इसलिए पुनर्वसु से पहले आर्द्रा नक्षत्र से गणना

श्वेत पुष्प, सफेद बैल, घृत, शख, मोती, कर्पूर, स्फटिक, सीपी।

जब चन्द्रमा की पूज्य महादशा या अन्तर्दशा हो तब इनमे से किसी-न-किसी वस्तु का (यदि हो सके तो प्रति सोमवार को) दान करता रहे। इसके अतिरिक्त पचगव्य से स्नान (पचगव्य को पानी में मिलाकर उसे छानकर) तथा शख या सीपी के जल से स्वय को जलसिञ्चन करना भी उत्तम है।

मंगल से सम्बन्धित दान की वस्तुएँ निम्नलिखित हैं। पृथ्वी (भूमि), मूँगा, सुवर्ण, ताँबा, गेहूँ, लाल वृषभ, गुड, रक्त चन्दन, रक्त वस्त्र, केसर, कस्तूरी, मसूर, घी। ब्राह्मणो को मंगलवार को भोजन कराना चाहिए।

स्नान के लिए निम्न पदार्थ विहित हैं·

रक्त चदन, विल्व की छाल, सिगरफ, माल कगनी, मौल्सिरी, धमनी।

बुध ग्रह-जनित पीडा के लिए निम्नलिखित पदार्थ श्रेयस्कर हैं।

दान—रत्न, सुवर्ण, पन्ना, हरित वस्त्र, काँसे के बरतन, हाथीदाँत, मूँगा, सब पुष्प, कर्पूर, विविध फल, तुलसी के वृक्ष, षट्रस भोजन, खांड।

इन वस्तुओ के अतिरिक्त जल में गाय का गोबर, अक्षत, फल, गोरोचन, मधु मिलाकर उसे सुवर्ण तथा मोती की अगूठी पहन हाथ से उस जल को चलाकर, छानकर स्नान करने से बुध-जनित पीडा की शाति होती है।

तुलसीपत्र के सेवन करने से बुध-शान्ति होनी चाहिए ऐसा हमारा विचार है। दक्षिण भारत के एक ज्ञानवयोवृद्ध ज्योतिषी ने हमें बताया कि 'मरवे' (जिसकी गध से सर्प नही आता है) के पत्ते से स्नान करने से (उसे पानी मे पीसकर उसका अनुलेपन कर स्नान करने से) बुध का दोष दूर होता है।

बृहस्पति से सम्बधित दान की वस्तुएँ निम्नलिखित हैं:

पुखराज, सुवर्ण, भूमि, नमक, चीनी, हल्दी, घी, चना इत्यादि पीले अन्न, शहद, छतरी, पुस्तक, पीले वस्त्र, पीले पुष्प, पीले फल, काँसा, घोड़ा।

स्नान के लिए मालती पुष्प, मुलेठी, मधु, (शहद), हल्दी आदि उपयुक्त हैं।

वृहस्पति की शान्ति के लिए फलदार वृक्ष लगवाना तथा फलों का दान करना विशेष उपयुक्त है।

शुक्र—जिनको शुक्र की अनिष्ट दशा या अन्तर्दशा हो उन्हे निम्नलिखित वस्तुएं जहाँ तक सम्भव हो दान करनी चाहिए।

सुवर्ण, हीरा, चाँदी, सफेद चन्दन, चावल, सफेद एवम् फूलदार (सफेद जमीन पर फूल) वस्त्र, रेशमी वस्त्र, कपूर, इत्र, फुलेल, सुगन्धित पदार्थ, चीनी, सवत्सा गाय, भूमि, मिश्री, दूध, घी, दही, सफेद घोड़ा, इलायची।

जिनको शुक्र ग्रह की पीड़ा हो उन्हे सफेद वस्त्र पहनने चाहिए तथा इत्र-फुलेल का विशेष इस्तेमाल करना चाहिए। केसर, इलायची, मैन्सिल आदि पदार्थों से मिश्रित जल से स्नान करना भी श्रेयस्कर है।

शनि—जिनको अनिष्ट शनि की दशा या अन्तर्दशा हो या जिन्हे गोचरवश अनिष्ट शनि हो उन्हे निम्नलिखित वस्तुएं यथा-सम्भव दान करनी उचित हैं।

नीलम, लोहा, सुवर्ण, तिल, उडद, कुलथी, कस्तूरी, काले वस्त्र, कम्बल, काली भैंस, काली गाय, जूते, काले पुष्प, तेल आदि।

प्राय: शनि का दान डाकोत (भराड़े) लेते हैं। इन वस्तुओं के अतिरिक्त तेल मालिश तथा सुरमा लगाना भी लाभप्रद होताहै।

निम्नलिखित वस्तुओं से स्नान भी पीडा में शांति करता है।

सौंफ, खिल्ला, धमनी, कस्तूरी, मुत्थरा, लोबान।

राहु—राहु के दान के लिए निम्नलिखित वस्तु विहित हैं

सुवर्ण, सप्तधान्य (उड़द, मूँग, चना, जौ, चावल, गेहूँ, कगनी), उड़द, नीला वस्त्र, लोहा, तिल, कम्बल, शूर्प (छाजला), तिल भरा हुआ ताँबे का पात्र, तलवार, सोने का सर्प, सीसा, सरसों, घोड़ा।

जिन व्यक्तियों को शनि, राहु या केतु की पीड़ा हो उन्हे नित्य साय-प्रातः लोबान की धूनी देनी उचित है। हाथीदाँत की वस्तुओं का व्यवहार तथा जिस जल से स्नान करे उसमें हाथीदाँत डालकर रखना भी उत्तम है।

मुत्थरा तथा तिल-पत्र जल में मिलाकर स्नान करना भी उत्तम है।

केतु—दान के लिए निम्नलिखित पदार्थ उत्तम हैं :

वैदूर्य मणि (लहसुनिया), सुवर्ण, लोहा, बकरा, सप्तधान्य, शस्त्र, तिल, तेल, उडद, कम्बल, कस्तूरी।

जिसको केतु की बहुत पीडा हो उसको बकरे के मूत्र (पेशाब) से स्नान कराना भी उचित है। हमारा विश्वास है कि जिस टी० बी० (राजयक्ष्मा) के रोगी को केतु के प्रभाव से जीर्ण ज्वर का रोग हो, उसे यदि वकरे के मूत्र से स्नान कराया जाय, बकरी का दूध पिलाया जाय और नियमपूर्वक तीन-तीन घन्टे पर लोवान की धूप दी जाय तो वह अवश्य अच्छा हो सकता है। साथ ही छिन्न-मस्ता देवी की आराधना तथा केतु का जप भी आवश्यक है।

'तन्त्रसार' में सब ग्रहो के तान्त्रिक मन्त्र दिये गये हैं। 'वैदिक मन्त्र सहिता' में भी हैं। प्रत्येक ग्रह की जपसख्या निम्नलिखित है।

सूर्य–७०००; चन्द्रमा–११,०००, मगल–१०,०००; बुध–६०००; गुरु—१६,०००; शुक्र–१६,०००, शनि–२३,०००; राहु–१८,०००, केतु–१७,०००.

सूर्य का होम–अर्क (आक); चन्द्रमा का होम–पलाश की

लकड़ी, मगल का खदिर(खैर); बुध का अपामार्ग (चिचिडा) की समिध (हवन मे जो लकडी के टुकडे जलाये जाते हैं), बृहस्पति के हवन के लिए पीपल को लकड़ी और शुक्र के हवन के लिए गूलर की लकडी काम मे लाये। शनि-मत्र से हवन करना हो तो शमी (खिजरे की लकडी) उपयुक्त है। राहु के लिए दूर्वा (दूव) और केतू के लिए कुश उपयुक्त है।

नवो ग्रहो की शान्ति के लिए जो स्नानार्थ भिन्न-भिन्न पदार्थ बताये गये हैं उनके अतिरिक्त एक विधान और है। किसी भी ग्रह की पीड़ा हो तो उसका दान करे और निम्नलिखित वस्तुओ को जल मे मिलाकर छने हुए जल से स्नान करे।

सरसो, देवदारु, फलदीप, लोध्र, सरपुखा, तीर्थो का जल, बानलावा, करील।

जिस ग्रह का जो रत्न या धातु बताया गया है वह शरीर पर धारण करना भी उपयुक्त है। जैसे सूर्य की प्रसन्नता के लिए सोना और माणिक, चन्द्रमा के लिए मोती और चाँदी इत्यादि।

मुन्था—यदि वर्ष-कुण्डली मे मुन्था अनिष्ट स्थान मे हो तो उस दोष की शान्ति के लिए निम्नलिखित दान उत्तम हैं

सुवर्ण, मोती, घृत, श्वेत वस्त्र, काँसा, कर्पूर, हाथी-दाँत, मिश्री, चीनी, सफेद चन्दन, श्वेत पुष्प। इसके अतिरिक्त यदि मुन्था का स्वामी भी पीडित हो तो जो मुन्था राशि का स्वामी हो उसी ग्रह के अनुसार जप आदि उचित है।

नोट—सर्व प्रकार की ग्रह-पीडाओं के लिए महामृत्युञ्जय, जप होम, रुद्राभिषेक, दुर्गापाठ, बहुत श्रेयस्कर हैं। 'श्रीमद्भागवत' का सप्ताह और 'वाल्मीकिरामायण' का नवाह, विशेषकर सुन्दर काण्ड का पारायण बहुत लाभप्रद सिद्ध होता है।

तृतीय भाग—प्रश्न-विचार परिचय

चौबीसवाँ प्रकरण

प्रश्न-पद्धति और ग्रह

ज्योतिष के तीन विभाग मुख्य हैं। जन्म-कुण्डली विचार, वर्ष-फल (ताजिक शास्त्र) तथा प्रश्न। गोचर। विचार तो वर्ष-फल के अन्तर्गत आ जाता है। प्रश्न इन सबसे स्वतन्त्र है।

जिस प्रकार बालक के गर्भाधान के समय की कुण्डली खीची जाती है या जिस प्रकार बालक के जन्म-समय की कुण्डली खीचकर बालक का भविष्य व शुभाशुभ फल कहा जाता है उसी प्रकार जिस समय प्रश्नकर्त्ता के मन मे प्रश्न की उत्पत्ति हुई या जिस समय प्रश्नकर्त्ता ने प्रश्न किया उस समय की कुण्डली खीच कर यह विचार किया जाता है, कि इस प्रश्न का (हृदय में आये हुए या मुख से उच्चारण किये हुए विचार का) शुभाशुभ क्या होगा।

प्रश्न के विषय में तीन बात मुख्य हैं। एक तो यह कि शुद्ध सात्विक भाव से वास्तविक जिज्ञासा की समाधान के लिए प्रश्न किया जावे। दूसरा यह कि देश-काल-पात्र आदि के विचार का ज्योतिष शास्त्रीय सिद्धान्तों से सामजस्य कर फल कहना उचित है। तीसरी आवश्यक बात है फलादेश करने वाले के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में। जितना ही मनुष्य सदाचारी, पंडित,,धार्मिक वृत्ति का होगा उतना ही उसका फलादेश अधिक ठीक बैठेगा। ज्योतिष-शास्त्र के साधारण फलादेश में और विशेषत: प्रश्न के फल में ज्योतिषी का अतीन्द्रिय ज्ञान (इनट्यूशन) विशेष सहायक होता है।

इन बातो का विचार कर प्रश्न-शास्त्र का अभ्यास करना चाहिए। हाथ मे फल, फूल, द्रव्य आदि लेकर ज्योतिषी के पास जा कर विनीत भाव से प्रश्न करना चाहिए। यदि प्रश्नकर्त्ता छल करने के लिए या दर्प (घमड) से प्रश्न करता हो तो प्रश्न का उत्तर न दे। यदि लग्न में चन्द्रमा हो, केन्द्र मे शनि हो, बुध सूर्य के साथ अस्त हो और मगल और बुध की लग्न और चन्द्रमा पर सम(तुल्य) दृष्टि हो तो समझना चाहिए कि प्रश्नकर्त्ता स्वच्छ हृदय से प्रश्न नही कर रहा है। यदि लग्न मे क्रूर ग्रह हो या बुध या बृहस्पति इनमें से एक भी गह सप्तमेश को चतुर्थ, सप्तम या दशम दृष्टि से देखता हो तो प्रश्नकर्त्ता कुटिल भाव से प्रश्न कर रहा है। किन्तु यदि लग्न और सप्तम भाव पर चन्द्रमा, बुध या बृहस्पति की दृष्टि हो या बुध और बृहस्पति इन दोनों मे एक ही लग्न या सप्तम भाव मे हो तो प्रश्नकर्त्ता वास्तविक जिज्ञासु है। साधु बुद्धि से प्रश्न कर रहा है, यह नतीजा निकालना चाहिए।

एक से अधिक प्रश्न—वैसे तो नियम यह है कि एक बार मे एक ही प्रश्न किया जावे अनेक प्रश्नो का एक साथ विचार करना उचित नही। जब एक ही प्रश्न किया जाता है तो उस समय का लग्न स्पष्ट करके उस लग्न को कुण्डली मान प्रश्न पर विचार करना उचित है। किंतु यदि अनेक प्रश्न किये जावे तो प्रथम प्रश्न का विचार लग्न से, द्वितीय प्रश्न का चन्द्रमा से, तृतीय का सूर्य से, चतुर्थ का बृहस्पति से, और—शुक्र और बुध इन दोनो मे जो वली हो उससे पंचम प्रश्न का विचार करना चाहिए। उदाहरण के लिए नीचे एक प्रश्न-कुण्डली दी जाती है

लग्न ४ । ७

सूर्य ७ । २६

चन्द्रमा ११ । २१

मगल ७ । १

बुध ८ । १२

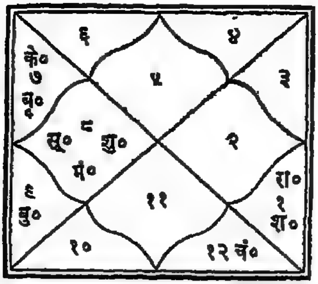

बृहस्पति ६ । १४

शुक्र ७ । २६

शनि ० । ७

राहु ०।२४

केतु ६ । २४

इस प्रश्न-कुण्डली मे प्रथम प्रश्न का विचार सिंह लग्न (७ अंश) से करना चाहिये । द्वितीय प्रश्न का विचार करते समय चन्द्रमा जिस राशि में हो उसे लग्न मान कर विचार करना चाहिये । यथा —

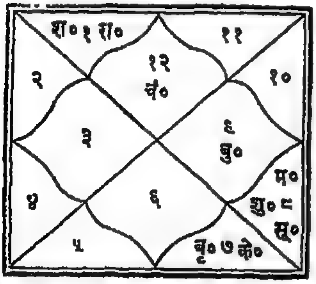

इस प्रश्न-कुण्डली का विचार करते समय लग्न के २१ अंश माने जावेंगे क्योंकि चन्द्रमा के मीन राशि मे २१ अंश है ।

तृतीय प्रश्न का विचार सूर्य से किया जाता है । इस कारण तृतीय प्रश्न की कुंडली निम्न प्रकार से होगी ।

तृतीय प्रश्न का विचार करते समय वृश्चिक लग्न के २६ अंश को प्रश्न-लग्न-अंश मानना होगा क्योंकि सूर्य स्पष्ट ७।२६ है ।

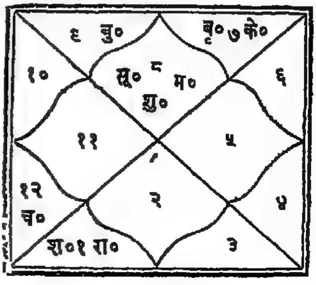

इसी प्रकार चतुर्थ तथा पचम प्रश्न का विचार करने के लिये जिस ग्रह से विचार करना हो उसे लग्न में रख कर कुडली-चक्र का न्यास करना चाहिये। शिष्ट सम्प्रदाय तो यही है कि एक वार एक ही प्रश्न करे किन्तु यदि एक से अधिक प्रश्न-एक वार मे किये जावे तो उत्तर देने का प्रकार उपर्युक्त है।

ग्रहों के दीप्त आदि दश भेद

प्रश्न-विचार में यह बहुत आवश्यक है कि ग्रह किस दशा मे है इसका विचार किया जाय।

दीप्त—जो ग्रह अपनी उच्च राशि में हो वह दीप्त कहलाता है। ऐसा ग्रह कार्य-सिद्धि कराता है।

दीन—जो ग्रह अपनी नीच राशि मे हो वह दीन कहलाता है। ऐसा ग्रह दुःखकारक है।

मुदित—जो ग्रह अपनी मित्र राशि मे हो वह मुदित कहलाता है। ऐसा ग्रह आनन्द-प्राप्ति कराता है।

स्वस्थ—यदि ग्रह अपनी राशि मे हो तो उसे स्वस्थ कहते हैं। इसका फल है कीर्ति तथा लक्ष्मी-प्राप्ति।

सुप्त—यदि ग्रह शत्रु राशि मे हो तो उसे सुप्त कहते हैं। इसका फल है शत्रुभय।

निपीड़ित—यदि ग्रह किसी अन्य ग्रह के साथ उसी राशि, उसी अश और उसी कला मे हो तो दोनो ग्रहो में जो ग्रह उत्तर क्रान्ति मे आगे की ओर होता है वह विजयी और जिसकी क्रान्ति पीछे की ओर होती है वह हारा हुआ कहलाता है। ऐसा ग्रह धन-हानि कारक है। ऐसे ग्रह को पीडित या निपीडित कहते है।

मुषित—जो ग्रह सूर्य के बहुत समीप होने के कारण अस्त हो वे अन्तंगत होते हैं। प्राय. सूर्य से १२° की दूरी पर चन्द्रमा। १०° की दूरी पर मंगल; बुध यदि वक्री हो तो १२° की दूरी पर यदि मार्गी हो तो १४° की दूरी पर। बृहस्पति ११° की दूरी पर। शुक्र

यदि वक्री हो तो ८° की दूरी पर और यदि मार्गी हो तो १०० का दूरी पर तथा शनि १५° की दूरी पर अस्त होता है। अस्त का तात्पर्य यह है कि सूर्य के प्रकाश की प्रखरता के कारण —सूर्य के समीप रहने की वजह से वह ग्रह दिखलाई नही देता। ऐसा ग्रह कार्यनाश-कारक है।

हीन—जो ग्रह अवरोही होता है अर्थात् अपनी नीच राशि की ओर जाने वाला होता है उसे हीन कहते हैं। ऐसा ग्रह अर्थनाश-कारक है।

अधिवीर्य—जो ग्रह शुभ ग्रहों के वर्ग में और अच्छी रश्मि वाला हो (अर्थात् अस्तगत, पराजित आदि न हो) वह बली होता है और धन-सम्पत्ति प्राप्त कराता है। मान, इज्जत, पद-प्राप्ति कराने में अधिवीर्य ग्रह बलशाली समझा जाता है।

सुवीर्य—जो ग्रह उच्चाभिमुखी हो अर्थात् अपनी उच्चराशि की ओर जा रहा हो उसे सुवीर्य कहते हैं। ऐसा ग्रह भी शुभफल प्राप्तिकारक है।

ये ग्रहो की जो दश अवस्थाएँ बताई गई हैं इनका प्रयोजन आगे पड़ेगा। प्राय. लग्न, लग्नेश और कार्य तथा कार्येश की स्थिति और उनके परस्पर सम्बन्ध पर से प्रश्न-फल कहा जाता है। उदाहरण के लिये—मेरा विवाह होगा या नही ? यह प्रश्न हो तो विवाह का विचार सप्तम भाव से किया जाता है। इस कारण यदि लग्नेश सप्तमेश दोनो में सम्बन्ध न हो, ये ग्रह अनिष्ट-स्थान-गत हो, सप्तमेश नीच या अस्तंगत या अन्य दुर्दशा में हो तो विवाह नही होगा, ऐसा कहेगे। शुक्र से भी स्त्री-लाभ का विचार किया जाता है। शुक्र भी नीच, अस्तगत या पराजित हो और लग्न, लग्नेश अथवा सप्तमेश से सम्बन्ध न करता हो तो विवाह नही होगा; ऐसा कहेंगे। इसके विपरीत यदि लग्न लग्नेश तथा सप्तम सप्तमेश और शुक्र का परस्पर-सम्बन्ध हो, और इत्थशाल आदि योग बनते हों तथा

सप्तमेश उच्च, उच्चाभिमुख आदि हो तो अवश्य विवाह होगा, ऐसा कहेंगे। शुक्र भी उदित, बली और मित्र-राशि का हो तो उपर्युक्त फलादेश की पुष्टि होगी।

वर्ष के प्रकरण में जो इत्थशाल आदि षोडश योग बताये गये हैं उन्हे प्रश्न-कुंडली में भी देखना चाहिए कि कोई योग मिलता है क्या? प्रश्न-कुण्डली में विशेषता यह है कि लग्न और लग्नेश को तो मुख्य मानते ही हैं साथ ही जिस भाव-सम्बन्धी प्रश्न हो उस भाव और भावेश का भी विचार किया जाता है। यदि भावेश शत्रु-राशि स्थित, नीच, अस्तगत या पराजित ग्रह से सम्बन्ध करता है तो स्वय निर्बल हो जाता है। यदि बली शुभ-ग्रह से इत्थशाल आदि योग करता है या बली शुभ-ग्रह उस भाव मे बैठा हो (जिसके सम्बन्ध का विचार किया जा रहा हो) तो शुभता की वृद्धि होती है।

ग्रहों के स्वरूप और उनके कुछ लक्षण—कुल नौ ग्रह हैं और बारह भाव। इन्ही से समस्त चराचर विश्व की वस्तुओं का विचार किया जाता है। इस कारण एक-एक ग्रह से अनेक वस्तुओं का विचार किया जाता है। उन सब का विशद वर्णन यहाँ सम्भव नही। कुछ स्थूल लक्षण बताये जाते हैं। सूर्य सात्विक ग्रह है, पूर्व दिशा का स्वामी है तथा इससे राजा, पिता आदि का विचार किया जाता है। इसकी पित्त प्रकृति है। क्षत्रियो का तथा ग्रीष्म ऋतुओं का अधिष्ठाता है। मधु (शहद) के समान इसके नेत्र हैं। यह पित्त-दोष कारक है। यह धातुओ का भी अधिष्ठाता है। इसके सिर पर थोडे केश हैं।

इस स्वरूप और लक्षण बताने का तात्पर्य यह है कि यदि प्रश्न-कुण्डली में दशमेश सूर्य हो या दशम स्थान में सूर्य हो, या लग्न किंवा लग्नेश से सूर्य शुभ-सम्बन्ध करता हो तो राजा, महाराजा, सरकार से सम्बन्ध होगा। उनसे सम्बन्धित कार्य मिलेगा यह कहना

चाहिए। लाभ-स्थान में सूर्य हो और प्रश्नकर्त्ता का प्रश्न हो कि किस जाति के व्यक्ति से लाभ होगा तो कहेंगे क्षत्रिय जाति के व्यक्ति से। कब लाभ होगा तो ग्रीष्म ऋतु में (क्योंकि सूर्य ग्रीष्म ऋतु का अधिष्ठाता है)। यदि रोग-सम्बन्धी प्रश्न हो और षष्ठ स्थान या षष्ठेश का सूर्य से सम्बन्ध हो अथवा लग्न किंवा लग्नेश का सूर्य से अनिष्ट सम्बन्ध हो तो कहेंगे कि पित्त रोग होगा। पित्त रोग के अन्तर्गत सिर दर्द, पित्तज्वर, जिगर की बीमारी आदि अनेक रोग आते हैं। यहाँ केवल यह निर्देश-मात्र किया गया है कि सूर्य के जो शास्त्रोक्त लक्षण बताये गये हैं उनका प्रश्न-कुण्डली में कैसे उपयोग करना। अब अन्य ग्रहों के स्वरूप और लक्षण बताये जाते हैं।

चन्द्रमा—मृदु है। जलतत्व का अधिष्ठाता है। इसकी कफ प्रकृति है। वर्षा ऋतु का स्वामी है। इस के नेत्र सुन्दर हैं। वैश्य, गौर वर्ण, गोलाकार, वात प्रकृति आदि का विचार चन्द्रमा से करना चाहिए।

मंगल—तामसिक, रक्तवर्ण, दक्षिण दिशा का स्वामी, सेना का अधिप, क्रूर, पिंगल नेत्र वाला, युवावस्था का, धातुओं का स्वामी है। इसका अग्नि तत्व है।

बुध—लम्बे कद का है किंतु नपुंसक है। यह शरद् ऋतु, उत्तर दिशा तथा शूद्र जाति का स्वामी है। पीडित होने पर वात, पित्त कफ तीनों दोषयुक्त रोग उत्पन्न करता है। राजकुमार, लिखने-पढने में चतुरता, हिसाब, दलाली, राजदूत आदि का विचार बुध से करना चाहिए। कंदमूल का विचार भी बुध से किया जाता है।

बृहस्पति—ब्राह्मण वर्ण, पुरुष ग्रह है। यह ईशान कोण का स्वामी है। धन, खजाना, फल आदि का विचार बृहस्पति से करना चाहिए। इसका कद लम्बा है और इसके नेत्र शहद के समान हैं। इसका पुष्ट शरीर है और शीतल स्वभाव है।

शुक्र—इसका शान्त स्वभाव है। परन्तु स्त्री ग्रह है। यदि

सन्तान-सम्बन्धी प्रश्न हो और पञ्चम से शुक्र का सम्बन्ध हो तो कन्या सतति कहना। छठे से सम्वन्ध हो तो स्त्री जैसे शब्द वाला लड़का हो यह फलादेश करना। यह राजसिक प्रकृति का है। चचल, गौर वर्ण और आग्नेय कोण का स्वामी है। इसकी कफ प्रकृति है। काले घुंघराले केश हैं। खट्टा रस इसे प्रिय है।

शनि—यह तामसिक ग्रह है। शनि से वृद्ध, नपुंसक, आलसी, मैले कपड़े वाला, कृश व्यक्ति का अनुमान करना। यह शिशिर ऋतु का स्वामी है और वायु रोग, गठिया, वाय, लकवा, पेट मे अफारा आदि वात रोग करता है। पश्चिम दिशा का स्वामी है। इसकी क्रूर प्रकृति है। और इससे म्लेच्छों या हीन जाति के लोगो का विचार किया जाता है। उदाहरण के लिए यदि प्रश्न-कुण्डली में वलवान शनि दशम या लाभ भाव से सम्बन्ध करता हो और लाभ-सम्वन्धी प्रश्न हो तो कहेंगे कि पश्चिमी पाकिस्तान से व्यापार करने से लाभ होगा।

राहु-केतु—राहु गेरु आदि धातु तथा मूल कन्दो का स्वामी है। और केतु मूल का। और सब लक्षण राहु-केतु के शनि के समान समझने चाहिए। प्रश्न-सम्वन्धी व्यक्ति के वर्ग का अनुमान लग्न से, या बुध से या केन्द्रगत ग्रह से या सबसे वलवान ग्रह से करना चाहिए। प्रत्येक प्रश्न का उत्तर देते समय अपनी बुद्धि से तारतम्य करके किस ग्रह का विशेष सम्बन्ध है, उस ग्रह की कैसी आकृति और स्वभाव आदि हैं, उनका विचार कर प्रश्न का उत्तर देना चाहिए। अब यह बताया जाता है कि बारहो भावो से क्या-क्या विचार करना है।

पच्चीसवाँ प्रकरण

प्रश्न-विचार

किस भाव से क्या विचार करना—इस पुस्तक के प्रथम भाग में यह बताया जा चुका है कि किस भाव से क्या विचार करना है। जातक शास्त्र और प्रश्न शास्त्र में कहीं-कहीं मतभेद है। इस कारण प्रश्न-कुंडली में किस भाव से क्या विचार करना यहाँ बताया जाता है।

(१) सुख, आयु (यह मनुष्य कितना जियेगा) वय, (इस समय इसकी उम्र कितनी है) अथवा किस उम्र का व्यक्ति है, जाति, स्वास्थ्य, आरोग्य, लक्षण, गुण, क्लेश, आकृति (शक्ल) रूप, वर्ण इन सब का विचार प्रथम भाव से करना चाहिए।

'प्रश्न-मार्ग' के अनुसार यश, शारीरिक सुख, श्रेय (कल्याण की बात) जय और शरीर-सम्बन्धी सब विचार भी लग्न से करना चाहिये।

(२) मोती, माणिक, रत्न, धातु, वस्त्र, मित्र का कार्य, मार्ग का विचार आदि द्वितीय भाव से करना उचित है।

'प्रश्न-मार्ग' के अनुसार समस्त पोष्य-वर्ग (जिनका भरण-पोषण कोई व्यक्ति करता हो), धन, वाणी, दक्षिण नेत्र तथा विविध विद्याओं का विचार भी द्वितीय स्थान से करना उचित है।

(३) बहन, भाई, भृत्य (नौकर), दास (गुलाम), मजदूर आदि का विचार तृतीय भाव से करना उचित है।

'प्रश्न मार्ग' के अनुसार धैर्य, वीर्य (उत्साहशीलता), दुर्बुद्धि, दाहिना कान और सहायक का विचार भी तृतीय स्थान से करना उचित है। हमारे विचार से पडोसी, पत्र-पत्रिका, तार, चिट्ठी आदि का विचार भी इसी भाव से होना चाहिए।

(४) बगीचा, खलिहान, खेत, औषधि, निधि (गडा हुआ धन), छिद्र आदि में प्रवेश का विचार चतुर्थ भाव से करना चाहिए।

'प्रश्न मार्ग' के अनुसार माता, मित्र, मामा, भानजा, सुख, वाहन, आसन, लालित्य, जल, शयन, वृद्धि, पशु आदि तथा जन्म-गृह (जिसमें मनुष्य पैदा हुआ हो अथवा अपना प्राचीन मकान) का विचार चतुर्थ भाव से करना चाहिए।

(५) गर्भ, संतान, इधर-उधर ले जाने की वस्तु, मन्त्र, मैत्री, विद्या, बुद्धि, ग्रन्थ (अपने निर्माण किये हुए का विचार), पञ्चम भाव से करना उचित है।

'प्रश्न मार्ग' के मतानुसार प्रज्ञा, प्रतिभा, मेधा, विवेक-शक्ति, पूर्व पुण्य (पिछले जन्म में किया हुआ पुण्य), सौमनस्य, मन्त्री-पद का विचार भी पंचम भाव से करना उचित है।

(६) चोर, भय, शत्रु, संग्राम, गधा, ऊँट, क्रूर कर्म, मामा, आतङ्क और भृत्य इनका विचार षष्ठ से करना चाहिए।

'प्रश्न मार्ग' के अनुसार आधि (मन का दुःख), विघ्न, व्याधि, शारीरिक चोट तथा शत्रु के शस्त्र से घायल होकर मरने का विचार भी छठे से करना उचित है। कुछ विद्वान् ऋण का विचार भी छठे से करते हैं।

(७) वाणिज्य (व्यापार), व्यवहार, लेनदेन, दूसरों से विवाद, आना-जाना तथा स्त्री (किंवा पति) का विचार प्रश्न-कुंडली के सप्तम भाव से करना उचित है। 'प्रश्न मार्ग' के अनुसार विवाह, भार्या, भर्त्ता, शय्या, स्त्री का अपने पति के अतिरिक्त अन्य पुरुष से समागम, पुरुष का अपनी पत्नी के अतिक्ति अन्य स्त्री से समागम, नष्ट वस्तु (चोरी, गई वस्तु आदि) तथा स्त्री-पुरुष के प्रेम-सम्बन्धी सब बातों का विचार सप्तम से करना चाहिए।

(८) नदी के पार जाना, रास्ते का संकट, दुर्ग (किला), शत्रु द्वारा उपस्थित किया हुआ संकट, व्याधि, नष्ट धन, अनिष्ट कार्य

गुप्त कार्य, छिद्र आदि का विचार अष्टम भाव से करना उचित है। 'प्रश्न मार्ग' के अनुसार मृत्यु का हेतु और स्थान, विपत्ति, अपवाद (तोहमत या बदनामी), दास, मठ, उपग्रह (प्रधान घर के अतिरिक्त रहने का स्थान), बीमारी, विघ्न आदि का विचार भी अष्टम स्थान से करना चाहिए।

(९) बावड़ी, कुआँ, नल, मंदिर, दीक्षा, यात्रा, धार्मिक स्थान आदि का विचार नवम से करे। 'प्रश्न मार्ग' के अनुसार भाग्य, धर्म, दया, पुण्य, तप, पिता, पौत्र-पौत्री, दौहित्र-दौहित्री, दान, उपासना तथा सुशीलता व गुरुओ का विचार नवम से करना चाहिए। हमारे विचार से यदि धर्मार्थ कुआँ बनवाया जाय तो उसका नवम से किन्तु यदि अपने घर मे कुआँ खुदवाया जाय तो उसका चतुर्थ से विचार करना चाहिए।

(१०) राज्य, मुद्रा (द्रव्य तथा मोहर–अर्थात् अधिकार), विशेष पुण्य, स्थान (स्थान-प्राप्ति,–पद-प्राप्ति, ओहदा मिलना), पिता, प्रयोजन, वृष्टि आदि आकाश-सम्बन्धी विचार दशम भाव से करना चाहिए। 'प्रश्न मार्ग' के अनुसार देवालय, महन्त पद, नगर सभा, म्युनिसिपैलिटी, कॉरपोरेशन, एसेम्बली, लेजिस्लेटिव कौंसिल, विधान सभा, लोक सभा, राज्य सभा आदि, मार्गालय-होटल धर्मशाला आदि, आज्ञा, आलम्बन (जिसका आश्रय लिया जावे) ऐसे विशिष्ट व्यक्ति का विचार दशम से करना चाहिए।

(११) हाथी, घोड़े, सवारी, वस्त्र, सुवर्ण, अन्न, कन्या, विद्या और धन का लाभ एकादश भाव से देखे। 'प्रश्न मार्ग' के अनुसार सब प्रकार का अभीष्ट आगम, ज्येष्ठ भ्राता, जो पुत्र उत्पन्न हो चुके हैं, बायें कान और धन-लाभ का विचार एकादश से करना उचित है।

(१२) त्याग, भोग, विवाद, दान, इष्टकर्म, खेती आदि

विविध कार्यों मे व्यय—किसी भी प्रकार का व्यय हो तो बारहवे भाव से विचार करना चाहिए। शुभ ग्रह शुभ काम मे खर्च कराते हैं—वस्त्र, आभूषण, सवारी, मकान, जायदाद, विवाह, उत्सव, यज्ञ, धार्मिक संस्थाओं को दान आदि शुभ व्यय हैं। पाप ग्रह अशुभ कार्यों में व्यय कराते हैं—बीमारी में व्यय, राजदंड, जुर्माना, इनकम-टैक्स मे दंड, सट्टे का घाटा, चोरी या लूट-मार मे धन का लुट जाना ये सब अनिष्ट व्यय हैं। 'प्रश्न मार्ग' के अनुसार स्थान-भ्रंश होना अपने मकान या जगह से पृथक् हो जाना, विकलता, पाप, नरक मे गिरना, तथा वाम नेत्र का विचार बारहवे भाव से करना चाहिए।[९]

भावों से कार्य की सफलता और असफलता का ज्ञान

(१) जो भाव अपने स्वामी से युत (सहित) हो, (२) या अपने स्वामी से दृष्ट हो, (३) सौम्य ग्रह, ग्रहों से युत हो, (४) सौम्य ग्रह, ग्रहों से दृष्ट हो, उसकी वृद्धि होती है। इसी प्रकार जो भाव पाप ग्रह या पाप ग्रहों से युत अथवा दृष्ट होता है उसकी हानि होती है। किन्तु यदि कोई पाप-ग्रह अपनी राशि में बैठा हो तो उस भाव की वृद्धि करता है, उसको बिगाड़ता नहीं।

इस प्रश्न-कुण्डली में सप्तम भाव में शनि मकर का है। साधारणत क्रूर ग्रह होने के कारण शनि जहाँ बैठता है उस भाव को दूषित करता है। किंतु यहाँ स्वगृही होने के कारण यह सप्तम भाव की वृद्धि करेगा हानि नहीं।

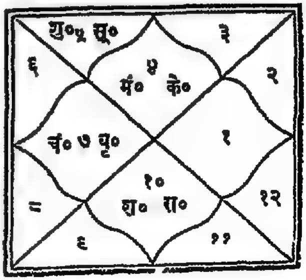

---

९ किस भाव से क्या विचार करना है इस संबंध से ९वाँ प्रकरण भी देख लीजिए।

यदि कोई शुभ-ग्रह लग्न में हो और साथ ही अपने वर्ग (नवांश) आदि मे भी हो तो और भी शुभता बढ़ जाती है। जिस समय प्रश्नकर्ता प्रश्न करे उस समय यदि शीर्षोदय उदित हो तो कार्यसिद्धि का द्योतक है। मिथुन, सिह, कन्या, तुला, वृश्चिक, कुम्भ ये छहों राशि शीर्षोदय हैं। इस कारण प्रश्न-लग्न इनमें से कोई आवे और उसमें शुभ-ग्रह बैठा हो और शुभ-ग्रह भी अपने वर्ग मे हो तो अवश्य कार्यसिद्धि होती है। बहुत से विद्वानों का मत है कि लग्न के अंश निकालने पर यदि वह अंश शुभ ग्रह के नवांश मे पड़ता हो तो भी कार्यसिद्धि का द्योतक है। उदाहरण के लिए यदि प्रश्न-लग्न कन्या आवे और बुध २८° का होकर लग्न में पड़ा हो और प्रश्न-लग्न के अंश भी २८ हों तो अवश्य कार्यसिद्धि होगी ऐसा कहेगे। इसके विपरीत यदि पृष्ठोदय राशि उदित हो अर्थात् मेष, वृष, कर्क, धनु या मकर राशि उदित हो और लग्न में पाप ग्रह हो या पाप ग्रह का नवांश उदित हो तो कार्य में सिद्धि नही होगी या कठिनता से सिद्धि होगी यह कहना चाहिए।

अपवाद या विशेष नियम—मान लीजिये कि प्रश्न-लग्न मकर आता है तथा दो अंश उदित होते हैं और प्रथम नवांश में शनि विद्यमान है तो यद्यपि पृष्ठोदय राशि उदित है, क्रूर ग्रह लग्न मे है और लग्न का स्वामी एवं लग्न-नवांश का स्वामी शनि क्रूर ग्रह है तथापि कार्यसिद्धि होगी ऐसा कहना पड़ेगा। क्योकि क्रूर ग्रह अपनी राशि—अपने नवांश का है। इस प्रकार अपनी बुद्धि से तारतम्य करके फलादेश करना चाहिए।

कार्यसिद्धि-द्योतक कुछ मुख्य योग बताये जाते हैं

(१) लग्नेश लग्न को और कार्येश कार्य भाव को देखे। यदि सप्तम भाव-सम्बन्धी प्रश्न है तो सप्तमेश कार्येश हुआ और सप्तम-भाव कार्य-भाव हुआ। यदि पुत्र-सम्बन्धी प्रश्न है तो पञ्चमेश

कार्येश हुआ और पञ्चम भाव कार्य-भाव हुआ ।

(२) यदि लग्नेश कार्य-भाव को देखे और कार्य-भाव का स्वामी लग्न को देखे ।

(३) यदि लग्नेश कार्येश को देखे और कार्येश लग्नेश को देखे और इन दोनो ग्रहों पर चन्द्रमा की दृष्टि हो— तो इन तीनो दशाओं में कार्यसिद्धि होती है ।

यह सदैव स्मरण रखना चाहिए कि प्रश्न-कुण्डली तथा वर्ष-कुंडली दोनो मे चन्द्रमा की दृष्टि का बहुत महत्व है । चन्द्रमा की दृष्टि होने से कार्यसाधक ग्रहो को बल प्राप्त होता है । लग्नेश और कार्येश को यदि बली चन्द्रमा की दृष्टि प्राप्त हो तो सिद्धिकारक योग बनाता है । चन्द्रमा की दृष्टि का विवरण वर्ष-खड मे कम्बूल योग के अन्तर्गत विस्तार से बताया गया है ।

आंशिक कार्यसिद्धि योग—ऊपर जो योग बताये गए हैं वे तीनो ही पूर्ण सिद्धिकारक हैं । अब कुछ ऐसे योग बताये जाते हैं जिनसे यह तो अनुमान नही निकाला जा सकता कि पूर्ण कार्य-सिद्धि होगी किंतु उन्हे आंशिक सफलता का द्योतक समझ सकते हैं ।

(१) यदि लग्न को लग्नेश न देखता हो किंतु लग्न को अन्य कोई शुभ ग्रह देखता हो तो रुपये मे चार आना कार्यसिद्धि ।

(२) लग्न तथा लग्नेश को कोई एक शुभ-ग्रह या दो शुभ-ग्रह देखते हो तो रुपये मे आठ आना कार्यसिद्धि ।

(३) यदि कोई एक ही शुभ-ग्रह लग्न और लग्नेश दोनो को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो रुपये मे बारह आना कार्यसिद्धि ।

(४) यदि दो या तीन शुभ-ग्रह लग्न तथा लग्नेश दोनो को देखते हो तो भी बहुत अधिक मात्रा मे कार्यसिद्धि का द्योतक है । अर्थात् रुपये मे १२ आना से भी अधिक ।

ऊपर जो चार परिस्थितियाँ बतायी गयी हैं उनमे यदि

चन्द्रमा बलवान् हो और उस पर केवल शुभ-ग्रहों की दृष्टि हो (किसी पाप-ग्रह की चन्द्रमा पर दृष्टि न हो) तो कार्यसिद्धि की विशेष सम्भावना समझनी चाहिए।

पूर्ण कार्यसिद्धि तभी द्योतित होती है जब लग्नेश लग्न में हो या लग्न को देखता हो और अन्य शुभ ग्रह भी लग्न तथा लग्नेश को देखते हो और शुभ-ग्रह से दृष्ट बलवान् चन्द्रमा कम्बूल योग करता है। बारम्बार यह बतलाने की आवश्यकता नही है कि दीन, सुप्त, निपीड़ित, मुषित, परिहीन तथा क्रूर ग्रह कार्य-नाशक होते हैं। यदि लग्न किंतु लग्नेश ऐसे ग्रहों से युत वा दृष्ट हों तो कार्य में बाधा समझनी चाहिए।

समरसिंह का उदाहरण

(१) यदि कोई प्रश्न करे कि मेरा अमुक कार्य कब सिद्ध होगा और प्रश्न-कुण्डली वनाने पर लग्नेश कार्य-भाव को देखे तो कार्य-सिद्धि होती है।

(२) यदि कार्येश (जिस भाव-सम्बन्धी प्रश्न हो उस भाव का स्वामी) लग्न मे स्थित होकर कार्येश को देखे तो तुरन्त कार्यसिद्धि का द्योतक है।

(३) यदि कार्येश लग्न के अतिरिक्त अन्य किसी भाव मे हो और कार्येश को देखे तो विलम्ब से कार्यसिद्धि होगी।

(४) यदि कार्येश, लग्न, लग्नेश और चन्द्रमा तीनों को देखे तो कार्य सफल होगा।

(५) यदि लग्न व कार्येश दोनों एक ही स्थान पर हों तो कार्य-सिद्धि होगी।

(६) यदि लग्नेश व कार्येश दोनों लग्न में या कार्य-भाव मे हो तो अवश्य कार्यसिद्धि होगी।

(७) यदि लग्न या लग्नेश को कार्येश न देखे, न इनसे युत हो तो कार्यसिद्धि नही होती।

ताजिक के योगों का उपयोग–ताजिक (वर्षफल) के प्रकरण में सोलह योग बताये गये हैं। उन योगो को प्रश्न-कुण्डली मे भी लगाना चाहिए। जहाँ लग्नेश और कार्येश में इत्थशाल हो वहाँ कार्य-सिद्धि योग बलवान् होता है। यदि लग्नेश कार्येश मे दृष्टि न हो और कार्येश पाप-ग्रह से योग करता हो तो कार्यहानि समझनी चाहिए। यदि लग्नेश और कार्येश में दृष्टि न हो किंतु कोई अन्य शुभ-ग्रह एक ग्रह का तेज लेकर दूसरे को देता हो (लग्नेश का तेज कार्येश को या कार्येश का तेज लग्नेश को) तो नक्त योग बनता है। ऐसी स्थिति मे दूसरे के द्वारा कार्यसिद्धि होगी यह समझना चाहिए। वर्ष-कुंडली के १६ योगों में से शुभ योग प्रश्न-कुण्डली में शुभ परिणाम प्रकट करते हैं किंतु यदि मणउ, रद्द, खल्लासर आदि अशुभ योग प्रश्न-कुंडली मे बनते हो तो कार्य का परिणाम अशुभ है अर्थात् कार्यसिद्धि नहीं होगी यह नतीजा निकालना चाहिए।

यहाँ पर लग्नेश और कार्येश यही दोनो शब्द बारम्बार दोहराये गये हैं किंतु लग्नेश अति निर्बल, साधारण बली और पूर्ण बली हो सकता है। इसी प्रकार कार्येश भी अति निर्बल, निर्बल, साधारण, बली और पूर्ण बली हो सकता है। बुद्धिमान् पाठको को उचित है कि अपनी बुद्धि से ऊहापोह करके इस निर्णय पर पहुँचे कि कार्य-साधक योग कितना बलवान् बैठता है। यदि प्रश्न के समय कर्क लग्न हो, पूर्ण बली चन्द्रमा और बृहस्पति दोनो कर्क के प्रथम नवांश मे हों और नवम भाव-सम्बन्धी प्रश्न हो तो अवश्य-अवश्य कार्य-सिद्धि होगी ऐसा कहेंगे। किंतु यदि प्रश्न-लग्न के समय सिंह लग्न आवे। सप्तम भाव-सम्बन्धी प्रश्न हो और लग्नेश तथा सप्तमेश (सूर्य और शनि) मेष राशि में नवम मे हो, चन्द्रमा वृश्चिक राशि का चतुर्थ में हो, सूर्य और शनि का इसराफ होता हो तो लग्नेश और कार्येश (सूर्य और शनि के एक साथ विद्यमान होने पर

भी सप्तम भाव-सम्बन्धी असफलता रहेगी यह कहना पड़ेगा।

यह उदाहरण देकर यह समझाया गया है कि प्रथम तथा द्वितीय भागों में ग्रहों के बलाबल-सम्बन्धी जो नियम बताये गये हैं उनको प्रश्न-प्रकरण मे भी उपयोग मे लाना चाहिए।

भूत, भविष्य, वर्तमान-सम्बन्धी प्रश्न

(१) लग्नेश का जिस भाव के स्वामी से इसराफ योग होता हो उससे भूत फल का अनुमान करना।

(२) जिस ग्रह से इत्थशाल होता हो उससे वर्तमान फल कहना।

(३) जिस ग्रह से भविष्य इत्थशाल होता हो उससे भविष्य-फल कहना।

(४) भूत, भविष्य या वर्तमान कोई भी फल देखना हो तो लग्नेश और चन्द्रमा का बल अवश्य विचार करना चाहिए।

(क) यदि दोनों बली हो, शुभ-ग्रहो से युत दृष्ट हों तो तीनों काल मे शुभ फल।

(ख) यदि दोनों निर्बल हो, पाप ग्रह से युत दृष्ट हों तो अशुभ फल।

(ग) लग्नेश व चन्द्रमा की केवल राशि ही नही अपितु उनकी नवांश स्थिति पर भी विचार करना चाहिए।

एक बात पर मैं बार-बार जोर देना चाहता हूँ। सारी प्रश्न-कुंडली एक तरफ और लग्नेश व चन्द्रमा एक तरफ। मान लीजिये किसी मनुष्य को किसी सवारी में जाना है—इक्का, टाँगा, बस, मोटर रेल, हवाई जहाज आदि पर उसका आराम निर्भर हे किंतु यदि उसका शरीर ही बीमार है या मन ही दुःखी है तो कैसी भी बढिया सवारी मे जावे यात्रा अच्छी नही होगी। यही हाल प्रश्न-कुण्डली का है। कार्येश बलवान हो, कार्य-भाव बलवान हो तो उत्तम फल।

कार्यभाव दुर्बल हो, कार्येश दुर्बल हो तो अधम फल। किन्तु लग्नेश शरीर है। चन्द्रमा मन है। इन दोनो के बल को सदैव ध्यान मे रखना चाहिए। लग्नेश व चन्द्रमा प्रश्न-कुण्डली मे प्राण हैं।

छब्बीसवाँ प्रकरण

१, २, ३ भाव-सम्बन्धी प्रश्न

प्रथम भाव-सम्बन्धी प्रश्न—यदि प्रथम भाव-देह-सम्बन्धी प्रश्न हो तो मुख्य रूप से लग्न और लग्नेश का विचार करना चाहिए। यदि लग्नेश लग्न मे ही हो तो भलाई प्रकट करता है। यदि लग्न और लग्नेश दोनों शुभ हों और शुभ-ग्रहों से युत तथा वीक्षित हों तो भी शुभ फल होता है। यदि लग्न मे पाप-ग्रह हो या लग्न पर पाप ग्रह की दृष्टि हो या लग्नेश दु:स्थान मे हो (छठे, आठवें, बारहवे स्थान को दुःस्थान कहते हैं) या लग्नेश पाप-ग्रहों से युत वीक्षित हो तो अशुभ फल समझना चाहिए। यदि कोई पाप ग्रह अपने घर मे लग्न मे हो तो वह शुभ फल ही करेगा क्योकि प्राचीन वचन है कि :

'पापोऽपि स्वगृहस्थश्चेद्
भाववृद्धिं करोत्यलम्।

यह सदैव स्मरण रखना चाहिए कि पापग्रह यदि शुभ-वर्गो मे बैठे हो और शुभग्रहो से वीक्षित हो तो उतना पाप-फल नही करते। इसके विपरीत यदि शुभग्रह पापग्रहो के वर्गो मे हो और पापग्रहो से वीक्षित हो तो उतना शुभ-फल नही करते। शुभता या पापता स्वाभाविक तो होती ही है किन्तु साहचर्य तथा जिन ग्रहो से देखा

जाये और जिन ग्रहो के वर्ग मे हो उनसे बहुत अधिक मात्रा में प्रभावित होती है

पापग्रहा बलयुताः शुभवर्गसंस्थाः
सौम्या भवन्ति शुभवर्गग सौम्यदृष्टा. ।
प्रायेण पापगणगा विबलाश्च सौम्याः
पापा भवन्त्यशुभवर्गगपापदृष्टाः ।।

द्वितीय भाव—जो सिद्धान्त प्रथम भाव के विचार मे बताया गया है उस सिद्धान्त या उन सिद्धान्तो को सभी भावों के विचार मे उपयोग में लाना चाहिए। यदि धनस्थान तथा धनेश शुभ ग्रह से युत व वीक्षित हो तो शुभ फल; पापग्रह से युत व वीक्षित हो तो अशुभ फल। यह स्मरण रखना चाहिए कि लग्नेश चाहे मगल हो चाहे शनि, कभी पाप नही होता। लग्नेश सदा शुभ समझा जाता है। ग्रहो में स्वाभाविक, शुभत्व तथा पापत्व तो होता ही है—जिस स्थान के वे अधिपति हैं उन स्थानो के कारण भी वे शुभ और पापी समझे जाते हैं। उदाहरण के लिए त्रिक * का स्वामी पापी समझा जाता है। नवम का स्वामी शुभ समझा जाता है। किन्तु यदि कोई ग्रह लग्न के स्वामी के साथ-साथ किसी दुष्ट भाव का स्वामी भी हो तो वह शुभ ही समझा जावेगा। मेष लग्न मे मंगल प्रथम तथा अष्टम का स्वामी होता है किन्तु सर्वथा शुभ माना जाता है। वृषभ लग्न मे शुक्र, लग्न तथा षष्ठ का स्वामी होता है, किन्तु शुभ माना जाता है। कुंभ लग्न में शनि लग्न तथा द्वादश का स्वामी होता है परन्तु शुभ माना जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रश्न-कुंडली मे प्रत्येक भाव का जब विचार करना हो तब लग्नेश को सदैव शुभ ही मानना चाहिए, अशुभ नही। धन भाव-सम्बन्धी प्रश्न में यदि धनेश लग्नेश और चन्द्रमा से इत्थशाल करे तो शुभ फल समझना चाहिए।

* छठे, आठवें, बारहवें को त्रिक कहते हैं।

जहाँ धनेश और लग्नेश का इत्थशाल होता हो तो यह देखिए कि दोनो मे मन्द गति (अर्थात् धीरे चलने वाला) कौनसा ग्रह है। उस भाव-सम्बन्धी व्यक्ति से लाभ होगा। उदाहरण के लिए यदि धनेश और लग्नेश इन दोनो में जो मन्दगति ग्रह हो वह पचम मे हो तो विद्या, पुत्र, लाटरी आदि से लाभ, यदि चतुर्थ मे हो तो माता, भूमि, वाहन आदि से लाभ।

धन-भाव विचार-सम्बन्धी कुछ अन्य योग भी नीचे दिये जाते हैं। इनका भी प्रश्न-कुण्डली मे ध्यान रखना चाहिए।

(१) यदि लग्न मे बुध हो और उसे चन्द्रमा या अन्य क्रूरग्रह देखते हों तो धन-लाभ तो शीघ्र होता है किन्तु प्रश्नकर्त्ता को कुछ अनिष्ट फल भी होगा यह कहना चाहिए।

(२) यदि लग्नेश, धनेश और चन्द्रमा युत हो या परस्पर एक-दूसरे या तीसरे को देखे और धनस्थान किंवा केन्द्र या त्रिकोण, इनमे से किसी भी स्थान पर हों तो शीघ्र धन-लाभ कहना चाहिए।

(३) चन्द्रमा यदि चौथे या सातवे हो, सूर्य दशम मे हो और लग्न मे शुभ ग्रह हो तो धन-लाभ। वृहस्पति यदि लग्न में हो तो प्राय धन-लाभ करता है।

(४) यदि विशेष गभीरता से विचार करना हो तो लग्न स्पष्ट करने पर यह देखना चाहिए कि वह शुभ ग्रहो के वर्ग मे है या पाप ग्रहो के वर्ग मे। यदि शुभ ग्रहो के वर्ग मे हो तो शुभ फल। यदि पाप ग्रहो के वर्ग मे हो तो अशुभ फल।

तृतीय भाव-सम्बन्धी विचार

यदि तृतीय भाव-सबधी प्रश्न हो तो तृतीय भाव तथा तृतीयेश को देखना चाहिए। यदि ये दोनो शुभग्रह से, या शुभग्रहो से सबध करते हो तो शुभफल, पाप ग्रहो से या सम्बन्ध करते हो तो पापफल। यदि भाई-बहन-सम्बन्धी प्रश्न हो और (१) तृतीयेश छठे स्थान मे हो, (२) या षष्ठेश के साथ इत्थशाल

करता हो, (३) या षष्ठेश तृतीय स्थान में हो और तृतीय भवन का स्वामी पापग्रह से युत व वीक्षित हो तो जिस पापग्रह से युत वीक्षित हो उस ग्रह से सबंधित रोग करता है या जो ग्रह षष्ठेश हो उस ग्रह-संबंधी रोग करता है। इस प्रकरण के आरम्भ में हम बता चुके हैं कि सूर्य और मगल पित्तकारक, चन्द्रमा और शुक्र वात तथा कफ़ प्रकृति के हैं, बुध पित्त कफ, वात प्रकृति है, बृहस्पति कफ़ प्रकृति है तथा शनि वात प्रकृति है।

यदि तृतीयेश अस्तगत हो तो भाई-बहन के लिए विशेष कष्ट-दायक समझना चाहिए। तृतीय भाव का ही क्या-सभी भावों का विचार करते समय यह देखना चाहिए कि इस भवन का स्वामी दीप्त है या दीन, मुदित है या अस्तगत आदि। इसी प्रकार तृतीय भवन का ही स्वामी क्या जिस भाव का स्वामी छठे, आठवे, बारहवे पड़ा हो या छठे, आठवे भाव के स्वामी से इत्थशाल करता हो उसका अनिष्ट फल ही कहना चाहिए। उदाहरण के लिए तृतीयेश, षष्ठेश या अष्टमेश से इत्थशाल करता हो तो भाई-बहन को कष्ट; चतुर्थेश षष्ठेश या अष्टमेश से इत्थशाल करता हो तो मातृ-कष्ट, पञ्चमेश ६, ८ के स्वामी से इत्थशाल करता हो तो पुत्र-कष्ट और सप्तमेश त्रिक भवन के स्वामी से इत्थशाल करता हो तो स्त्री-कष्ट। वैसे तो छठा, आठवाँ और बारहवाँ तीनो ही स्थान अनिष्ट हैं। इन स्थानो मे जो ग्रह बैठ जाये वे अनिष्ट-फल देते हैं। ६,८,१२ के स्वामी जहाँ बैठ जावे उन भावों को बिगाड़ते हैं। ६,८,१२, के स्वामी जिन भावो को देखे या जिन भावों के स्वामियों को देखे, उनको भी -बिगाड़ते हैं। उस भाव-सम्बन्धी शुभ फल नही होता या कष्टकारक फल होता है। यह साधारण नियम है। ६,८,१२ तीनों ही अनिष्ट स्थान होते हुए भी सबसे अनिष्ट अष्टम स्थान है।

षष्ठं द्वादशमष्टमं च मुनयो भावाननिष्टान् विदु
स्तन्नाथान्वित वीक्षिता यदधिपा ये वा च भावाः स्वयम् ।
तत्रस्थाश्च यदीश्वरास्त्रय इमे नश्यन्ति भावा नृणां
जाता वा विफला विनष्टविकलास्तत्रातिकष्टोऽष्टमः ॥
'प्रश्न मार्ग' अध्याय (१४ श्लोक २६)

सत्ताईसवाँ प्रकरण

४, ५, ६, भाव सम्बन्धी प्रश्न

चतुर्थ भाव-सम्बन्धी विचार

चतुर्थ भाव से मुख्यत भूमि, मकान, कृषि आदि का विचार किया जाता है। प्राचीन समय मे कृषि (खेती) सम्बन्धी बहुत से प्रश्न किये जाते थे। अब भी भारत कृषि-प्रधान देश ही है। यदि कोई प्रश्न करे कि भूमि व मकान का लाभ होगा या नही तो लग्नेश चतुर्थेश एव चन्द्रमा इन पर दृष्टि डालिए। यदि ये तीनो चतुर्थ भाव मे हो या परस्पर इत्थशाल करते हो तो भूमि लाभ होगा। किन्तु यदि ये पापग्रहो से युत अथवा दृष्ट हो तो भूमि, मकान का लाभ नही होता। खेती-सम्बन्धी प्रश्न मे लग्न से खेती करने वाले का विचार, चतुर्थ से खेत का विचार, सप्तम से खेती की उपज (अन्नादि) का विचार और दशम से वृक्षो का विचार करना चाहिए। यदि लग्न का पापग्रह से सम्बन्ध हो तो खेती मे चोरी होगी यह कहना चाहिए। यदि लग्न शुभ ग्रह से युत वीक्षित हो तो खेती करने वाले को लाभ होगा। चतुर्थ स्थान का यदि पापग्रह से योग हो तो कृषक जमीन छोड़ कर चला जावेगा, सप्तम भाव का शुभग्रह से सम्बन्ध होने से अन्नादि की उपज अच्छी होगी।

यदि इसके विपरीत सप्तम भाव पापग्रह से युत वीक्षित हो तो उपज में हानि कहनी चाहिए। जिन देशों में बाढ से हानि होती है वहाँ जल-राशि और जलग्रह से बाढ़ द्वारा क्षति कहना। वायुग्रह से वायु द्वारा तथा जिन प्रदेशों में वर्षा कम होती हो वहाँ प्रश्न-लग्न में सप्तम भाव का सूर्य मगल से सम्बन्ध होने से खेती जल जावेगी। सूर्य की अधिक गर्मी से या वर्षा के अभाव मे, यह कहना चाहिए। इसी प्रकार जैसे सप्तम से कृषि की उपज का विचार किया है दशम भाव से वृक्षों का भी विचार करना चाहिए। विशेष यह है कि बुध से पत्तेदार वृक्ष, शुक्र से पुष्पदार वृक्ष तथा बृहस्पति से फलदार वृक्षो का विचार किया जाता है। इस पुस्तक के २३वें अरिष्टशांति प्रकरण' मे जिस ग्रह का जिस अन्न से सम्बन्ध वताया गया है उसे कृषि प्रश्न मे ध्यान में रखना चाहिए।

मकान और किरायेदार-सम्बन्धी प्रश्न* : लग्न से प्रश्नकर्त्ता के शुभाशुभ का विचार करे, सप्तम से किराये का दशम भाव से किरायेदारी की शुरुआत का और चतुर्थ भाव से किरायेदारी के अन्त का विचार करना चाहिए। जो-जो भाव और भावेश शुभ ग्रह से युत और दृष्ट हों उनका शुभ फल, पाप ग्रह से सम्बन्ध होने से अशुभ फल। लग्न और लग्नेश से फरीक अव्वल समझना चाहिए; सप्तम भावसे फरीक दोयम। प्रथम भाव से मुद्दई, सप्तम भाव से मुद्दायला। जो भाव और भावेश बलवान, शुभ ग्रह से दृष्ट, युत होते हैं उस भाव-सम्बन्धी पक्ष की जय होती है। यदि प्रश्न-लग्न में यह पाया जावे कि लग्नेश और सप्तमेश तात्कालिक मित्र होकर एक-दूसरे से इत्थशाल करते हैं और दोनो चन्द्रमा से भी मुथशीली हो और उन पर शुभ ग्रह की दृष्टि हो तो दोनों में सौमनस्य--समझौता हो जावेगा।

भू भाटक पृच्छायां लग्नं प्रष्टा च भाटक द्यूने।
तस्योत्पत्तिर्दशमे तथाऽवसानं चतुर्थे स्यात्॥

'वर्ष फल' के प्रकरण मे शुभाशुभ विचार करने के जो सोलह योग बताये गये है उनका विचार प्रश्नकुडली में भी करना चाहिए।

पञ्चम भाव-सम्बन्धी प्रश्न—यदि सन्तान-सम्बन्धी प्रश्न हो तो लग्न और लग्नेश, पञ्चम और पञ्चमेश तथा चन्द्रमा का विचार कीजिये। चन्द्रमा की दृष्टि का प्रश्न-कुंडली मे विशेष महत्व रहता है।

> चन्द्रदृष्टिं विनाऽन्यस्य शुभस्य यदि दृग्भवेत्।
> शुभं प्रयोजनं किंचिदन्यदुत्पद्यते तदा॥
>
> (भुवन दीपक)

अर्थात् यदि प्रश्न-कुडली में चन्द्रमा की दृष्टि न हो तो पूर्ण प्रयोजन सिद्ध नही होना। 'भुवन दीपक' के निर्माता पद्मप्रभुसूरि लिखते हैं कि "यदि अन्य शुभ ग्रह की दृष्टि हो और चन्द्रमा की दृष्टि न हो तो अन्य प्रकार से कोई शुभ कार्य हो जावे यह सम्भव है। किन्तु जो कार्य मन में है—मन में जिस कार्य की इच्छा है उसकी पूर्ति चन्द्रमा के सयोग (दृष्टि, युति) से ही होती है।"

इसलिए सन्तान-सम्बन्धी प्रश्न में :

(१) यदि लग्न और चन्द्रमा पञ्चमेश से इत्थशाल करें, या (२) पञ्चम स्थान का स्वामी लग्न में हो और लग्न स्थान का स्वामी पंचम में और दोनो चन्द्रमा से कम्बूल योग करें तो सन्तान अवश्य होगी। इनके अतिरिक्त (३) लग्नेश लग्न को देखे और पञ्चमेश पचम को देखे अथवा (४) लग्नेश पचम को देखे या (५) लग्नेश-पञ्चमेश दोनो शुभ स्थान मे बैठकर परस्पर मुथशिली हो तो भी पचम भाव-सम्बन्धी सफलता कहनी चाहिए, यह प्रश्न शास्त्र का साधारण नियम है। बृहस्पति पुत्रकारक होता है, इस कारण लग्न या पंचम पर बृहस्पति की दृष्टि हो और लग्नेश अथवा पञ्चमेश से इत्थशाल करता हो तो सन्तान-सम्बन्धी प्रश्न मे विशेष शुभता आ जाती है। (६) यदि 'नक्त' योग बनता हो

तो विलम्ब से सन्तान होगी यह कहना ।

चन्द्रमा से पुत्र-कन्या ज्ञान

(१) चन्द्रमा यदि मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु या कुंभ में हो और सूर्य, मंगल या बृहस्पति से इत्थशाल करता हो तो पुत्र होगा यह कहना चाहिए ।

(२) चन्द्रमा यदि वृषभ, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर या मीन राशि में स्थित होकर शुक्र या बुध से इत्थशाल करता हो तो कन्या ही कहना चाहिए ।

(३) यदि प्रश्न लग्न मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु या कुम्भ हो और लग्न के अंश सूर्य की होरा में पड़े तो पुत्र ।

(४) यदि प्रश्न-लग्न वृष, कर्क, वृश्चिक, मकर और मीन इनमें से कोई हो और लग्न के अंश चन्द्रमा की होरा में पड़े तो कन्या कहना चाहिए ।

(५) यदि प्रश्न मध्याह्न के बाद किया जावे और कृष्ण पक्ष में प्रश्न किया गया हो तो कन्या ।

(६) यदि पूर्वाह्न (दोपहर से पहले) में प्रश्न किया गया हो और प्रश्न के दिन शुक्ल पक्ष हो तो पुत्र ।

विशेष यह है कि लग्न-लग्नेश का पुरुष ग्रहों से विशेष सम्बन्ध हो तो पुत्र किंतु यदि लग्न लग्नेश का सम्बन्ध स्त्री या नपुंसक ग्रहों से हो तो कन्या ।

प्रायः प्रश्न-लग्न मे यह कठिन होता है कि सब लक्षण पुत्र-सम्बन्धी ही घटित हों या कन्या-सम्बन्धी ही घटित हो । ऊपर जो अनेक नियम बताये गये हैं उनमें से कुछ पुत्र-सम्बन्धी लक्षण पाये जावें और कुछ कन्या सम्बन्धी तो लग्न पंचम और चन्द्रमा केवल इन तीनों को आधार मानकर देखना चाहिए कि विषम (ऊनी)

नोट—यदि लग्न के अतिरिक्त अन्य स्थान में स्थित शनि से इत्थशाल करे तो भी कन्या ही कहना चाहिए ।

राशि मे हैं या सम (पूरी) में और पुरुष ग्रहो से विशेष सम्बन्ध करते हैं या स्त्री ग्रहों से, इसी आधार पर प्रश्न का निर्णय करना उचित है।

संतान जीवित रहेगी या नहीं—यदि कोई यह प्रश्न करे कि सन्तान जीवित रहेगी या नही—या जीवित है या नही—तो बारहवें स्थान के स्वामी से विचार करे।

(१) यदि द्वादश भवन का स्वामी शुभ ग्रह से युत दृष्ट केन्द्र में हो, चन्द्रमा भी शुभ ग्रह से युत दृष्ट हो और शुक्ल पक्ष में प्रश्न किया जाय तो सन्तान जीवित है व रहेगी, यह उत्तर देना चाहिए।

(२) यदि द्वादशेश छठे, आठवें मे हो, चन्द्रमा भी पाप ग्रहो से युत व वीक्षित दुःस्थान में हो और कृष्ण पक्ष मे प्रश्न किया जाय तो अशुभ फल कहना चाहिए।

(३) यदि द्वादशेश तृतीय या नवम मे भी पापग्रह से युत व वीक्षित हो तो अशुभ फल कहना चाहिए।

अमुक स्त्री गर्भवती है या नहीं—प्राय ऐसे प्रश्न का उत्तर ज्योतिष की अपेक्षा लेडी डाक्टर अच्छा दे सकती है तथापि ज्योतिष का विचार भी लिखा जाता है।

(१) यदि लग्नेश या चन्द्रमा पचम भाव मे है तो गर्भवती है।

(२) यदि पंचम भवन का स्वामी प्रथम, चतुर्थ, सप्तम, दशम या पचम में बैठकर लग्नेश और चन्द्रमा से इत्थशाल करे तो गर्भवती है।

(३) यदि पंचमेश न लग्न को देखे, न पञ्चम को देखे तथा लग्नेश से भी सम्बन्ध न करे तो गर्भवती नही है।

(४) यदि पचमेश तीसरे, छठे, आठवें होकर लग्नेश या चन्द्रमा से कोई सम्बन्ध न करे तो गर्भवती नही है।

(५) यदि प्रश्न-लग्न मेष, कर्क, तुला या मकर हो और चन्द्रमा

पापग्रह से इत्थशाल करता हो तो गर्भ नष्ट होगा।

(६) यदि चर लग्न हो (ऊपर ५ में जो बताये गये हैं) और पचमेश वक्री होकर लग्नेश व चन्द्रमा से इत्थशाल करता हो तो गर्भ नष्ट होगा।

(७) प्रायः शनि मगल दोनों यदि पचम भाव में हों या दोनों पञ्चम भाव को पूर्ण दृष्टि से देखते हों तो भी गर्भ नष्ट-कारक योग बनाते हैं।

प्रसव कब होगा ?

प्रश्न-लग्न निकालकर यह देखना चाहिए कि कितने नवांश व्यतीत हो चुके हैं। जितने नवांश व्यतीत हो चुके हो उतने ही मास का गर्भ है यह निश्चय करना चाहिए। लग्न में जितने नवाश शेष हो उतने मास बाद सन्तान होगी। भुवनदीपककार ने प्रसव का मास जानने के लिए लिखा है कि प्रश्न-लग्न से जितने भाव दूर शुक्र हो उतने ही मास के बाद प्रसव होगा। उदाहरण के लिए मेष लग्न आया और सप्तम मे तुला का शुक्र है तो ७ मास बाद प्रसव होगा यह कहना चाहिए। किन्तु यदि नवम भाव से किसी आगे के भाव मे शुक्र हो तो लग्न से न गिनकर पञ्चम भाव से गिनना चाहिए। उदाहरण के लिए यदि मेष लग्न का प्रश्न है और मकर का शुक्र दशम मे है तो पचम से दशम छठा हुआ इसलिए यह कहना उचित है कि ६ मास बाद प्रसव होगा।

दिन में प्रसव होगा या रात्रि में

प्रश्न-लग्न व लग्नेश दिवाबली हों तो दिन मे प्रसव। यदि रात्रिबली हो तो रात्रि में प्रसव। प्रश्न-लग्न का स्वामी तथा जिस होरा में प्रश्न किया जाय उसके स्वामी का विचार भी कर लेना चाहिये कि वह किस समय विशेष बलवान होता है।

इस वर्ष में गर्भ होगा या नहीं

इस प्रकार के प्रश्न में यदि (१) लग्नेश और पचमेश मे

(१) लग्नेश और पंचमेश में इत्थशाल होता हो, या

(२) लग्नेश पचम मे, पंचमेश लग्न मे हो तो उस वर्ष मे अवश्य सतान होगी।

यदि पचम का स्त्री ग्रहो से सम्बन्ध हो तो कन्या-सतति और यदि पुरुष ग्रहों से हो तो पुत्र होगा यह जानना चाहिये।

यह स्त्री प्रसूता है या नहीं

(१) यदि किसी अपरिचित स्त्री के विषय में शका हो कि वह मिथ्या भाषण कर रही है और यह निश्चय करना हो कि उसके बच्चा हुआ है या नही तो यह देखना चाहिए कि पचमेश और षष्ठेश उदित हैं क्या (अस्त तो नही हैं)। यदि अस्त होने के उपरान्त उदित हो गये हो तो यह निश्चय करना चाहिए कि इस स्त्री के बच्चा हो चुका है।

(२) यदि बुध, बृहस्पति और शुक्र तीनो ग्रह उदित हों (अस्त न हों) तो भी स्त्री प्रसूता है यह उत्तर देना चाहिए।

यदि उपर्युक्त कोई योग घटित न हो तो स्त्री अप्रसूता है यह निश्चय करना उचित है।

षष्ठ भाव-सम्बन्धी प्रश्न

(१) यदि रोग-विषयक प्रश्न हो तो लग्न से डाक्टर का, चतुर्थ से दवा का, सप्तम से बीमारी का और दशम भाव से बीमार का विचार करना चाहिए। यदि प्रथम भाव मे शुभ-ग्रह हो, शुभ-ग्रह की दृष्टि हो तो जिस डाक्टर का इलाज किया जा रहा है उससे लाभ होगा। यदि प्रथम भाव पापदृष्ट, पापाक्रान्त हो तो उस डाक्टर से लाभ नहीं होगा। इसी प्रकार चतुर्थ भाव शुभ-युत-दृष्ट हो तो जो औषधि ली जा रही है उससे लाभ होगा। यदि यह चतुर्थ भाव पापदृष्ट, पापाक्रान्त हो तो औषधि से लाभ नही होगा। यदि सप्तम में पापग्रह हो तो एक रोग से अनेक रोगो की उत्पत्ति होगी। यदि दशम भाव पापयुत हो तो समझना

चाहिए कि रोगी के अपने कर्म (कुपथ्य) आदि से रोग बढेगा। यदि समस्त केन्द्रो मे शुभ-ग्रह हो तो पूर्ण लाभ कहना चाहिए। समस्त केन्द्र पापदृष्ट व पापाक्रान्त हो तो अशुभ फल। यदि प्रश्न लग्न चर आवे और प्रश्न-कुण्डली शुभ-लक्षण-युत हो तो शीघ्र रोग-मुक्ति होगी। यदि स्थिर लग्न आवे तो देर से कार्य होता है।

(२) यदि लग्नेश और चन्द्रमा का इत्थशाल हो तो शीघ्र ही रोग-मुक्ति होती है।

लग्नेशेन्द्वो : सौम्येत्थशालतो रोगनाशनं वाच्यम्।

यदि साथ ही शुभग्रहो की इन दोनों पर दृष्टि हो तो निश्चय ही रोग का नाश होगा यह कहना।

(३) यदि लग्न चतुर्थ, सप्तम या दशम में पापग्रह वक्री हो और अन्य लक्षण रोग-नाश के भी हों तो यह समझना चाहिए कि रोग अच्छा होने के बाद पुन रोग होगा। यदि इस प्रकार का वक्री ग्रह प्रथम, चतुर्थ या सप्तम में स्थित होकर चन्द्रमा से इत्थशाल करे और प्रश्न-कुण्डली मे अन्य अशुभ लक्षण भी हों तो रोग साघातिक होगा। अष्टम मृत्यु भाव है। इसलिए यदि अष्टमेश लग्न में हो या अष्टमेश, लग्नेश और चन्द्रमा से अष्टम मे हो तो विशेष अशुभ होता है।

(४) यदि सिंह लग्न प्रश्न-कुण्डली में आवे और चन्द्रमा शनि से इत्थशाल करता हो या कोई भी लग्न हो और सप्तमेश छठे भाव मे स्थित हो तो अशुभ फल कहना।

(५) यदि लग्नेश और अष्टमेश दोनो केन्द्र मे स्थित होकर परस्पर इत्थशाल करते हों और पापग्रहों से पराजित हो या अस्तगत हों तो रोगी की मृत्यु कहना चाहिए। यदि अष्टमेश निर्बल हो और लग्नेश भी निर्बल हो तब भी मृत्यु-फल कहना उचित है।

(६) यदि अष्टमेश दीन, सुप्त, निपीड़ित, मुषित या परिहीन होकर किसी भी स्थान में हो और केन्द्र में स्थित निर्बल लग्नेश से इत्थशाल करे तो भी मृत्युफल कहना चाहिए अर्थात् रोगी की मृत्यु होगी।

(७) यदि लग्नेश सूर्य के द्वादशांश मे हो तो भी अशुभ फल होता है।

अमुक व्यक्ति को रोग है या नहीं

(१) यदि इस प्रकार का प्रश्न किया जावे तो लग्नेश, चन्द्रमा और षष्ठेश को देखिये। यदि लग्नेश या चन्द्रमा दोनो में से कोई भी अस्त हो या षष्ठेश से इत्थशाल करता हो तो व्यक्ति रोगी है अन्यथा नही।

रोगकाल

कितने दिन तक रोग रहेगा यदि यह प्रश्न किया जाये तो प्रश्न-लग्न पर दृष्टि डालिये। यदि प्रश्न-लग्न स्थिर हो तो रोग भी स्थिर रहेगा। चन्द्रमा यदि वक्री ग्रह से इत्थशाल करता हो तो भी रोग स्थिर रहेगा। किन्तु यदि प्रश्न-लग्न मेष, कर्क, तुला या मकर हो और नवांश भी चर हो तो शीघ्र रोग-मुक्ति होगी ऐसा कहना चाहिए। यदि प्रश्न-लग्न चर हो और नवांश स्थिर हो तो यह फल कहना उचित है कि बाहर से तो रोग शमन हो जावेगा किन्तु शरीर के भीतर व्याधि का अंकुर कायम रहेगा। यदि द्विस्वभाव लग्न आवे तो दो रोग होंगे या जो रोग चल रहा है वह तो शांत हो जावेगा और अन्य कोई रोग हो जावेगा।

(२) जिस दिन प्रश्न किया जाये उसके सात दिन पहले तक तथा आगे के चार दिन तक सूर्य और चन्द्रमा किन ग्रहो से सम्बन्ध रखते थे, रखेंगे यह विचार करना चाहिए। यदि सूर्य इस ११ दिन के समय में सर्वथा शुभयुत, दृष्ट रहा है रहेगा और चन्द्रमा शुभ-युत रहा है, रहेगा तो शुभ फल अन्यथा पापग्रह से सूर्य-चन्द्र का

योग होने पर अशुभ फल कहना चाहिए ।

'प्रश्न भूषण' के अनुसार प्रश्नोपयोगी विशेष योग :

(१) यदि प्रश्न लग्न मेष, वृश्चिक, मकर या कुम्भ हो और अपने स्वामी के अतिरिक्त अन्य पापग्रह से युत या दृष्ट हों और साथ ही अष्टम स्थान भी पापयुत, दृष्ट हो या सप्तम, नवम दोनो स्थानो में पापग्रह हो और चन्द्रमा अष्टम मे हो या पापयुत चन्द्रमा अष्टम मे हो तो शीघ्र ही रोगी का मृत्यु-योग वनता है । इस योग में मुख्य तीन बाते हैं । लग्न का पापाक्रान्त होना और चन्द्रमा का पाहग्रह के साथ अष्टम में होना । यदि चन्द्रमा अकेला अष्टम में हो और सप्तम तथा नवम दोनों स्थानों में पापग्रह हों तो भी पाप-कर्तरी योग बन जाता है ।

(२) यदि प्रश्न के समय (क) पापग्रह द्वादश या अष्टम स्थान मे हों और(ख)साथ ही पापाक्रान्त या पापदृष्ट चन्द्रमा लग्न षष्ठ, सप्तम या अष्टम में हो तो मृत्यु-योग होता है । यदिं ऐसा न हो तो रोग अच्छा होता है ।

(३) यदि चन्द्रमा लग्न में और सूर्य सप्तम में हो तो शीघ्र ही रोगी की मृत्यु होती है ।

(४) यदि मगल मेष राशि में स्थित होकर अष्टम (वृश्चिक) नवांश में हो और चन्द्रमा से युत हो तो रोगी की मृत्यु होती है ।

(५) यदि लग्न से सातवे शुभ ग्रह हों तो रोग-शांति होती है । यदि सप्तम में पापग्रह हों तो रोग-वृद्धि होती है । यदि उभय प्रकार के ग्रह हों तो मिश्रित फल होता है । किन्तु यदि सप्तम में केवल पापग्रह हो और लग्नेश भी पापग्रहो से युत हो तो मृत्यु-रोग समझना चाहिए :

प्रश्नलग्नाद्यदा सप्तमे सद्युते,
रोगिणो भद्रमुक्तं न पापग्रहैः ।
मिश्रखेटैर्विमिश्रं फलं सूरिभि—

स्तत्र लग्नेश्वरे पापयुक्ते मृतिः ॥

(६) यदि लग्नेश्वर निर्बल हो और अष्टमेश बलवान् हो और चन्द्रमा दुर्बल होकर छठे किंवा आठवें स्थान में स्थित हो तो रोगी की मृत्यु होती है।

(७) यदि लग्नेश अस्तगत न हो, अष्टमेश दुर्बल हो और एकादश भाव का स्वामी बलवान् हो तो शीघ्र ही रोग नष्ट हो जाता है और रोगी व्यक्ति दीर्घायु होता है।

ग्रहों से रोग निदान

यदि अष्टम स्थान में सूर्य, मंगल हो तो रक्त और पित्त का प्रकोप, सूर्य व राहु यदि अष्टम या षष्ठ में हो तो कुष्ठ, बुध अष्टम मे हो तो सन्निपात, यदि राहु और शनि दोनो अष्टम मे हो तो वायु-विकार, लकवा आदि, यदि चन्द्रमा और शुक्र दोनों अष्टम मे हो तो सन्निपात। यदि निर्बल पापाक्रान्त शुक्र अष्टम मे हो तो शुक्र-सम्बन्धी रोग व राजयक्ष्मा आदि समझना चाहिए।

नौकरी-विषयक प्रश्न-निरूपण

षष्ठ स्थान से सेवक का विचार किया जाता है और सेवा का भी। यदि कोई यह प्रश्न करे कि मुझे इसी स्वामी के पास रहना होगा या दूसरी जगह नौकरी करनी पड़ेगी तो लग्नेश को देखिये।

(१) यदि लग्नेश केन्द्र मे हो और छठे किंवा बारहवें घर के स्वामी से इत्थशाल करता हो तो दूसरे व्यक्ति के यहाँ जाकर नौकरी करनी पडेगी। यदि इत्थशाल न होता हो तो यहीं नौकरी कायम रहेगी।

(२) लग्नेश यदि वक्री हो और तीसरे या नवे घर मे स्थित किसी ग्रह से इत्थशाल करता हो तो अन्य स्थान मे (अन्य व्यक्ति के पास) नौकरी करनी होगी।

(३) यदि लग्नेश का स्वामी केन्द्र मे हो, और अस्त हो, क्रूर

ग्रह द्वादश, तृतीय या षष्ठ स्थान मे हो तो समस्त जीवन वही नौकरी करता रहेगा (जहाँ इस समय कर रहा है) ।

इस समय का स्वामी अच्छा है या बाद का अच्छा होगा :

यदि कोई यह प्रश्न करे कि जिसके पास इस समय नौकरी मे हैं वह व्यक्ति मेरे लिए विशेष लाभप्रद है या जिसके यहाँ मैं नौकरी करने का विचार कर रहा हूँ वह विशेष लाभप्रद होगा— तो इस समय के स्वामी का लग्नेश से विचार करना चाहिए और भविष्य के स्वामी का सप्तमेश से । यदि लग्नेश का चन्द्रमा से कम्बूल योग होता हो तो इस समय का स्वामी अच्छा है, यदि सप्तमेश का चन्द्रमा से कम्बूल होता हो तो भविष्य का स्वामी अच्छा रहेगा ।

शत्रु मे झगड़े का प्रश्न

इस सम्बन्ध का विशेष विचार आगे बताया जावेगा । यहा केवल 'भुवन दीपक' का निम्नलिखित श्लोक दिया जाता है

विवादे शत्रुहनने रणे संकटके तथा ।
क्रूरे मूर्तौ जयो ज्ञेयः क्रूरदृष्ट्या पराजयः ।।

अर्थात् विवाद में, शत्रु को मारने मे, रण तथा सकट (लड़ाई-झगडे मे) के प्रश्नों में यदि लग्न मे क्रूरग्रह हो तो जय किन्तु यदि लग्न मे क्रूर ग्रहों की दृष्टि हो तो पराजय होती है।

शत्रु के गमन तथा आगमन-सम्बन्धी प्रश्न

(१) यदि प्रश्न-लग्न से चतुर्थ भाव में कर्क, वृश्चिक, कुम्भ या मीन राशि पड़े तो प्रश्नकर्त्ता शत्रु पर विजयी होता है।

(२) यदि चतुर्थ भाव मे मेष, वृष, सिह या धनु के १५ अश से ३०° तक पड़े (केवल धनु का अन्तिम आधा हिस्सा) तो शत्रु भाग जाता है।

(३) यदि पापग्रह पञ्चम या षष्ठ मे हो तो शत्रु की सेना लौट जाती हैं ।

(४) यदि पापग्रह चतुर्थ भाव में हो तो शत्रु संग्राम में हार जाता है।

(५) यदि प्रश्न-लग्न स्थिर हो (२, ५, ८, ११) और चन्द्रमा द्विस्वभाव राशि में हो (३, ६, ९, १२) तो शत्रु की सेना काफी आगे तक आकर भी लौट जाती है।

(६) यदि प्रश्न-लग्न द्विस्वभाव हो (३, ६, ९, १२) और चन्द्रमा चर राशि में हो (१, ४, ७, १०) तो भी उपर्युक्त (५) के अनुसार ही फल होता है।

(७) यदि प्रश्न-लग्न द्विस्वभाव हो (३, ६, ९, १२) और चन्द्रमा स्थिर राशि में हो तो शत्रु गाँव या शहर में प्रवेश कर जाता है।

(८) यदि प्रश्न-लग्न चर हो (१, ४, ७, १०) और चन्द्रमा द्विस्वभाव राशि में हो (३, ६, ९, १२) तो भी उपर्युक्त (७) के अनुसार ही फल होता है।

(९) यदि लग्न स्थिर हो, शनि और बृहस्पति की दृष्टि हो, तो शत्रु नहीं आता। किन्तु यदि (क) उपर्युक्त योग में तृतीय, पंचम और षष्ठ स्थान में खलग्रह हों तो शत्रु के साथ संगम होता है। (ख) यदि (क) में वर्णित योग न हो और उपर्युक्त योग में चतुर्थ में पापग्रह हो तो शत्रु लौट जाता है।

(१०) चन्द्रादित्यौ चतुर्थस्थौ नायाति रिपुवाहिनी।
शुक्रज्ञ गुरवो दृष्ट्वा यस्त्वायाति पृच्छतः॥

अर्थात् (क) यदि सूर्य और चन्द्र चौथे हों तो शत्रु की सेना नहीं आती (ख) यदि बुध, बृहस्पति, शुक्र चतुर्थ हों तो शत्रु की सेना शीघ्र आती है।

(११) चलितो न रिपुर्जीवो मन्दो वाऽपि स्थिरोदये।
चरोदये चेदादित्यो जीवो वा याति सत्वरम्॥

अर्थात् यदि बृहस्पति या शनि लग्न में हों और प्रश्न-लग्न

स्थिर हो तो यह कहना चाहिए कि शत्रु अपने स्थान से नही चला। किन्तु यदि प्रश्न-लग्न चर हो और लग्न में सूर्य या बृहस्पति हो तो शत्रु शीघ्र ही आ पहुँचता है।

---

२८ वाँ प्रकरण

७, ८, ९, भाव-सम्बन्धी प्रश्न

मुकदमे के लिए यात्रा-सम्बन्धी प्रश्न

यदि किसी व्यक्ति का मुकदमा हो और वह पेशी के लिए जा रहा हो तो प्रश्न-लग्न बनाकर निम्नलिखित विचार करना चाहिए।

(१) यदि प्रश्न-लग्न स्थिर हो और लग्न में पापग्रह हो तो भी यात्रा करने वाले की विजय होती है।

(२) यदि चर लग्न हो और लग्न में शुभग्रह हो तो भी 'यात्री' (जाने वाले की)—यात्रा करने वाले की विजय होती है।

(३) यदि चर लग्न में पापग्रह हो तो यात्री की पराजय होती है।

(४) यदि चर लग्न हो और चन्द्रमा स्थिर राशि में हो तो यह सुनने पर भी कि मुदायला नही आवेगा—वह आ जाता है।

(५) यदि प्रश्न-लग्न स्थिर हो और चन्द्रमा चर राशि में हो तो यदि यह भी सुना जाय कि मुदायला आ गया है तो भी वह नही आवेगा।

विवाह तथा स्त्री-सम्बन्धी प्रश्न

स्त्री-लाभ-सम्बन्धी प्रश्न मे लग्नेश, सप्तमेश और चन्द्रमा से

विचार करना चाहिए। यदि इन तीनो मे इत्थशाल हो तो बिना प्रार्थना के ही युवती स्त्री का लाभ होता है।

'प्रश्न शास्त्र' का यह सिद्धान्त है कि जिस-जिस का लग्न या लग्नपति से सम्बन्ध हो (दृष्टि, युति, इत्थशाल अथवा एक-दूसरे के केन्द्र में होने से) उस-उस भाव-सम्बन्धी अनुभव (प्राप्ति) होता है।

यस्य यस्य विलग्पेन सम्बंधो लग्नपेन वा।
दृग्योगकेन्द्रगत्याद्यैः स स भावोनुभूयते ॥

(प्रश्नमार्ग १४-४३)

(२) यदि लग्नेश या चन्द्रमा सप्तम भाव मे हो तो जिस स्त्री से प्रार्थना करता है (जिसे चाहता है और जिसकी कोशिश कर रहा है) वह प्राप्त हो जाती है।

(३) यदि चन्द्रमा और लग्नेश का परस्पर इसराफ हो और चन्द्रमा और सप्तमेश का इत्थशाल हो तो भी स्वय स्त्री का लाभ होता है। (अर्थात् बिना विशेष चेष्टा के)।

(क) यदि अष्टमेश कोई पापग्रह हो और सप्तम मे बैठा हो तो कोई अन्य स्त्री ही बाधा उपस्थित करेगी।

(ख) यदि तृतीयेश पापग्रह हो और सप्तम मे बैठा हो तो भाई के द्वारा विघ्न उपस्थित होगा।

(ग) यदि चतुर्थेश पापग्रह होकर सप्तम मे बैठा हो तो पिता

नोट—उपर्युक्त तीनो योगो मे चन्द्रमा यदि किसी अस्त, पापदृष्ट, या पापी ग्रह से इत्थशाल करे तो स्त्री-लाभ-सम्बन्धी कार्य नष्ट हो जाता है (अर्थात् स्त्री-प्राप्ति नही होती है)। यह जो स्त्री-लाभ-सम्बन्धी कार्य मे विघ्न उपस्थित होगा वह किसके द्वारा? इस प्रश्न का विचार करते समय यह देखना चाहिए कि निम्नलिखित योगों में से कौनसा योग या कौन-कौनसे योग बनते हैं।

से बाधा उपस्थित होकर कार्य-नाश होता है।

(घ) यदि किसी अन्य भवन का स्वामी पापग्रह हो और सप्तम में बैठा हो तो उस-उस सम्बन्धी द्वारा बाधा उपस्थित होगी (जैसे षष्ठेश से मामा, मौसी, चाची आदि, व्ययेश से चाचा आदि। उपर्युक्त जो (क, ख, ग, घ) में बाधा का विचार किया गया है वहाँ यदि सप्तम स्थान में स्थित पापग्रह पर शुभग्रहों की दृष्टि हो तो बाधा होने पर भी अन्ततोगत्वा कार्यसिद्धि तो हो जायगी ऐसा ऊहापोह करके विद्वान् ज्योतिषी को विचार करना चाहिए। यदि किसी शुभ भवन का स्वामी शुभग्रह सप्तम में बैठा हो और सप्तमेश से इत्थशाल करता हो तो उस सम्बन्धी द्वारा स्त्री-लाभ में सहायता प्राप्त होगी। यह निर्णय करना उचित है।

द्रष्टव्य—(भारतीय ज्योतिष में चतुर्थ से माता और दशम से पिता लेते हैं। पाश्चात्य ज्योतिष में चतुर्थ से पिता और दशम से माता लेते हैं। यवन ज्योतिष पाश्चात्य ज्योतिष और भारतीय ज्योतिष की खिचड़ी है। यह प्रश्न-विषयक विचार दोनों प्रकार के ज्योतिष का सम्मिश्रण है इस कारण चतुर्थेश से पिता द्वारा बाधा का विचार किया गया।)

'भुवन दीपक' का मत

स्थाने चतुर्थेसौम्यत्वमापन्ने ललना धृता।
सप्तमे सौम्यतां प्राप्ते प्रश्नः कांता विवाहिता॥
क्रूरिते च चतुर्थे स्यात्परिणीता नितंबिनी।
सप्तमे क्रूरिते वा स्याद्धृतैव हि कुटुंबिनी॥
उभयोः सौम्यतां प्राप्ते द्वे स्तः धृतविवाहिते।
उभयोः क्रूरतां प्राप्ते न धृता न विवाहिता॥
न धृता परिणीता वा योगेऽत्र सुखदायिका।
परिणीता धृता वाऽपि पाश्चात्ये सुखदायिका॥

(श्लोक ९१—९४)

'भुवन दीपक' मे इस बात का विशेष विचार किया गया है कि जो स्त्री प्राप्त होगी वह विवाहिता पत्नी के रूप मे या रखैल के रूप में। वास्तव में इस प्रश्न का उत्तर प्रश्नकर्त्ता स्वय दे सकता है क्योकि वह परिस्थिति से पूर्ण परिचित रहता है। जो स्त्री केवल विवाहिता पत्नी के रूप मे प्राप्त हो सकती है वह रखैल के रूप मे प्राप्त होना सभव नही तथा जिससे विवाह नही किया जा सकता वह केवल रखैल के रूप मे प्राप्त हो सकती है तथापि उपर्युक्त शास्त्रोक्त विचार दिया जाता है।

(१) यदि चतुर्थ स्थान सौम्य ग्रह से शुभयुत हो तो रखैल-प्राप्ति। यदि सप्तम भाव शुभग्रह से युत दृष्ट हो तो विवाह द्वारा स्त्री-प्राप्ति।

(२) यदि चतुर्थ भाव क्रूर ग्रह-युत व दृष्ट हो तो विग्रह द्वारा स्त्री-प्राप्ति। यदि सप्तम स्थान क्रूरयुत दृष्ट हो तो रखैल स्त्री की प्राप्ति।

(३) यदि चतुर्थ और सप्तम दोनो स्थान शुभग्रह युत दृष्ट हों तो विवाह द्वारा तथा रखैल भी दोनो प्रकार की स्त्री-प्राप्ति। यदि चतुर्थ और सप्तम दोनों भाव क्रूरयुत व दृष्ट हो तो न विवाह द्वारा स्त्री-प्राप्ति, न रखैल ही।

(४) चतुर्थ या सप्तम इन दोनो मे से किसी मे जब क्रूर ग्रह होता है तो यदि किसी प्रकार की स्त्री-प्राप्ति हो भी जाये पर सुख प्राप्त नही होता है।

'प्रश्नभूषण' के अनुसार विवाह योग

(१) यदि चन्द्रमा तृतीय, पञ्चम, षष्ठ, सप्तम—इन मे से किसी भाव में हो और सूर्य बुध और बृहस्पति से देखा जाता हो तो विवाहकारक योग होता है।

(२) चन्द्रमा, बुध, बृहस्पति और शुक्र, ये चारो ग्रह यदि प्रश्न-कुण्डली के केन्द्र त्रिकोण—इन छ भावो मे हो तो विवाह-

कारक योग होता है।

(३) यदि प्रश्न-लग्न का स्वामी स्वराशि या उच्चराशि में हो और वह और चन्दमा एक-दूसरे को देखते हो तो शीघ्र विवाह होता है।

(४) यदि लग्नेश सप्तम मे और सप्तमेश लग्न मे हो तो भी शीघ्र विवाह होता है।

स्त्री-पुरुष के परस्पर प्रेम-सम्बधी प्रश्न

यदि कोई पुरुष यह प्रश्न करे कि अमुक स्त्री मुझे प्रेम करती है या नही या कोई स्त्री प्रश्न करे कि अमुक पुरुष मुझे प्रेम करता है या नही तो प्रश्न-कुडली बनाकर लग्नेश और सप्तमेश का विचार करना चाहिए।

(१)यदि लग्नेश और सप्तमेश मित्र दृष्टि से इत्थशाल करते हों तो प्रेम, शत्रु दृष्टि से इत्थशाल करते हों तो कलह। किन्तु यदि शत्रु दृष्टि होने पर भी चन्द्रमा से कम्बूल योग होता हो तो प्रेम ही कहना।

(२) यद्यपि ताजिक में १,४,७,१० इन दृष्टियों को शत्रु दृष्टि कहते हैं तथापि यदि लग्नेश और सप्तमेश एक ही भाव में हों तो परस्पर प्रेम ही कहना।

(३) यदि प्रश्न के समय सूर्य निर्बल हो तो पुरुष के लिए अशुभ, शुक्र निर्बल हो तो स्त्री के लिए अशुभ, दोनों निर्बल हों तो दोनों के लिए अशुभ, दोनों बली हो तो दोनों के लिए शुभ।

(४) लग्नजायाधिपौ स्वस्थौ यदि वा व्यत्ययेन तौ।
दिने दिनेऽधिका प्रीतिर्दम्पत्यो जायते ध्रुवम्॥

(प्रश्न भूषण, ८१–१)

(क)यदि लग्नेश और सप्तमेश अपने-अपने स्थान में हो अर्थात् लग्न में लग्नेश और सप्तम में सप्तमेश या (ख) लग्नेश सप्तम में और सप्तमेश लग्न में तो स्त्री-पुरुष दोनों में प्रतिदिन अधिकाधिक प्रीति होती जाती है।

(५) यदि लग्नेश और सप्तमेश दोनों में मित्र दृष्टि हो अथवा लग्नेश मित्र दृष्टि से सप्तम को देखे और सप्तमेश मित्र दृष्टि से लग्न को देखे तो दम्पती की परस्पर पीयूप-सदृश प्रीति होती है।

परस्परं तदा प्रीति पीयूष-सदृशी भवेत्।

(६) यदि लग्न का स्वामी सप्तम स्थान में हो और प्रश्न-कर्त्ता पुरुष हो तो पुरुष स्त्री का आज्ञाकारी होता है। यदि प्रश्न करने वाली स्त्री हो तो स्त्री पुरुष की आज्ञाकारिणी होती है।

(७) यदि सप्तम स्थान का स्वामी लग्न मे हो और प्रश्न-कर्त्ता पुरुष हो तो स्त्री पुरुष की आज्ञा मे रहती है। किंतु यदि प्रश्न करने वाली स्त्री हो तो उसका पति उस स्त्री की आज्ञा मे रहेगा।

(८) यदि प्रश्न लग्न का स्वामी अपनी उच्च राशि में हो तो प्रश्नकर्त्ता (अपनी स्त्री-पति की अपेक्षा) उच्च कुल या अधिक गुण वाला होता है।

(९) यदि सप्तम भवन का स्वामी अपनी उच्च राशि मे हो तो प्रश्नकर्त्ता की स्वयं की अपेक्षा उसकी स्त्री-पति उच्च कुल की या अधिक गुणशाली होती-होता है।

इस प्रश्न-कुंडली मे प्रश्नकर्त्ता की अपेक्षा उसकी स्त्री निम्न कुल की होगी।

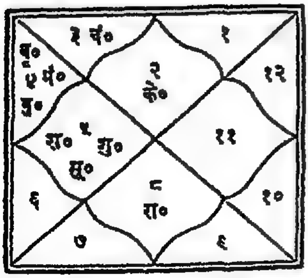

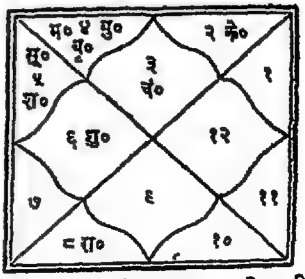

दूसरी प्रश्न-कुंडली मे प्रश्नकर्ता स्त्री है। इस स्त्री की अपेक्षा उस का पति उच्च कुल का होगा।

रूठी हुई स्त्री के आगमन-सम्बन्धी प्रश्न

यदि कोई व्यक्ति प्रश्न करे कि मेरी स्त्री मुझसे रुष्ट होकर चली गई है वह आवेगी या नही तो प्रश्न-कुडली मे निम्नलिखित योग देखने चाहिये :—

(१) यदि लग्न द्वितीय, तृतीय या चतुर्थ स्थान मे सूर्य हो (प्रथम भाव मध्य से चतुर्थ भाव मध्य तक) तो लौटकर नही आती।

(२) यदि साथ मे चतुर्थ भाव मध्य से सप्तम भाव मध्य तक शुक्र हो तो दृढतापूर्वक कहना चाहिए कि नही आवेगी। किंतु यदि शुक्र वक्री हो तो लौटकर आवेगी।

(३) यदि शुक्र सूर्य से योग कर आगे बढ गया हो तो भी लौटकर आती है।

नोट—यदि कोई स्त्री यह प्रश्न करे कि मेरा पति अप्रसन्न होकर चला गया है, लौटकर आवेगा या नही तो चतुर्थ भाव मध्य से सप्तम भाव मध्य तक सूर्य हो और सूर्य शुक्र का इत्थशाल होता हो तो पति लौटकर आवेगा ऐसा कहना चाहिए। यदि सूर्य नवम मे हो या दशम भाव मध्य से लग्न भाव मध्य तक सूर्य हो तो भी पति लौटकर आवेगा ऐसा कहना चाहिए।

कितने दिन मे लौटकर आवेगी या आवेगा यह विचार चन्द्रमा से करना चाहिए।

क्षीणेन्दौ बहुदिवसैः पूर्णविधौ च द्रुतमुपैति।

अर्थात् यदि चन्द्रमा क्षीण हो तो अधिक दिनो मे लौटना होता है। यदि चन्द्रमा पूर्ण हो तो शीघ्र। चन्द्रमा की कितनी कला उदित हैं इसका विचार करते हुए प्रश्न लग्न चर है या स्थिर या द्विस्वभाव इसका सामजस्य कर फल कहना उचित है।

प्रश्न के ग्रथों मे कन्या मे "गुण, दोष, ज्ञान सम्बन्धी प्रश्न" अमुक स्त्री सती है या असती, पातिव्रत्य परीक्षा के प्रश्न आदि पर विवेचना की गई है। परन्तु ऐसे प्रश्न किसी के जीवन-प्रवाह

में काफी उथल-पुथल पैदा कर सकते हैं और बसे हुए घर को उजाड़ सकते हैं। इसलिये यह उचित नहीं कि नवीन ज्योतिष सीखने वाले ऐसे प्रश्नों पर अपना हाथ आजमावें। इस कारण इस विषय के प्रश्नों का विचार यहाँ नहीं दिया जा रहा है। जिनको विशेष जिज्ञासा हो वे 'प्रश्न भूषण' 'प्रश्न भैरव' 'ताजिक नीलकण्ठी' 'भुवन दीपक' आदि देखें।

मुद्दई मुद्दायला सम्बन्धी प्रश्न

(१) यदि कोई इस सम्बन्ध का प्रश्न करे तो लग्न से प्रश्न-कर्त्ता और सप्तमेश से उसके प्रतिद्वन्द्वी का विचार करना चाहिए। यदि लग्नेश मन्दगति हो और केन्द्र में स्थित हो तो प्रश्नकर्त्ता को विशेष बलवान् समझना। यदि सप्तमेश मन्दगति होकर केन्द्र में हो तो उसे (फरीक दोयम) बली समझना।

(२) यदि सग्राम का प्रश्न हो और लग्न स्थित किंवा लग्नेश संयुत ग्रह चन्द्रमा से इत्थशाल करे तो प्रश्नकर्त्ता को बलवान् समझना। यदि सप्तम भाव स्थित या सप्तमेश संयुत ग्रह चन्द्रमा से इत्थशाल करे तो प्रश्नकर्त्ता के प्रतिद्वन्द्वी को बलवान् समझना चाहिए।

(३) मंगल, शनि और गुरु ये मन्दगति ग्रह हैं। बुध, शुक्र, चन्द्रमा ये शीघ्र गति ग्रह हैं। यदि मन्दगति ग्रह अधिक अंश वाले हो तो प्रश्नकर्त्ता की विजय। यदि चन्द्र, बुध, शुक्र अधिक अंश वाले हो तो प्रतिद्वन्द्वी की विजय।

(४) वादिनो विजयप्रश्ने लग्ने क्रूरस्तदा जयः।
यदि स्यात्सप्तमे क्रूरो विजयः प्रतिवादिनाम्।
(प्रश्नभूषण १३–१)

अर्थात् "मेरी जीत होगी या नहीं" यदि ऐसा प्रश्न हो और प्रश्न-कुंडली में क्रूरग्रह लग्न में हो तो पूछने वाले की जय होती है। यदि सप्तम में क्रूर ग्रह हो तो विरुद्ध फरीक की जय होती है यदि

लग्न और सप्तम दोनों मे क्रूर ग्रह हो तो यह विचार करना चाहिए कि अधिक क्रूर लग्न मे है या सप्तम मे। यदि दोनो ग्रह बली हो और इसराफ करते हों, तो भयकर झगड़ा होता है। यदि इत्थशाल करते हो सधि की सम्भावना होती है।

(५) यदि लग्नेश और सप्तमेश शुभ ग्रह से और परस्पर मित्र दृष्टि से इत्थशाल करते हो तो अवश्य सन्धि होती है।

(६) यदि प्रश्नकर्त्ता की जन्म-कुडली उपलब्ध हो तो प्रश्न कुडली बनाकर यह देखना चाहिये कि प्रश्नकर्त्ता का जन्मराशि पति और जन्म-लग्न उपचय(प्रश्न-कुडली के ३,६, १०, ११,)स्थान में पड़ते हैं क्या? यदि ऐसा हो तो प्रश्नकर्त्ता की विजय होती है।

जन्मलग्न जन्मराशिस्तत्पतिः प्रश्नलग्नतः।
ततस्त्र्यायारिमध्यं स्यात् प्रश्न लग्ने तदा जयः॥
(प्रश्न भैरव)

वादी-प्रतिवादी सम्बन्धी कुछ अन्य योग

(१) प्रश्न-कुण्डलीमें यदि लग्नेश उपचय में हो और सप्तमेश से इत्थशाल करे तो दोनों फरीको में सधि होती है।

(२) ऊपर जो वादी-प्रतिवादी के जय-पराजय सूचक योग दिए गए हैं वे यदि कोई भी योग प्रश्न-कुण्डली में न मिलते हो तो लग्नेश और सप्तमेश से ही विचार करना चाहिए कि कौन बली है।

(३) ऊपर बताया गया है कि मंगल, गुरु, शनि प्रष्टा (प्रश्न-कर्त्ता) के ग्रह हैं। और चन्द्र, बुध शुक्र दूसरे फरीक के। यदि दोनों प्रकार के ग्रह अस्त ग्रह से इसराफ करते हों तो बहुत दिन तक झगड़ा रहता है।

(४) यदि लग्नेश मन्दगति हो (सप्तमेश की अपेक्षा) और चन्द्रमा से कम्बूल योग करता हो तो प्रश्नकर्त्ता की विजय होती है। किन्तु ऐसे योग में भी सप्तमेश अस्त होकर केन्द्र मे हो या

कम्बूल योग से दृष्टि करता हो तो प्रश्नकर्त्ता की हानि होगी।

(५) यदि लग्न से नीचे (द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पचम षष्ठ मे) चन्द्र, बुध, शुक्र हों और लग्न से ऊपर (सप्तम भाव मध्य से लग्न भाव मध्य तक) मंगल, गुरु शनि हो तो प्रश्नकर्त्ता को विजय प्राप्ति होती है।

(६) यदि लग्नेश अष्टम मे बैठकर अष्टमेश से इत्थशाल करे तो प्रश्नकर्त्ता की मृत्यु का द्योतक है।

(७) यदि सप्तमेश अपने स्थान से अष्टम अर्थात् प्रश्न-कुण्डली के द्वितीय भाव मे हो और प्रश्न-कुण्डली के द्वितीय भाव के स्वामी से इत्थशाल करे तो शत्रु का नाश होता है। (सप्तम भाव से प्रतिद्वन्द्वी का विचार किया जाता है। इस कारण प्रतिद्वन्द्वी का नाश होगा।

(८) यदि लग्नेश-दशमेश में इत्थशाल हो तो प्रश्नकर्त्ता की जय।

(९) यदि सप्तमेश और चतुर्थेश का इत्थशाल हो तो प्रतिद्वन्द्वी की जय।

(१०) लग्नेश और सप्तमेश इनके बलाबल का विचार करते समय जो ग्रह चर-राशि में हो उसे विशेष बली समझना। द्विस्वभाव राशि में ग्रह पडा हो तो पराजयकारक होता है। (लग्नेश द्विस्वभाव में हो तो प्रश्नकर्त्ता की पराजय, सप्तमेश द्विस्वभाव मे हो तो प्रतिद्वन्द्वी की पराजय।)

(११) यदि लग्नेश द्वादश मे पड़ा हो तो प्रश्नकर्त्ता की पराजय। यदि सप्तमेश अपने स्थान से द्वादश अर्थात् प्रश्न-कुंडली के छठे भाव में पडा हो तो प्रतिद्वन्द्वी की पराजय।

(१२) यदि दशमेश लग्न मे हो तो प्रश्नकर्त्ता को अन्य लोगों से सहायता मिलती है। यदि चतुर्थेश सप्तम में हो तो प्रतिद्वन्द्वियों को अन्य लोगो से सहायता प्राप्त होती है।

(१३)लग्नेश का रवि-चन्द्रमा से इत्थशाल हो तो प्रश्नकर्त्ता को बली समझना। यदि सप्तमेश का रवि-चन्द्रमा से इत्थशाल हो तो उसे बली समझना चाहिए। सूर्य-चन्द्र से इत्थशाल बलका द्योतक है। सूर्य-चन्द्र से इसराफ निर्बलता का द्योतक है।

अष्टम भाव-सम्बन्धी प्रश्न

अष्टम भाव से नदी पार करने का, किले का, शत्रु सकट का, मृतधन-प्राप्ति का तथा मृत्यु का विचार किया जाता है। प्रश्नो के ग्रन्थों में दुर्ग आदि का विस्तार से विचार किया गया है। किन्तु आजकल किले आदि के प्रश्न-दुर्ग भग आदि का अवसर नही रहा। शत्रु-सकट का विचार मुख्य रूप में मुकदमे का रूप धारण कर लेता है। यह विचार पिछले पृष्ठो में किया जा चुका है। रोग और मृत्यु-सम्बन्धी विचार भी छठे भाव-सम्बन्धी प्रश्नो के अन्तर्गत कर चुके हैं।

इस कारण अष्टम भाव-सम्बन्धी कोई विशेष विचार यहाँ नही किया जा रहा है। यदि भू-गर्भ धन-लाभ सम्बन्धी प्रश्न हो (जमीन में गडा हुआ धन मिलेगा या नही) या मृत धन-मिलेगा या नही (विरासत में द्रव्य-प्राप्ति) तथा बीमा कम्पनी से धन प्राप्ति होगी या नही तो मुख्यत. धन स्थान और लाभ स्थान से विचार करना चाहिए। यदि अष्टम स्थान पर शुभग्रह की दृष्टि हो या अष्टम स्थान मे शुभग्रह बैठा हो तो विरासत मे या बीमा कम्पनी से धन प्राप्ति हो सकती है।

मृत्यु-सम्बन्धी प्रश्न मे यदि लग्नेश और अष्टमेश को इत्थशाल हो तो मृत्यु कहना चाहिए। किन्तु नवीन ज्योतिषियो को सहसा 'मृत्यु' का उल्लेख करना उचित नही। 'शरीर-कष्ट है' इन शब्दों से अपना भाव व्यक्त करना उचित है

नवम भाव-सम्बन्धी विचार

यदि कोई प्रश्न करे कि मेरी यात्रा होगी या नही तो लग्नेश

और नवमेश से विचार करना चाहिए।

(१)यदि लग्नेश केन्द्र में हो या नवमेश केन्द्र मे हो और दोनो मे इत्थशाल हो तो यात्रा होगी।

(२) नवमेश लग्न मे हो और लग्नेश से इत्थशाल करता हो तो भी यही फल ।

(३) लग्नेश नवम दृष्टि से नवमेश को देखता हो तो भी यात्रा होती है।

(४) लग्नेश-नवमेश दोनो एक स्थान में हों तो भी यात्रा का योग होता है।

(५)यदि लग्नेश केन्द्र में हो, तृतीय भाव मे पापग्रह न हो और केवल शुभग्रह हो उससे लग्नेश इत्थशाल करे तो भी यात्रा का योग होता है।

(६) लग्नेश और नवमेश में यदि इत्थशाल हो और नवमेश पर पापग्रह की दृष्टि हो तो यात्रा के अन्त में प्रश्नकर्त्ता को कष्ट और धन-हानि ये फल होते हैं।

(७) यदि प्रश्न-कुंडली मे केन्द्रो में क्रूरग्रह हो तो यात्रा नही होती। यदि सप्तम या अष्टम मे क्रूरग्रह हो तो यात्रा नही होती या जिस कार्य के लिए मनुष्य प्रस्थान करता है उसमें विघ्न उपस्थित होता है। यदि दशम मे पापग्रह हो तो राजकुल द्वारा या अपने से ज्येष्ठ व्यक्ति (पिता आदि जिसका प्रश्नकर्त्ता पर अधिकार हो) विघ्न उपस्थित करते हैं।

(८)यदि लग्नेश और नवमेश मे इत्थशाल हो और नवमेश अष्टम में पडा हो तो यात्रा मे कष्ट होता है। यदि नवमेश लग्न में पडा हो तो यात्रा सुखकर होती है।

(९) यदि प्रश्न-कुंडली मे लग्न, सप्तम या अष्टम मे सूर्य हो तो राजाओ की यात्रा नही होती।

लग्नास्तरन्ध्रगो भानुर्यदि वा भूमिनन्दनः ।
गमागमौ नरेन्द्राणां न करोति कदाचन ॥
('प्रश्न भैरव' श्लोक, ४२)

ऊपर श्लोक में लिखा है कि राजाओं की यात्रा नही होती किन्तु अन्य लोगो की यात्रा मे भी इस योग को लगाया जा सकता है।

(१०) 'प्रश्न भैरव' के अनुसार यदि प्रश्न लग्न चर हो और लग्नेश लग्न में या धन स्थान में पापग्रह से युत हो तो अकस्मात् यात्रा होती है। यदि तृतीय स्थान मे सूर्य, चन्द्रमा या मगल से युत हो तो भी निश्चयकारक यात्रा योग बनता है।

(११) यदि प्रश्न लग्न चर हो, चन्द्रमा भी चर राशि में हो और चन्द्र शुभग्रहो से युत या दृष्ट हो तो यात्रा बहुत ही कल्याण-प्रद और जयप्रद होती है।

(१२) यदि प्रश्न लग्न स्थिर हो, चन्द्रमा भी स्थिर राशि मे हो और सौम्यग्रहो से युत दृष्ट हो तो प्रश्नकर्त्ता की यात्रा नही होती। परन्तु अपने स्थान पर ही उसकी प्रसन्नता की वृद्धि होती है।

(१३) यदि प्रश्न-लग्न द्विस्वभाव हो और चन्द्रमा भी द्विस्व-भाव राशि में हो, और चन्द्रमा केवल पापग्रहों से युत दृष्ट हो तो यात्रा करने वाला बहुत कष्ट पाता है।

(१४) यदि प्रश्न-कुण्डली मे ३, ६, ११—इन स्थानो में पापग्रह हों तो जिस कार्य के लिए यात्रा करता है, यदि केन्द्र मे पापग्रह हो तो सिद्ध नही होता। यदि पापग्रह ३, ६, ११ स्थान में हों और चतुर्थ मे शुभग्रह हो तो यात्रा पूरी होने के पहले ही कार्यसिद्धि हो जाती है और प्रश्नकर्त्ता मार्ग से ही लौट आता है।

यात्रा-प्रश्न में किस स्थान से क्या विचार करना

लग्न से मार्ग का अनुभव (रास्ता सुखमय होगा या कष्टमय), चतुर्थ भाव से कार्य का परिणाम, सप्तम स्थान से गम्य स्थान

(जिस स्थान के लिए यात्रा की जा रही है) तथा दशम से कार्य का विचार करना चाहिए। यदि लग्न विषम हो तो मार्ग विषम होता है। यदि लग्न का स्वामी शुभग्रह से युत वीक्षित हो तो यात्रा सुखप्रद होती है। चतुर्थ भाव शुभग्रहो से युत वीक्षित हो तो यात्रा का परिणाम शुभ होता है। सप्तम भाव शुभ हो तो गम्य स्थान पर पहुँचने पर आराम मिलता है। यदि दशम अच्छा हो तो कार्य के लिए जो प्रयत्न या उद्योग किये जाते हैं उनमे सफलता प्राप्त होती है।

यदि यात्रा के प्रश्न मे लग्न या चन्द्रमा पापग्रह से युत वीक्षित हो तो मार्ग में कष्ट और भय की सम्भावना रहती है।

पथिक आवेगा या नहीं इस प्रकार क प्रश्न :—

ऊपर जो यात्रा-सम्बन्धी प्रश्न-विचार बताया गया है उसका उपयोग वहाँ करना चाहिए जहाँ प्रश्नकर्त्ता यह प्रश्न करे कि मेरी यात्रा होगी या नही—यात्रा मे कार्यसिद्धि होगी अथवा नही और यात्रा का परिणाम क्या होगा।" अब दूसरा विषय बताया जा रहा है। यदि कोई मनुष्य बाहर गया हुआ है और उसके सम्बन्ध मे कोई अन्य व्यक्ति प्रश्न करता है कि "वह गया हुआ व्यक्ति आवेगा या नही आवेगा, या कब आवेगा ?" तो प्रश्न के समय की कुंडली बनाकर निम्नलिखित विचार करने चाहिए .

(१) यदि प्रश्न लग्न से चतुर्थ और दशम मे पापग्रह हो तो पथिक का आना रुक जाता है।

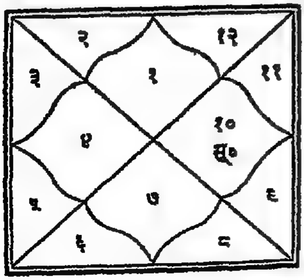

(२) यदि चतुर्थ और दशम मे ग्रह हो तो यह देखना चाहिए कि चतुर्थ स्थान वाला ग्रह पचम मे कब आवेगा या दशम स्थान मे जो ग्रह है वह एकादश में कब

आवेगा। जब ऐसा हो तब पथिक घर आवेगा।

उदाहरण के लिए दशम स्थान में सूर्य है। सूर्य के मकर राशि में १३ अंश हैं तो सत्रह दिन बाद सूर्य कुम्भ राशि में प्रवेश करेगा। इस कारण यह कहना चाहिए कि पथिक (गया हुआ व्यक्ति) १७ दिन बाद घर आवेगा।

(३) यदि पथिक शीघ्र ही घर आने वाला हो तो केवल चन्द्रमा से विचार करना चाहिए। यदि चन्द्रमा लग्न में हो तो यह देखिए कि वह द्वितीय में कब आवेगा। यदि चन्द्रमा चतुर्थ में हो तो यह देखिए कि पंचम में कब आवेगा। यदि चन्द्रमा दशम में हो तो यह देखिए कि एकादश में कब आवेगा। उपर्युक्त तीनों योगों में जब चन्द्रमा अग्रिम राशि में प्रवेश करता है। तब पथिक वापिस आवेगा।

(४) यदि-प्रश्न-कुण्डली में चन्द्रमा सप्तम स्थान में हो तो पथिक रास्ते में है-रवाना हो चुका है, यह कहना चाहिए।

(५) यदि नवमेश किसी भी राशि में हो किन्तु उसके १५ अंश से अधिक हों तो भी वही फल जो ऊपर नं० (४) में बताया गया है

(६) प्रश्न-कुंडली में लग्नेश लग्न से किस भाव में है यह देखना चाहिए। जिस भाव में हो उसे १२ से गुणा करे, जो संख्या आवे उतने दिन में पथिक लौटकर आवेगा। यदि शीघ्र आगमन की सम्भावना हो तो १२ से गुणा न करे। जितनी दूर-लग्न से लग्नेश है उतने दिन में आवेगा।

चरांगे चरभागेऽपि चतुर्थे यदि चन्द्रमाः ।
आयाति तत्क्षणादेव प्रवासी पत्रिकाऽपि च ॥

(प्रश्न भूषण, ४–५)

यदि चन्द्रमा चर राशि और चर नवांश में चतुर्थ भाव मे हो तो प्रवासी (बाहर गया हुआ व्यक्ति) तुरन्त वापस आ जाता है। यदि चिट्ठी विषयक प्रश्न हो कि चिट्ठी (पत्र) कब आवेगी और

उपर्युक्त योग घटित हो तो यह कहना चाहिए कि तत्काल ही चिट्ठी आने वाली है।

ऊपर के श्लोक का एक अर्थ और भी हो सकता है। यदि प्रश्न-लग्न में चर राशि और चर नवांश आवे और चन्द्रमा यदि चतुर्थ में हो तो भी उपर्युक्त योग घटित होना चाहिए।

(८) यदि बृहस्पति, शुक्र या चन्द्रमा चतुर्थ में हो तो प्रवासी शीघ्र ही वापिस आता है।

(९) यदि बृहस्पति और शुक्र प्रश्न-कुण्डल के द्वितीय और तृतीय भाव में हो (दोनों द्वितीय में या दोनो तृतीय मे या एक द्वितीय मे एक तृतीय में) तो पथिक वापस घर आ पहुँचा है। यह कहना चाहिए।

(१०) यदि प्रश्न-लग्न चर हो और उसमे बुध, शुक्र, या शनि लग्न मे हो तो प्रवासी (गया हुआ व्यक्ति) शीघ्र लौट कर आवेगा —यह कहना चाहिए। यदि चर लग्न मे सूर्य हो तो भी यही फल होता है। ऊपर जो बुध, शुक्र, शनि का फल बताया गया है वह तभी घटित होता है जब वे मार्गी हो अर्थात् वक्री न हो।

प्रवासी के प्रश्न में किस स्थान से क्या विचार करना

प्रश्न-लग्न से स्थानच्युति, चतुर्थ से वृद्धि, सप्तम से निवृत्ति, (यात्रा से वापिस लौट आना) और दशम से प्रवास का विचार करना चाहिए।

यदि प्रश्न लग्न चर हो और शुभ ग्रह से युत दृष्ट हो तो शीघ्र कार्यसिद्धि होती है। यदि स्थिर लग्न हो तो कार्यसिद्धि सम्भव नहीं होती। यदि द्विस्वभाव लग्न हो और शुभ ग्रह से युत, वीक्षित हो तो कार्यसिद्धि विलम्ब से हो जाती है। यदि पापग्रह से युत वीक्षित हो तो कार्यसिद्धि नहीं होती।

पथिक सम्बन्धी अनिष्ट योग

(१) यदि प्रश्न-कुण्डली मे लग्नेश और चन्द्रमा अष्टमेश

सहित छठे या सातवे स्थान मे हो तो पथिक की बाहर ही मृत्यु हो जाती है, वह लौटकर नही आता है।

(२) यदि प्रश्न-लग्न मेष, वृषभ, कर्क, धनु या मकर हो और प्रश्न-लग्न शुभग्रह से युत वीक्षित हो या केन्द्र मे पापग्रह पडे हों तो भी प्रवासी को दुःख-सताप होता है।

पथिक सम्बन्धी कुछ अन्य योग

यदि पथिक सम्बन्धी प्रश्न किया जावे कि—

(१) पथिक आवेगा या नही।
(२) वह मर तो नही गया है।
(३) उसका द्रव्य नष्ट तो नही हो गया है।
(४) वह बीमार तो नही है।
(५) उसकी पराजय तो नही हो गई है।

इस प्रकार के प्रश्न में यदि स्थिर लग्न आवे तो उपर्युक्त पाँचो प्रश्नो के उत्तर मे कहना चाहिए नही। यदि चर लग्न हो तो विपरीत फल होता है। यदि द्विस्वभाव लग्न हो तो मिश्रित फल। मिथुन का पूर्वार्द्ध स्थिर का फल करता है अपरार्द्ध चर का। कन्या, धनु और मीन का भी मिथुन की भाँति ही फल समझना चाहिए। विशेष यह है कि यदि द्विस्वभाव लग्न शुभग्रहो से दृष्ट हो तो शुभ फल यदि पापग्रहो से युत वीक्षित हों तो अशुभ फल। जिस प्रकार यहाँ चर, स्थिर द्विस्वभाव से विचार किया गया है उसी प्रकार चन्द्रमा (चर, स्थिर या द्विस्वभाव में है) से भी विचार करना चाहिए।

भाग्य-सम्बंधी प्रश्न

नवम स्थान भाग्य स्थान है। इससे भाग्य तथा धर्म-सम्बन्धी विचार भी किया जाता है। यदि प्रश्न केवल धन-विषयक हो तो द्वितीय तथा एकादश से विचार करना चाहिए किंतु यदि भाग्य-सम्बन्धी प्रश्न हो या धर्म-सम्बन्धी प्रश्न हो तो लग्न और नवम तथा लग्नेश और नवमेश से विचार करना चाहिए। शुभग्रहो से

युत, वीक्षित होने से शुभ फल, पापग्रहों से युत वीक्षित होने से अशुभ फल। वर्ष में जो इत्थशाल आदि षोडश योग बताये गये हैं उनका प्रश्न-कुण्डली में भी उपयोग करना चाहिए। यदि कोई धर्म-सम्बन्धी प्रश्न करे कि किस देवता का अनुष्ठान करने से मुझे सफलता प्राप्त होगी तो नवम स्थान पर जिन ग्रह की मित्र-दृष्टि हो या नवम स्थान में जो ग्रह हो उसके अधिष्ठाता-देव विग्रह की उपासना विशेष फलीभूत होगी यह कहना उचित है। किस ग्रह से किस देवता का विचार करना यह विस्तृत विचार है। जिज्ञासु पाठक इस सम्बन्ध में हमारा लिखित 'भागवद् भक्ति और नवग्रह' नामक लेख देखें। यह 'कल्याण' में छप चुका है।

२६वाँ प्रकरण

१०, ११, १२, भाव-सम्बन्धी प्रश्न

दशम भाव-सम्बन्धी प्रश्न

दशम स्थान कर्म स्थान है। मनुष्य की पद-प्राप्ति, पदोन्नति मान-प्राप्ति आदि का विचार दशम में किया जाता है। किंतु यदि कोई यह प्रश्न करे कि इस 'शहर' में जाने से या जिस शहर में रह रहा हूँ उस शहर में मुझे लाभ होगा या नहीं तो प्रश्न-कुण्डली में निम्नलिखित विचार करना चाहिए।

(१) यदि द्वितीयेश वक्री होकर लग्न में हो तो उस शहर में रहने से कार्य-सिद्धि नहीं होती।

(२) यदि द्वितीयेश अतिचारी हो तो उस शहर में बहुत दिन रहने पर भी कार्य-सिद्धि नहीं होती। अतिचारी की परिभाषा २५८ पृ० पर दी गई है।

(३) यदि द्वितीयेश तृतीय या नवम स्थान में हो तो उस शहर में शीघ्र कार्य सम्पन्न कर मनुष्य अपने शहर को वापस आ जाता है।

(४) यदि द्वितीयेश प्रथम, दशम या एकादश भाव में हो तो शुभ फल समझना चाहिए।

(५) यदि द्वितीयेश क्रूरग्रह-सहित चतुर्थ में हो तो कलह होता है।

(६) यदि द्वितीयेश क्रूरग्रह-सहित सप्तम में हो तो मार्ग मे विघ्न होता है।

(७) इस सम्बन्ध मे 'प्रश्न भैरव' का निम्नलिखित मत है

धनाधिपो वा यदि लग्नगश्चे-
द्धनस्थितो वा दशम स्थितो वा।
तृतीयगे वा नवमे दिनेशे
कार्यं शुभं सिद्धयति पृच्छकस्य ।।

अर्थात् यदि प्रश्न-कुण्डली मे धनस्थान का स्वामी लग्न, द्वितीय या दशम स्थान मे हो और सूर्य तृतीय या नवम मे हो तो प्रश्न-कर्त्ता को सिद्धि होती है।

पद-प्राप्ति सम्बन्धी प्रश्न

दशम भाव को राज्य स्थान भी कहते हैं। पहले भारतवर्ष मे छोटे-बडे हजारों राज्य थे। छोटी-छोटी रियासतो के मालिक भी अपने को राजा कहते थे। दस-दस हजार रुपये सालाना की आमदनी वाले भी अपने को राजा कहते थे और अपने कुल के अनुसार यदि कोई छोटी जमीदारी का मालिक हो जाता तो उसे

नोट—जब कोई ग्रह एक वर्ष में कई बार वक्री-मार्गी होता हुआ अपनी स्वाभाविक गति से जितनी राशियों में भ्रमण करना चाहिए उससे अधिक राशियों में भ्रमण करता है—अधिक चलता है तो उसे अतिचारी कहते हैं।

राज्यप्राप्ति के बराबर हर्ष होता था। इसी प्रकार यदि किसी को अच्छी सरकारी नौकरी मिल जाती थी तब वह भी अपने को पदाधिकारी मानता था। इसलिए इन सब बातों का विचार राज्य भाव से किया जाता था। अब रियासतें और जमीदारियाँ तो नष्ट हो रही हैं किन्तु उच्चपद प्राप्ति का विचार या अधिकार-प्राप्ति का विचार दशम स्थान से ही करना उचित है।

(१) यदि लग्नेश का मित्र दृष्टि से दशमेश से इत्थशाल हो तो उच्चपद प्राप्ति होती है।

(२) यदि लग्नेश दशम में हो और दशम स्थान का स्वामी लग्न में हो तथा लग्न में कोई क्रूरग्रह न हो तो जिस पद के विषय में प्रश्न किया गया है उसकी प्राप्ति होती है।

(३) यदि लग्न में कोई शुभग्रह हो और वह दशमेश से इत्थशाल करे तो भी पद-प्राप्ति।

(४) यदि बलवान् मन्दगति ग्रह चतुर्थ स्थान में हो और क्रूरग्रह से शत्रु दृष्टि से दृष्ट हो तो अपवाद (बदनामी) प्राप्ति होती है। किन्तु शुभ क्रूरग्रह से दृष्ट न होकर शुभग्रह से मित्र दृष्टि से दृष्ट हो तो सुयश प्राप्त होता है।

(५) यदि चन्द्रमा निर्बल हो और (लग्नेश तथा राज्येश में) मंदगति ग्रह भी बलहीन हो तो लग्नेश और दशमेश का इत्थशाल होने पर भी बहुत भ्रमण करने के बाद पद-प्राप्ति होती है।

(६) यदि लग्नेश स्वगृही हो और मंगल मकर का हो तो पदप्राप्ति होती है।

(७) यदि लग्नेश और दशमेश में इत्थशाल हो और चन्द्रमा

नोट— ऊपर जो इत्थशाल के तीन योग बताये हैं उनमें यदि मन्दगति ग्रह पापग्रह पीड़ित हो (अर्थात् पापग्रह से युक्त या दीप्तांश के अन्तर्गत वीक्षित हो) तो पदप्राप्ति निकट आकर भी हाथ नहीं आती। अर्थात् पद-प्राप्ति नहीं होती।

प्रथम, चतुर्थ, सप्तम या दशम में स्थित होकर उन दोनों से कम्बूल योग करता हो तो उत्तम पद-प्राप्ति होती है।

(८) जिस राशि में लग्नेश हो उस राशि का स्वामी यदि अशुभ स्थान में हो (अर्थात् ६, ८, १२ या नीच राशि में या अस्त-गत हो) तो कार्य नही बनता।

(९) यदि प्रश्न लग्न का स्वामी अस्त हो तो बहुत क्लेश और उद्योग करने पर सम्भवतः कार्य बने। किंतु यदि इस प्रकार के अस्त लग्नेश को क्रूरग्रह दशम दृष्टि से देखता हो तो कलह होता है।

मेरा पद दृढ़ रहेगा या नहीं

चतुर्षु केन्द्रेषु यदाऽर्क पुत्रः
स्थाने तु कस्मिंश्चिदतो निवेद्यम्।
पदं स्थितं वा तनुवित्त नाथौ
युक्तेक्षितौ स्याद्विपरीतहानिः॥

(प्रश्न भैरव—८९)

(१) अर्थात् यदि प्रश्न-कुण्डली में शनि प्रथम, चतुर्थ, सप्तम या दशम में हो तो पद-प्राप्ति को स्थिर समझना चाहिये।

(२) यदि लग्नेश व धनेश दोनो एक ही राशि में हो या इन दोनो में दृष्टि हो तो पद-प्राप्ति स्थिर रहती है।

(३) आचार्य नीलकंठ के मत से यदि कोई स्थान-प्राप्ति के बाद यह पूछे कि कैसी दशा रहेगी तो लग्न से शरीर का विचार करे, सप्तम से गृह-कर्म का, दशम से पद (राज्य का), एकादश से मित्र का, चतुर्थ से कार्य की समाप्ति या परिणाम का विचार करना चाहिए। द्वितीय से धन का, तृतीय से नौकर का और षष्ठ से शत्रुओ का विचार करे। जो स्थान शुभग्रह युत दृष्ट हो उसका शुभ फल और जो क्रूर ग्रहो से युत दृष्ट हो उसका अशुभ फल

नोट—पद-प्राप्ति के योगों में यदि चन्द्रमा कम्बूल योग करे और कर्क का चन्द्रमा हो तो विशेष उच्चपद की प्राप्ति होती है।

समझना चाहिए।

(४) यदि लग्नेश नीच और दुर्बल हो तो अशुभ फल होता है। अर्थात् पद-प्राप्ति चिरस्थायी नहीं होती। यदि चन्द्रमा और लग्नेश का कम्बूल योग होता हो तो कुछ शुभ फल होता है। किंतु यदि लग्नेश पापाक्रांत हो तो अशुभ परिणाम ही समझना चाहिए।

(५) यदि लग्नेश व दशमेश एक राशि में हो और एक मंद गति ग्रह केन्द्र में हो तो पद स्थायी रहता है। किंतु यदि मन्दगति ग्रह वक्री हो या चतुर्थ में हो तो पदच्युति होती है। यदि चन्द्रमा का कम्बूल हो तो पुन. पद-प्राप्ति हो जाती है।

(६) यदि लग्नेश और दशमेश में इशराफ हो तो पद स्थायी नहीं रहता।

लाभ-सम्बन्धी प्रश्न

लाभ अनेक प्रकार से होता है। इसमें सर्वप्रथम क्रय-विक्रय द्वारा लाभ होगा या नहीं इस प्रकार के प्रश्नों का विचार किया जाता है। प्रश्न-कुण्डली में लग्न-पति से माल खरीदने वाले का विचार करें और सप्तमेश से माल बेचने वाले का। जो व्यापारी प्रश्न कर रहा है वह यदि नया माल खरीदना चाहता है है और उसका प्रश्न यदि यह है कि, "माल खरीदूँ या नहीं, लाभ होगा या नहीं" तो प्रश्न-कुण्डली के लग्न से विचार करें। यदि लग्न और लग्नेश शुभ-ग्रह-युत हो तो खरीदने से लाभ होगा। यदि व्यापारी माल बेचना चाहता है तो एकादश भाव से विचार करें। यदि एकादश भाव और एकादश भाव का स्वामी, शुभग्रह युत दृष्ट हो तो माल बेचने में लाभ होगा।

तेजी-मंदी सम्बन्धी प्रश्न :

तेजी-मंदी प्रश्न में पहले यह विचार करना चाहिए कि कौन-सा ग्रह किस वस्तु का अधिष्ठाता है। इसका विवरण देखिये

"व्यापार रत्न*" में। जिस वस्तु का विचार करना हो उसका अधिष्ठाता ग्रह बली है या नहीं। यदि निर्बल है तो वह वस्तु सस्ती रहेगी।

साधारण तेजी-मदी के प्रश्न में लग्न से विचार करे। लग्न का स्वामी या शुभ ग्रह जब तक (जितने महीने या दिनों तक) लग्न मे रहे या लग्न को देखते रहे उतने काल तक मन्दी रहती है। यदि लग्न क्रूर दृष्ट, क्रूराक्रान्त हो तो तेजी होती है।

अचिन्तित लाभ योग

यत्रान्यलाभयोगो न भवति नवमं च भवति शुभदृष्टम्।
तत्राचिंतितलाभः प्रष्टुर्गणकेन निर्देश्यः॥

("भुवन दीपक"—१०३)

अर्थात यदि लाभ का प्रश्न हो और कोई विशेष लाभ का योग दिखाई न दे किंतु नवम भाव बलवान् हो और शुभ दृष्ट हो तो अचिंतित लाभ होता है।

लाभ-सम्बन्धी अन्य प्रश्न

(१) यदि लग्नेश और लाभेश में इत्थशाल हो तो लाभ होता है।

(२) यदि लाभेश केन्द्र में स्थित होकर चन्द्रमा से कम्बूल योग करे तो लाभ होता है।

(३) लग्नेश और लाभेश में यदि इत्थशाल हो व इन दोनों में मंदगति ग्रह क्रूराक्रान्त हो तो लाभ होकर नष्ट भी हो जाता है। यदि शुभ ग्रह से भी युत व दृष्ट हो तो मिश्रित फल कहना।

---

*यह पुस्तक गोयल एण्ड कम्पनी, दरीबा, दिल्ली–६ से प्राप्त हो सकती है।

नोटः—उपर्युक्त योगों में यदि लाभेश चर राशि में हो तो शीघ्र लाभ, स्थिर राशि में हो तो देर से लाभ और द्विस्वभाव राशि में हो तो मिश्रित फल कहना।

गुप्त कार्य सम्बन्धी, प्रश्न

गुप्तं कार्यमिदं मे सिद्ध्यति लग्नेश्वरेऽथ चन्द्रमसि ।
शुभमुथशिलगे केन्द्र तन्निकटे वाऽथ सिद्धिः स्यात् ॥

("ताजिक नीलकंठी"--प्रश्न खंड--१४१)

अर्थात् कोई प्रश्न करे कि मैंने जो कार्य मन मे विचार रखा है वह होगा या नही तो लग्नेश और चन्द्रमा का शुभग्रह से इत्थशाल होता है या नही यह विचार करना चाहिए । यदि केन्द्र या पणफर में स्थित होकर शुभग्रह से इत्थशाल करते हो तो कार्यसिद्ध होगा ।

मित्र-सम्बन्धी विचार

लाभ स्थान से मित्रों का विचार किया जाता है । मित्र-प्राप्ति या मित्र से प्रीति बनी रहेगी या नही इस प्रकार के मित्र सम्बन्ध प्रश्नो में यदि--

(१) लग्नेश और एकादशेश एक-दूसरे के स्थान मे स्थित हों, या

(२) लग्नेश और एकादशेन मे मित्र दृष्टि और इत्थशाल हो तो प्रीति और मित्र प्राप्ति कहना ।

(३)यदि लग्नेश और लाभेश दोनों (क) केन्द्र मे हो तो पहले से ही प्रीति रहती है । यदि (ख) पणफर मे हो तो आगे प्रीति होगी । (ग) यदि आपोक्लिम में होकर दोनो इत्थशाल करते हो तो भी अत्यन्त प्रीति कहना ।

व्यय सम्बन्धी विचार

यदि व्यय स्थान का स्वामी मगल हो और नीच राशि का हो तो परस्त्री के लिए व्यय होता है । यदि बृहस्पति व्ययेश हो तो धर्म-कार्य में व्यय । सूर्य व्ययेश हो तो गुरु-पूजा मे । शुक्र व्ययेश हो तो विलास में, बुध व्ययेश हो तो वाणिज्य में। यदि व्ययेश का चन्द्रमा से इत्थशाल हो और व्ययेश तीसरे , छठे, ग्यारहवें स्थान मे हो तो विशेष रूप से व्यय कहना चाहिए ।

(२) यदि लग्नेश और व्ययेश को इत्थशाल हो तो व्यय-होता है ।

(३) शुभग्रह व्यय स्थान में हो तो शुभ व्यय-शुभग्रह की व्यय स्थान पर दृष्टि हो तब भी यही फल ।

(४) पापग्रह व्यय स्थान मे हो तो असद् व्यय । पापग्रह की व्यय स्थान पर दृष्टि हो तब भी यही फल ।

नोट.—किस प्रकार का व्यय होगा यह विचार करते समय यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि किस भवन का स्वामी व्यय स्थान में स्थित है। उस भवन सम्बन्धी व्यय होता है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित प्रश्न-कुंडली में सूर्य, शनि और मगल द्वादश स्थान में हैं ।

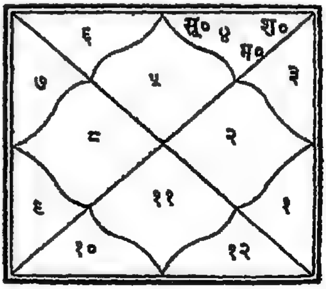

सूर्य प्रथम भाव का स्वामी है। और व्यय में है इस कारण शरीर-सम्बन्धी (इलाज आदि) मे व्यय करावेगा। मंगल चतुर्थ और नवम का स्वामी है । भूमि, मकान तथा यात्रा मे व्यय करा सकता हैं । शनि छठे तथा सातवे स्थान का स्वामी हैं—सट्टा व्यापार मे हानि, शत्रु पीड़ा तथा नौकरो के गबन द्वारा घोर व्यय करा सकता है । सूर्य-मंगल राज-दड भी कराते हैं । इस कारण इनकम टैक्स आदि में दंड लग सकता है । शनि-मगल का योग होने से विशेषकर शनि के षष्ठेश और सप्तमेश होने से फौजदारी मुकदमे मे भी व्यय हो सकता है । लग्नेश सूर्य हैं । यदि सूर्य शनि से इत्थशाल करता हो और ऐसे व्यक्ति को रोग टी० वी० आदि की सम्भावना हो तो

द्वादश से एकांतवास का विचार भी किया जाता है, इस कारण यह भी कह सकते हैं कि इस व्यक्ति को किसी एकात स्थान, किसी जल प्रदेश के किनारे (क्योंकि कर्क जलराशि है) रहना पडेगा। व्यय के हजारो प्रकार हैं। मनुष्य की परिस्थिति से जो बात मेल खाये वह कहनी चाहिए ।

शत्रु सम्बन्धी प्रश्न

द्वादश स्थान से शत्रु निग्रह का भी विचार किया जाता है।

(१) यदि षष्ठेश बली हो तो शत्रु को प्रबल समझना चाहिए।

(२) यदि द्वादशेश बली हो तो प्रश्न-कर्त्ता को बली समझे।

(३) यदि प्रश्न-कर्त्ता शत्रु का नाम उच्चारण करे और सप्तमेश बली हो तो शत्रु को बली समझना चाहिए।

(४) यदि शत्रु का नाम उच्चारण न करे और द्वादशेश बली हो तो प्रश्न-कर्त्ता की विजय होती है।

३०वां प्रकरण

द्रेष्काण स्वरूप से चोर का निर्णय

प्रश्न के सम्बन्ध मे किस प्रकार विचार करना चाहिए यह पहले बताया जा चुका है। प्रश्न-सम्बन्धी अनेक संस्कृत के ग्रथ हैं, 'प्रश्न मार्ग', 'प्रश्न भूषण', 'प्रश्न, 'वैष्णव' 'केवल ज्ञान', 'प्रश्न-चूड़ामणि' आदि।

इसके अतिरिक्त "बृहज्जातक" के २५वे अध्याय में प्रत्येक 'द्रेष्काण' का स्वरूप बताया गया है। प्रति राशि मे ३ द्रेष्काण होते

होते हैं। इस प्रकार ३६ द्रेष्काणो का पृथक्-पृथक् स्वरूप बताकर आचार्य (वराह मिहिर) कहते हैं कि कोई वस्तु चोरी चली जावे तो 'चोर' का स्वरूप द्रेष्काणके स्वरूप के तुल्य होता है। इस आधार पर 'चोर' का हुलिया बताना चाहिए। जिस 'द्रेष्काण' में सूर्य हो या चन्द्रमा हो या जाने वाला हो उस 'द्रेष्काण' से भी प्रश्न के उत्तर में सहायता लेनी चाहिये,

द्रेष्काणों के स्वरूप

मेष का प्रथम द्रेष्काण—पुरुष, जिसके कमर मेंस फेद वस्त्र लिपटा हुआ है। यह पुरुष स्वयं काले रग का रौद्र(भयकर) फरसा (शस्त्र)हाथ में लिये है। जवान है और औदार्यादि गुण सम्पन्न है। दूसरे की रक्षा मे तत्पर है। इसके नेत्रो में ललाई है।

मेष का द्वितीय द्रेष्काण—लाल वस्त्र पहने हुए युवती है। इसके हृदय मे भूषण की इच्छा है। इसका बडा पेट है। घोडे की तरह लम्बा मुख (चेहरा) है। एक पैर पर खड़ी है (दूसरे पैर को हिला रही है या उस पैर में कुछ दोष है)। प्यासी है।

मेष का तृतीय द्रेष्काण—क्रूर कला-कुशल पुरुष है। कपिल वर्ण है। हाथ मे दण्ड है। लाल वस्त्र धारण किये है। घातक प्रवृत्ति का है। अग्नि क्रिया (आग लगाना, गोली चलाना) आदि कार्य करने को उद्यत है।

वृषभ का प्रथम द्रेष्काण—स्त्री है, इसके सिर के केश कुछ घु घराले और छिन्न है। इसका पेट घड़े की तरह है। इसका वस्त्र (साड़ी) एक स्थान पर जला है। अर्थात् इस द्रेष्काण का अग्नि से सम्बन्ध है। इसे भूख-प्यास लगी है। इसे आभूषणों की बहुत इच्छा है।

वृषभ का द्वितीय द्रेष्काण—खेत, धान्य, गृह, गाय आदि कला-विद्याओं की जानकारी युक्त पुरुष। गाड़ी तथा हल चलाने में कुशल।

ऊचे कधे हैं। शरीर वृषभ (बैल के) समान है मुख बकरे के समान, कपडे मैले पहने हुए हैं और इसे भूख लगी है।

वृषभ का तृतीय द्रेष्काण–हाथी की तरह बडा शरीर, बड़े दाँत, शरभ (पक्षिराज) की तरह पैर (शीघ्र चलने वाला), कुछ पीला शरीर, भेड़ के समान शरीर पर बडे रोम। मृग के समान शरीर पर विचित्र रोम। देखने में व्याकुल चित्त।

मिथुन का प्रथम द्रेष्काण–सुन्दर स्त्री–सिलाई (कसीदा) आदि कार्य करने को उत्सुक। आभरण (वस्त्र, भूषण) कार्य में चित्त लगा हुआ है। इसके सन्तान नही हैं (या नष्ट हो गई हैं) ऋतुमती (रजस्वला) है।

मिथुन का द्वितीय द्रेष्काण–बाग में स्थित, कवच धारण किये, हाथ मे धनुष लिये, शूर, गरुड के समान मुख, क्रीड़ा, अलकार तथा स्वय के विषय में (अपने स्वार्थ सम्बन्ध मे) चिंता कर रहा है।

मिथुन का तृतीय द्रेष्काण–वरुण देवता की भाँति बहुत रत्नो से भूषित धनुष, तरकस तथा कवच धारण किये हुए, नाच, बाजा बजाने तथा कलाओं मे विद्वान एव कवि।

कर्क का प्रथम द्रेष्काण–पत्र, मूल, फल को धारण कियेबडा शरीर जगल मे चन्दन वृक्ष की इच्छा रखने वाला, बहुत शीघ्रगामी। वराह (सूअर) की तरह मुख वाला घोडे के समान गर्दन।

कर्क का द्वितीय द्रेष्काण–इसका स्वरूप स्त्री की भाँति है। कमल पुष्पो से अलकृत। सिर पर सर्प हैं, कर्कशा, युवती है, जगल मे जाकर रोती है। पलाश (वृक्ष विशेष) की शाखा (डाली) को पकडे हुए है।

कर्क का तृतीय द्रेष्काण–सर्पो से वेष्टित पुरुष नाव में बैठकर अपनी भार्या के भरणपोषण निमित्त जा रहा है। सुवर्ण के आभूषण पहने है, गोल और चौडा-चपटा चेहरा है।

सिंह का प्रथम द्रेष्काण—शाल्मलि वृक्ष के ऊपर गृद्ध है। वहाँ गीदड़ तथा कुत्ता भी है। मैले वस्त्र पहने हुए—माता-पिता से बिछुड़ा हुआ मनुष्य रो रहा है।

सिंह का द्वितीय द्रेष्काण—घोड़े के सदृश बड़ा और चौड़ा शरीर; सिर पर सफ़ेद माला पहने मनुष्य है। वह काला मृगचर्म तथा कम्बल ओढ़े है। वह शेर की तरह दुस्साध्य है। हाथ में आयुध धारण किये है। इस मनुष्य की नाक आगे से झुकी है।

सिंह का तृतीय द्रेष्काण—ऋक्ष (रीछ) की तरह चेहरा है। वानर के समान चेष्टा है। इस पुरुष के बड़ी-बड़ी दाढ़ी मूँछ हैं। इसके हाथ में डण्डा, फल और माँस है। इसके सिर के केश घुँघराले हैं।

कन्या का प्रथम द्रेष्काण—कन्या है; हाथ में घड़ा है जिसमें पुष्प भरे हैं। मैले कपड़े पहने है। इसकी मनोभिलाषा है कि द्रव्य और वस्त्र प्राप्त हो। गुरु के कुल की ओर जा रही है।

कन्या का द्वितीय द्रेष्काण—पुरुष है; समस्त शरीर में रोम हैं। इसका वर्ण श्याम है। सिर पर वस्त्र लिपटा हुआ है। हाथ में कलम है। आय-व्यय का हिसाव लिखने में तत्पर है। हाथ में धनुष है।

कन्या का तृतीय द्रेष्काण—कन्या है (जो अभी रजस्वला नहीं हुई है) धुला हुआ, गीला उत्तम वस्त्र पहने है। उच्च शरीर है। हाथ मे कुम्भ (घड़ा) तथा कटच्छ (कड़छली) है। मन्दिर या पूजा के कमरे की ओर जा रही है।

तुला का प्रथम द्रेष्काण—पुरुष है। राजमार्ग (वाजार) की दुकान मे स्थित है। हाथ में नापने, तोलने (गज या तराजू) का यंत्र है। इस कार्य मे वह वहुत दक्ष है। यह सोच रहा है कि इस वर्तन को किसे वेचूँ ?

तुला का द्वितीय द्रेष्काण—पुरुष है। मुख गृद्ध के समान है। कलश लेकर जाने की इच्छा करता है। यह पुरुष भूखा और प्यासा है और अपने मन में अपनी स्त्री तथा पुत्रो के सम्बन्ध मे विचार कर रहा है।

तुला का तृतीय द्रेष्काण– पुरुष है। धनुष धारण किए हुए है। रत्नो से अलंकृत है। सोने का तरकस तथा कवच धारण किए है किन्तु स्वय विकृत रूप है और जगल मे मृगो को डरा रहा है।

वृश्चिक का प्रथम द्रेष्काण—स्त्री है। वस्त्र और आभूषण से विहीन स्त्री, महा समुद्र के किनारे से आ रही है। इस स्त्री के दोनो पैरो मे सर्प लिपटे हैं।

वृश्चिक का द्वितीय द्रेष्काण–यह स्त्री है। कछुए के समान गोल और घडे के समान बड़ा पेट है। अपने पति के लिए स्थान सुख चाहती है। इसका सारा शरीर सर्पो से आवेष्टित है।

वृश्चिक का अन्तिम द्रेष्काण —यह पुरुष है। कछुए के समान चपटा और बड़ा मुख है। गर्दन से ऊपर नर (मनुष्य) का रूप और गले से नीचे सिंह का। कुत्ते मृग, शृगाल (गीदड) सूअरो आदि के लिए भयकर है। मलय देश से इसका सम्बन्ध है।

धनु का प्रथम द्रेष्काण—पुरुष है। गर्दन से ऊपर मनुष्य की भाँति है और नीचे का शरीर घोडे की भाँति है, वस्त्र धारण किए, हाथ मे बडा धनुष है, और तपस्वी तथा यज्ञोपयोगी पदार्थो की रक्षा करता है।

धनु का द्वितीय द्रेष्काण—स्त्री है। सोने के समान या चम्पक के पुष्प के समान उज्वल वर्ण वाली मनोरमा स्त्री है। इसका सुन्दर रूप है और यह सुन्दर आसन पर विराजमान है। समुद्र के रत्न, मोती, मूँगा आदि को हाथ से इतस्तत. कर रही है। यदि

प्रश्न-लग्न मे धनु-लग्न के दस अंश से लेकर बीस अंश तक कोई अंश आवे तो द्वितीय द्रेष्काण होने से यह कहना चाहिए कि किसी प्रतिष्ठित गौरांगी सुन्दरी ने चोरी की है।

धनु का तृतीय द्रेष्काण—पुरुष है, उत्तम आसन, डंडा लिए बैठा है। सुन्दर रेशमी वस्त्र तथा चर्म धारण किए हुए है। इसके बड़ी बड़ी दाढ़ी मूँछ हैं और शरीर का वर्ण चम्पे के पुष्प के समान है।

मकर का प्रथम द्रेष्काण—पुरुष है। इसका भयंकर मुख है और मगर के समान दाढ़ है। नीचे का शरीर सूअर के समान है और बदन में बहुत रोये हैं। इसके हाथ में पशुओं के बंधन के यन्त्र हैं (दाहिना आदि)।

मकर का द्वितीय द्रेष्काण—यह स्त्री है। इसके नेत्र कमल के समान हैं। युवती है। उत्तमोत्तम, अद्भुत वस्त्र आदि की इच्छा रखती है। विभूषण से अलंकृत है किन्तु कान में लोहा धारण कर रखा है। यह विविध कलाओं, विद्याओ मे चतुर है।

मकर का तृतीय द्रेष्काण—यह विकृत शरीर वाला पुरुष है। सारे शरीर पर कम्बल ओढ़े हुए है। धनुष, तर्कस तथा कवच धारण किये हुए है। रत्न-चित्रित घडा इसके कन्धे पर है। (इन द्रेष्काणो के स्वरूप से जब चोर के स्वरूप का अनुमान किया जाता है तो यह आवश्यक नही कि सब लक्षण ही मिले। यदि प्रश्न के समय मकर का तृतीय द्रेष्काण आवे और जिस स्थान पर चोरी हुई है वहाँ पर कोई कुरूप पनिहारा हो तो कह सकते हैं कि इसने चोरी की है।)

कुम्भ का प्रथम द्रेष्काण—तैल, मदिरा, जल, भोजन, माँस आदि के लिए आकुल है। इसके पास बैठने का आसन तथा बिस्तर कम्बल आदि हैं। गिद्ध के समान इसका मुख है तथा चर्म से इसका शरीर आवृत्त है। यह पक्षी द्रेष्काण है।

कुम्भ का द्वितीय द्रेष्काण—यह स्त्री द्रेष्काण है। शाल्मली वृक्ष

के बन मे मलीन वस्त्र धारण किये कोई स्त्री जली हुई गाडी से लोह उतार रही है। इस स्त्री के सिर पर भॉड (बर्तन, घड़े आदि) हैं। यह आग्नेय द्रेष्काण है।

कुम्भ राशि का अन्तिम द्रेष्काण—श्याम पुरुष है, इसके कान पर बड़े-बडे बाल हैं। चमडा, पत्ते, हीग, गुग्गुल, फल तथा लोह के पदार्थ लेकर चलता है।

मीन का प्रथम द्रेष्काण—यह पुरुष है। इसके हाथ मे सुर्व मुक्ता, शख, यज्ञपात्र आदि हैं। भार्या के भूषण के लिए समुद्र मे यातायात करता है। (आजकल की सामाजिक परिस्थिति मे 'इम्पोर्ट' 'एक्सपोर्ट' करने वाला व्यक्ति)

मीन का द्वितीय द्रेष्काण—चम्पक के समान सुन्दर वर्ण वाली स्त्री है। बडे ऊँचे झडे वाले जहाज पर जा रही है। परिवार से युक्त है। (बम्बई आदि शहरो में चोरी का प्रश्न हो और कोई उच्च कुल की सुन्दरी विलायत आदि जा रही हो तो उसने चोरी की है यह इस द्रेष्कण से लक्षित होगा।

मीन का तृतीय द्रेष्काण—यह पुरुष है। कपडे नही पहने है। सर्पो से इसका शरीर वेष्टित है। चोर और अग्नि से इसकी अन्तरात्मा व्याकुल है और हाहाकार कर रहा है।

द्रेष्काणो के अनेक प्रयोजन हैं। यदि सौम्य द्रेष्काण मे (जिसका स्वरूप ऊपर सौम्य दिया गया हो) यात्रा की जाय तो शुभ फल होता है। यदि क्रूर द्रेष्काण मे यात्रा की जावे तो अशुभ फल होता है। किन्तु यहॉ पर चोर के रूप, चोर के स्थान आदि का निर्देश द्रेष्काण से हो सकता है, यह बताने के लिए द्रेष्काणो का विवरण दिया गया है। यदि प्रश्न के समय जो द्रेष्काण आवे उसका सूर्य या चन्द्रमा से सम्बन्ध हो तो फलादेश विशेष ठीक बैठता है।

चोरी गई हुई वस्तु मिलेगी या नही और किस दिशा मे

मिलेगी ? अचानक बिना किसी से कुछ कहे-सुने गया हुआ आदमी किस दिशा में गया है और आयगा या नही ? आदि का पता नक्षत्र से लगाया जाता है। जिस समय कोई वस्तु खो गई हो या कोई बच्चा खो गया हो या कोई मनुष्य बिना पता बताये हुए घर से अकस्मात् चला गया हो उस समय कौन-सा नक्षत्र था यह देख कर निम्नलिखित फलादेश करना चाहिए।

यदि अश्विनी नक्षत्र हो तो दक्षिण दिशा में वस्तु गई है। कोशिश करने से वापस मिल जायगी।

यदि भरणी नक्षत्र में कोई वस्तु खोई है तो वह पश्चिम दिशा में दूर गई। उसका यह पता अवश्य लगेगा कि उस वस्तु को अमुक व्यक्ति उड़ा के ले गया और इस समय वह अमुक स्थान पर है किंतु वस्तु पुन. प्राप्त नही होगी।

यदि कृत्तिका नक्षत्र हो तो चोरी गई वस्तु उत्तर दिशा को गई है। किंतु न तो वह पुन. प्राप्त होगी और न यह पता ही लगेगा कि कौन उसको चुराकर ले गया और वह कहाँ है।

यदि रोहिणी नक्षत्र मे वस्तु खोई हो तो पूर्व दिशा को गई और शीघ्र लाभ होगा। अर्थात् शीघ्र ही वापस प्राप्त हो जावेगी। इसी प्रकार खोये हुए जानवर गाय भैंस आदि. खोये हुए बच्चे या बिना पता बताये हुए घर से गये आदमी का पता बताना चाहिए।

कुल सत्ताईस नक्षत्र होते हैं। जो फल ऊपर अश्विनी नक्षत्र का बताया गया है वही मृगशिर, आश्लेषा, हस्त, अनुराधा, उत्तराषाढ और शतभिषा नक्षत्र का है। अर्थात् इन सब नक्षत्रो मे खोई हुई वस्तु यत्न करने से पुन. प्राप्त हो जाती है और किस दिशा मे वस्तु गई है इसके उत्तर में कहना चाहिए—दक्षिण।

इसी प्रकार जो फल भरणी नक्षत्र का बताया गया है वही फल आर्द्रा, मघा, चित्रा, ज्येष्ठा, अभिजित् तथा पूर्वा भाद्रपद नक्षत्र का

है। अर्थात् इनमें खोई हुई वस्तु प्राप्त नही होती। केवल कुछ खबर लगती है।

जो फल कृत्तिका नक्षत्र का बताया गया है वही पुनर्वसु, पूर्वा-फाल्गुनी, स्वाती, मूल, श्रवण तथा उत्तराभाद्रपद नक्षत्र का है। इनमे जो वस्तु खोती है वह नही प्राप्त होती है।

जो फल रोहिणी नक्षत्र का बताया गया है वही फल पुष्य, उत्तराफाल्गुनी विशाखा, पूर्वाषाढ और धनिष्ठा नक्षत्र का है। इन मे खोई हुई वस्तु शीघ्र प्राप्त हो जाती है।

नष्ट धन, चोरी गई हुई वस्तु का विचार

(१) यदि प्रश्न-लग्न और नवाश मे स्थिर राशि हो या वर्गो-त्तम गत लग्न हो तो यह समझना चाहिए कि वस्तु चोरी नही गई है—जहाँ थी वही है। ऐसे योग मे बहुत से आचार्य यह भी कहते है कि वस्तु के स्वामी ने स्वय अपनी वस्तु को चुराया है।

(२) यदि प्रश्न-लग्न मे प्रथम द्रेष्काण हो तो समझना चाहिए कि चोरी गई वस्तु दरवाजे के आसपास है। यदि द्वितीय द्रेष्काण हो तो किसी घर के मध्य मे रखी है। यदि तृतीय द्रेष्काण हो तो घर के अन्त मे रखी है (पिछवाडे आदि मे)।

(३) यदि पूर्ण बलवान् चन्द्रमा शुभ ग्रहो से दृष्ट हो और शीर्षोदय लग्न या लाभ स्थान मे हो तो नष्ट वस्तु प्राप्त हो जाती है।

(४) यदि पूर्ण चन्द्र लग्न मे बृहस्पति या शुक्र से दृष्ट हो और बली शुभग्रह एकादश स्थान मे हो तो नष्ट वस्तु पुनः प्राप्त हो जाती है।

(५) प्रश्न-कुडली मे यह देखिये कि केन्द्र मे कौन-कौन से से ग्रह हैं। यदि एक ही ग्रह केन्द्र मे हो तो उस ग्रह की दिशा मे (सूर्य की पूर्व, शुक्र की पूर्व-दक्षिण, मगल की दक्षिण आदि) चोरी

गया पदार्थ या अकस्मात् गायब हुआ मनुष्य गया है। यदि केन्द्र मे एक से अधिक ग्रह बली हो तो जो ग्रह सबसे अधिक बलवान् हो उसकी दिशा माननी चाहिए। यदि केन्द्र में कोई ग्रह नही हो तो लग्न राशि से दिशा स्थिर करनी चाहिए।

प्रश्न चिन्तामणि में चोरी गई हुई वस्तुओं का विचार

भूमि मे गडा हुआ द्रव्य मिलेगा या नही अथवा खोया हुआ आदमी या खोई हुई वस्तु का पुन: लाभ होगा या नही, इस सम्बध की प्रश्न-कुंडली बनाकर निम्नलिखित योगायोग पर विचार करना चाहिए।

(१) यदि चतुर्थ स्थान का स्वामी चतुर्थ स्थान मे हो तो भूमिगत द्रव्य प्राप्त होता है।

(२) यदि चन्द्रमा चतुर्थ मे हो और चतुर्थ भावेश से दृष्ट हो तो भूमिगत द्रव्य लाभ होता है।

(३) यदि मंगल सप्तम या अष्टम स्थान मे हो तो धन अन्य स्थान में है और उसकी प्राप्ति नही होती।

(४) लग्न में राहु और अष्टम में रवि हो तो लाभ नही होता।

(५) यदि चतुर्थ सप्तम, अष्टम और दशम स्थान में अपने-अपने घर के स्वामी चन्द्रमा या बृहस्पति हों तो लाभ होता है।

(६) यदि लग्नेश सप्तम में हो और सप्तम स्थान का स्वामी लग्न मे हो तो नष्ट धन का लाभ होता है।

(७) यदि लग्नेश और सप्तमेश में इत्थशाल हो तो चोरी गई वस्तु प्राप्त हो। यदि ये दोनो ग्रह लग्न में हो तो चोर स्वय आकर वस्तु लौटा जाता है।

नोट—यदि पाप ग्रह का भी चतुर्थ स्थान से सम्बन्ध हो, युति या दृष्टि द्वारा, तो धन-प्राप्ति नहीं होगी।

(८) यदि सूर्य लग्न मे और चन्द्रमा सप्तम मे हो तो चोरी गई हुए वस्तु प्राप्त नही होती। यदि सूर्य लग्न मे हो और चन्द्रमा अस्त हो तो भी यही फल कहना।

(९) यदि लग्नेश और दशमेश मे इत्थशाल हो तो चोर धन लेकर शहर से भाग जाता है।

(१०) यदि सप्तमेश और चन्द्रमा अस्त हो तो धन सहित चोर पकडा जाता है।

(११) यदि सप्तमेश केन्द्र मे हो तो चोर उसी स्थान मे रहता है अर्थात् वाहर नही जाता।

(१२) यदि सप्तमेश तृतीयेश या दशमेश से इत्थशाल करे तो चोर वाहर चला गया है।

(१३) चन्द्रमा लग्न या दशम स्थान मे हो तो चोरी गई वस्तु मिल जाती है।

(१४) यदि चन्द्रमा लग्न मे और रवि या अन्य शुभ ग्रह से मित्र दृष्टि से देखा जाय तो धन-प्राप्ति होती है।

(१५) यदि लग्नेश और दशमेश मे इत्थशाल हो तो उस ग्रह द्वारा या फौजदारी मुकद्दमा करने पर चोरी का माल मिलता है।

(१६) यदि तृतीयेश, नवमेश और सप्तमेश मे इत्थशाल होता हो तो दूसरे प्रदेश मे धन चला गया है।

चतुर्थ–भाग

मुहूर्त–विचार

३१ वाँ प्रकरण

शुभाशुभ प्रकरण

प्रतिपद् आदि तिथियो के क्रमश. निम्नलिखित देवता हैं। प्रयोजन यह है कि जिस देवता की विशेष रूप से पूजा या प्रतिष्ठा करनी हो उसकी उसी तिथि को प्रारम्भ करनी चाहिए।

१ अग्नि, २ ब्रह्मा, ३ पार्वती, ४ गणेश, ५ सर्प, ६ कार्तिकेय, ७ सूर्य, ८ शिव, ९ दुर्गा, १० यम, ११ विश्वदेव, १२ हरि, १३ काम, १४ शिव, १५, ३० (पूर्णिमा और अमावस्या) चन्द्र, पितर।

सिद्धि योग—१, ६ और ११ तिथि को नन्दा कहते हैं। यदि नन्दा तिथि और शुक्रवार का योग हो तो सिद्धि योग होता है। २, ७, १२, तिथि को भद्रा तिथि कहते है। इस दिन यदि बुधवार हो तो सिद्धि योग होता है। ३, ८, १३, को जया तिथि कहते है। मगलवार और जया तिथि के मिलने से सिद्धि योग होता है। ४, ९, १४ तिथियों को रिक्ता कहते हैं। प्राय रिक्ता तिथि को किसी भी बड़े कार्य मे नही लेते। रिक्ता का अर्थ खाली है किंतु यदि रिक्ता तिथि को शनिवार पडे तो इन दोनों के योग से सिद्धि योग बन जाता है। ५, १०, १५ (पूर्णिमा) तिथि को

पूर्णा तिथि कहते हैं। बृहस्पतिवार और पूर्णा तिथि का योग सिद्धि योग कहाता है।

मृत्यु योग—निम्नलिखित वारो और तिथियो का योग होने से 'मृत्यु योग' होता है। इस योग मे कोई शुभ कार्य नही करना चाहिए।

वार	रवि	सोम	मगल	बुध	बृहस्पति	शुक्र	शनि
	१	२	१	३	४	२	५
तिथि	६	७	६	८	९	७	१०
	११	१२	११	१३	१४	१२	१५

उदाहरण के लिए यदि पंचमी तिथि और शनिवार का योग हुआ तो मृत्यु योग हुआ।

दग्ध योग—रविवार और भरणी, सोमवार और चित्रा नक्षत्र, मंगलवार और उत्तराषाढ बुध और धनिष्ठा, बृहस्पति और उत्तरा फाल्गुनी, शुक्र और ज्येष्ठा तथा शनि और रेवती का योग 'दग्ध योग' होता है। यह अशुभ योग है। इसमे शुभ कार्य प्रारम्भ नही करना चाहिए।

अधम योग—निम्नलिखित तिथि वार 'से अधम' योग बनता है यह भी अशुभ है। रविवार और सप्तमी या द्वादशी तिथि सोमवार एकादशी, मगलवार दशमी, बुधवार को प्रतिपदा या नवमी तिथि हो, बृहस्पति को अष्टमी, शुक्र को सप्तमी, और शनि को षष्ठी हो तो 'अधम योग' होता है।

यमघंट योग—रविवार को मघा नक्षत्र हो, सोम को विशाखा, मंगल को आर्द्रा, बुध को मूल बृहस्पति को कृत्तिका, शुक्र को रोहिणी और शनिश्चर को हस्त नक्षत्र हो तो 'यमघट योग' होता है। इस योग मे कोई भी शुभ कार्य प्रारम्भ नही करना चाहिए। यात्रा तो कथमपि नही करनी चाहिए। यात्रा के विशेष मुहूर्त्तो

का विचार यात्रा प्रकरण मे किया गया है।

दग्ध योग, विषाख्य योग, हुताशन योग—दग्ध माने जला हुआ, विषाख्य योग अर्थात् जिसका नाम विष हो, और हुताशन योग का अर्थ है अग्नि योग। इन नामो से ही स्पष्ट है कि यह तीनो योग अशुभ हैं। इनमे कोई शुभ कार्य प्रारम्भ नही करना चाहिए।

वार	रवि	सोम	मगल	बुध	बृहस्परि	शुक्र	
दग्ध	१२	११	५	३	६	८	९
विषाख्य	४	६	७	२	८	९	७
हुताशन	१२	६	७	८	९	१०	११

उदाहरण के लिए द्वादशी तिथि को रविवार हो तो दग्ध योग हुआ।

मास शून्य तिथि—निम्नलिखित मासो में निम्नलिखित तिथियाँ हों तो वे शून्य तिथियाँ कहलाती हैं। इनको मुहूर्त देखते समय बचाना चाहिए।

मास	चैत्र	वैशाख	ज्येष्ठ	आषाढ	श्रावण	भाद्रपद	आश्विन	कार्तिक	मार्गशीर्ष	पौष	माघ	फाल्गुन
कृष्ण तिथि	८ ९	१२	८ १४	६	२ ३	१ २	७ ८	५	७ ८	४ ५	५	४
शुक्ल तिथि	८ ९	१२	१३	७	२ ३	१ २	७ ८	१४	७ ८	४ ५	६	३

शून्य नक्षत्र—चैत्र मे अश्विनी और रोहिणी, वैशाख में चित्रा और स्वाति, ज्येष्ठ में पुष्य और उत्तराषाढ़, आषाढ में पूर्वा फाल्गुनी और धनिष्ठा, श्रावण में उत्तराषाढ़ और श्रवण, भाद्र में

शतभिषा और रेवती, आश्विन मे पूर्वभाद्र, कार्तिक मे कृत्तिका और मघा, अगहन मे चित्रा और विशाखा, पौष में अश्विनी, आर्द्रा और हस्त, माघ मे मूल और श्रवण, फाल्गुन मे भरणी और ज्येष्ठा शून्य होते हैं अर्थात् उदाहरण के लिए यदि वैशाख मे कोई कार्य करना है और उस दिन अन्य विचार से मुहूर्त शुभ बैठता है किन्तु चित्रा नक्षत्र हो तो कार्य नही करना चाहिये क्योकि इस मास में यह शून्य नक्षत्र है। इसमे शुभ कार्य आरम्भ करने से धन-नाश होता है।

शून्य राशि—अब चैत्रादि मासो मे शून्य राशि बताते हैं। चैत्र मे कुम्भ, वैशाख मे मीन, ज्येष्ठ मे वृष, आषाढ में मिथुन, श्रावण में मेष, भाद्र मे कन्या, आश्विन मे वृश्चिक, कार्तिक में तुला, अगहन में धन, पौष मे कर्क, माघ मे मकर, फाल्गुन में सिंह शून्य है अर्थात् इन चैत्रादि मासो मे ये सब राशियाँ शून्य हैं इस लिए इन लग्नो मे कोई शुभ कार्य नही करना चाहिए।*

क्रकच योग—तिथि और वार इन दोनो की सख्या जोडने से जब १३ हो जाये तब क्रकच योग होता है। तिथि प्रतिपदा से और वार की सख्या रवि से गिननी चाहिए। क्रकच योग शुभ कामों में वर्जित है।

वर्ज्य योग—निम्नलिखित योगो को सदैव शुभ कार्यो मे बचाना चाहिए। रविवार को यदि पचमी तिथि और हस्त नक्षत्र हो, सोमवार को पष्ठी तिथि और मृगशिरा नक्षत्र हो, मगलवार को

---

*नोट—प्रतिपदा को पडवा, द्वितीया को दूज, तृतीया को तीज, चतुर्थी को चौथ, पंचमी को पाँचें, षष्ठी को छठ, सप्तमी को सातें। अष्टमी को आठे, नवमी को नौमी, दशमी को दसमी, एकादशी को ग्यारस, द्वादशी को बारस या द्वादस, त्रयोदशी को तेरस, चतुर्दशी को चौदस, अमावास्या को मावस और पूर्णिमा को पूनौ कहते हैं।

सप्तमी तिथि और अश्विनी नक्षत्र हो, बुधवार को अनुराधा नक्षत्र और अष्टमी तिथि हो, बृहस्पतिवार को नवमी तिथि और पुष्य नक्षत्र हो,शुक्रवार को दशमी तिथि रेवती नक्षत्र हो और शनिवार को रोहिणी नक्षत्र और एकादशी तिथि हो तो सभी शुभ कार्यों के लिए वर्जित है। यह स्मरण रखना चाहिए कि ऊपर जो वार, नक्षत्र और तिथि बताई गई हैं। वे तीनों हो, तभी खराब योग होता है। उदाहरण के लिए बृहस्पतिवार और पुष्य का योग बड़ा उत्तम गिना जाता है। किन्तु यदि नवमी भी शामिल हो जावे तो वही निंदित हो जाता है।

द्विपुष्कर योग– यदि निम्नलिखित तिथियो में से कोई तिथि हो, कोई सा-वार हो और कोई सा-नक्षत्र हो तो द्विपुष्कर योग होता हैं।

तिथि—२,७, या १२।

वार—रवि, मंगल या शनि

नक्षत्र–धनिष्ठा, चित्रा या मृगशिर।

उपर्युक्त वार, नक्षत्र और तिथि का योग होने से—ऐसे योग में जो कार्य होता हैं वह एक बार और करना होता है अर्थात् सयोग ऐसा होजाता है कि वैसी ही बात बार-बार करनी पड़ती है। किसी की मृत्यु हो जाये तो थोडे ही काल बाद किसी अन्य की भी मृत्यु हो। कोई चीज नष्ट या चोरी हो जाये तो पुनः कोई चीज नष्ट हो या घर में चोरी हो। यदि कोई शुभ कार्य किया जाय जैसे नवीन गहना बनवाया जाय तो पुन ऐसा योग हो कि फिर एक बार गहना बनवाना पड़े।

---

* चैत्र को चैत, वैशाख को वैसाख, ज्येष्ठ को जेठ, आषाढ़ को साढ़ या हाढ़, श्रावण को सावन, भाद्र को भादों, आश्विन को क्वार, कार्तिक को कातिक, मार्गशीर्ष को मंगसिर, मग्ग। अगहन, पौष को पूस, माघ को माह और फाल्गुन को फागुन भी लौकिक भाषा में कहते हैं।

त्रिपुष्कर योग—निम्नलिखित तिथि, वार और नक्षत्र का योग होने से त्रिपुष्कर योग होता है।

वार—रवि, मगल या शनि।

तिथि—२, ७ या १२।

नक्षत्र—कृत्तिका, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, विशाखा, उत्तराषाढ और उत्तराभाद्र।

त्रिपुष्कर का अर्थ है कि वैसा ही काम दो वार और होगा। अर्थात् कुल ३ बार प्रायः लोग शुभ कार्य (गहना बनवाना, मकान खरीदना आदि) के लिए त्रिपुष्कर योग देखते हैं, जिससे शुभ कार्य वारम्वार करने का अवसर हो।

सर्वार्थ सिद्धि योग— यदि रविवार को हस्त, मूल, उत्तराफाल्गुनी, उत्तरापाढ, उत्तराभाद्र, पुष्य या अश्विनी नक्षत्र हो तो सर्वार्थ सिद्धि योग होता है। इसी प्रकार नीचे बताया जाता है।

सोमवार—श्रवण, रोहिणी, मृगशिर, पुष्य या अनुराधा।

मंगलवार—अश्विनी उत्तराभाद्र, कृत्तिका, आश्लेषा।

बुधवार—रोहिणी, अनुराधा, हस्त, कृत्तिका, मृगशिर।

वृहस्पतिवार—रेवती, अनुराधा, अश्विनी, पुनर्वसु, पुष्य।

शुक्रवार—रेवती, अनुराधा, अश्विनी, पुनर्वसु, श्रवण।

शनिवार—श्रवण, रोहिणी, स्वाति।

जैसा कि सर्वार्थसिद्धि योग इस नाम से ही स्पष्ट है, यह वहुत शुभ योग है। किंतु इसका अपवाद 'वर्ज्य' योग के अन्तर्गत वताया जा चुका है। देखिये पृष्ठ २७६।

आनंदादि २८ योग—किस वार को कौनसा योग होता है यह नीचे के चक्र से स्पष्ट होगा, देखिये पृष्ठ २८२। प्राय पचाग में ये योग दिये हुए होते हैं। आनद, घाता, सौम्य, केतु, श्रीवत्स छत्र, मित्र, मानस, सिद्धि, शुभ, अमृत, मातंग, सुस्थिर और प्रवर्द्धमान ये योग सर्वथा शुभ हैं।

आनंदादि योग चक्र

योग	रवि	चन्द्र	मंगल	बुध	बृहस्पति	शुक्र	शनि
आनंद	अ०	मृ०	आश्ले०	हस्त	अनु०	उ० षाढ	शतिभषा
कालदंड	भ०	आ०	म०	चि०	ज्ये०	अभि०	पू० भा०
धूम्र	कृ०	पुन०	पू० फा०	स्वा०	मू०	श्र०	उ० भा
धाता	रो०	पु०	उ० फा०	वि०	पू० षा०	ध०	रे०
सौम्य	मृ०	आ०	ह०	अनु०	उ० षा०	शत०	अ०
ध्वांक्ष	आर्द्रा	म०	चि०	ज्ये०	अभि०	पू० भा०	भ०
केतु	पुन०	पू० फा०	स्वा०	मू०	श्र०	उ० भा०	कृ०
श्रीवत्स	पु०	उ० फा०	वि०	पू० षा०	ध०	रे०	रो०
वज्र	आ०	ह०	अनु०	उ० षा०	शत०	अ०	मृग०
मुद्गर	म०	चि०	ज्ये०	अभि०	पू० भा०	भ०	आ०
छत्र	पू० फा०	स्वा०	मू०	श्र०	उ० भा०	कृ०	पुन०
मित्र	उ० फा०	वि०	पू० षा०	ध०	रे०	रो०	पु०
मानस	ह०	अनु०	उ० षा०	शत०	अ०	मृ०	आ०
पद्म	चि०	ज्ये०	अभि०	पू० भा०	भ०	आ०	म०
लुम्ब	स्वा०	मू०	श्र०	उ० भा०	कृ०	पुन०	पू० फा०
उत्पात	वि०	पू० षा०	ध०	रे०	रो०	पु०	उ० फा०
मृत्यु	अनु०	उ० षा०	शत०	अ०	मृ०	आ०	ह०
काण	ज्ये०	अभि०	पू० भा०	भ०	आ०	म०	चि०
सिद्धि	मू०	श्र०	उ० भा०	कृ०	पुन०	पू० फा०	स्वा०
शुभ	पू० षा०	ध०	रे	रो०	पु०	उ० फा०	वि०
अमृत	उ० षा०	श०	अ०	मृग०	आ०	ह०	अनु०
मुसल	अ०	पू० भा	भ०	आ०	म०	चि०	ज्ये०
गद	श्र०	उ० भा०	कृ०	पुन०	पू० फा०	स्वा०	मू०
मातंग	ध०	रे०	रो०	पु०	उ० फा०	वि०	पू० षा०
रक्ष	श०	अ०	मृ०	आ०	ह०	अनु०	उ० षा०
चर	पू० भा०	भ०	आ०	म०	चि०	ज्ये०	अभि०
सुस्थिर	उ० भा०	कृ०	पुन०	पू० फा०	स्वा०	मू०	श्र०
प्रवर्धमान	रे०	रो०	पु०	उ० फा०	वि०	पू० षा०	ध०

(क) धूम्र योग की प्रथम एक घड़ी वर्जित है।

(ख) काण और मुसल योग की प्रथम दो घड़ी वर्जित हैं।

(ग) पद्म और लुम्ब योग की प्रथम ४ घड़ी वर्जित है।

(घ) ध्वाक्ष वज्र, मुद्गर की प्रारम्भिक ५ घड़ी वर्जित है।

(ङ) गद योग की प्रथम ७ घडी वर्जित है।

(च) चर योग अच्छा नहीं गिना जाता।

(छ) कालदंड, उत्पात, मृत्यु तथा रक्ष योग सर्वथा वर्जित हैं।

त्याज्य नक्षत्रादि—जन्म-नक्षत्र, जन्म-मास, जन्म-तिथि, व्यतीपात योग, भद्रा, वैधृति योग, अमावास्या तिथि, माता व पिता के मरने की तिथि, क्षय तिथि, (जिस दिन ३ तिथियां हो जाये तो बीच की तिथि क्षय तिथि कहलाती है), वृद्धि तिथि, क्षय मास व अधिक मास (जिसे पुरुषोत्तम या मल मास कहते हैं); ये सब कार्यो मे वर्जित हैं।

कुलिक, अर्द्धयाम, महापात और विषकुम्भ भी सब कार्यो मे वर्जित हैं।

कुछ योगों के वर्जित अंश—३रे प्रकरण मे जो योग बतायेगये हैं उनमें किस योग का कौनसा भाग त्याज्य है यह नीचे बताया जाता है।

(क) परिघ योग का पहला आधा हिस्सा।

(ख) शूल योग की प्रथम ५ घड़ी।

(ग) गड व अतिगड योग की प्रथम ६ घडी।

कुलिक, कालवेला, यमघंट, कंटक,

दिन को १६ भागो मे बाँटिये (उदाहरण के लिए यदि दिन और रात बराबर हैं तो दिन १२ घटे का हुआ और प्रत्येक भाग ४५ मिनट का हुआ। दिनमान का ⅟₁₆ भाग 'मुहूर्त' कहलाता है। निम्नलिखित चक्र से स्पष्ट होगा कि किस वार को कौनसा

मुहूर्त कुलिक ; कौनसा कालवेला ; कौनसा यमघट और कौनसा कंटक है। यह शुभ कार्यों के लिए निषिद्ध हैं।

वार	रवि	सोम	मगल	बुध	बृहस्पति	शुक्र	शनि	वार
मुहूर्त्त	१४	१२	१०	८	६	४	२	कुलिक
मूहूर्त्त	८	६	४	२	१४	१२	१०	कालवेला
मूहूर्त्त	१०	८	६	४	२	१४	१२	यमघट
मूहूर्त्त	६	४	२	१४	१४	१०	८	कटक

विषघटी —अश्विनी आदि २७ नक्षत्रों में निम्नलिखित घड़ियो के उपरात ४ घडी का समय विष घटिका कहलाता है। अश्विनी ५०, भरणी २४, कृत्तिका ३०, रोहिणी ४०, मृगशिर १४, आर्द्रा २१, पुनर्वसु ३०, पुष्य २०, आश्लेषा ३२, मघा ३०, पूर्वा फाल्गुनी २०, उत्तरा फाल्गुनी १८, हस्त २१, चित्रा २०, स्वाति १४, विशाखा १४, अनुराधा १०, ज्येष्ठा १४, मूल ५६, पूर्वाषाढ २४, उत्तराषाढ २०, श्रवण १०, धनिष्ठा १०, शतभिषा १८, पूर्वा भाद्र १६, उत्तराभाद्र २४, रेवती ३०। उदाहरण के लिए अश्विनी नक्षत्र में जब चन्द्रमा हो तब विष नाडी का समय कौनसा होगा ? ५० घडी के उपरान्त ४ घडी–५४ घडी तक। भरणी में २४ घडी के उपरान्त ४ घडी–२८ घड़ी तक। इसी प्रकार सर्वत्र समझना चाहिए।

विष घटी को बहुत से लोग विष नाडी भी कहते हैं इसमे बहुत से शुभ कार्यों का निषेध है। यदि कोई लग्न विष नाडी में पड़े तो उस लग्न को भी किसी शुभ कार्य मे त्याज्य समझना चाहिए। ऊपर नक्षत्रो में विष घटी का प्रमाण 'मुहूर्त मार्त्तण्ड' के आधार पर बताया गया है। 'दैवज्ञ मनोहर' के अनुसार तिथियों में भी विष घटिका होती है। किस तिथि मे कितनी घडी के उपरान्त ४ घड़ी का समय विष नाडी समझा जाय यह नीचे बताया जाता है।

(१) १५ (२) ५ (३) ८ (४) ७ (५) ७ (६) ५ (७) ४ (८) ८ (९) ७ (१०) १० (११) ३ (१२) १३ (१३) १४ (१४) ७ (१५) या (३०) ८।

उदाहरण के लिए प्रतिपदा तिथि को १५ घड़ी के उपरात (जव प्रतिपदा तिथि प्रारम्भ हो उसके वाद गिनना आरम्भ करना चाहिए ।) ४ घड़ी का समय विप नाडी होगा । ऊपर कोष्ठो ( ) के अंदर तिथि-सख्या दी गई है । वहुत से विद्वान् वार मे भी विप घटी मानते हैं । रविवार २०, सोमवार २, मगलवार १२, बुधवार १०, वृहस्पतिवार ७, शुक्रवार ५, शनिवार को २५ घटी के उपरात ४ घटी का समय विप घटी होगा । उदाहरण के लिए बुधवार को सूर्योदय के १० घडी के वाद १४ घडी तक का समय विष घटी होता है ।

ऊपर जो चार घड़ी का प्रमाण वताया गया है वह तव ठीक होगा जवकि तिथि या नक्षत्र भी ६० घड़ी हो । यदि ६० घड़ी से अधिक या कम हो तो ४ घड़ी के काल को भी अनुपात से अधिक या कम कर लेना चाहिए ।

'फलप्रदीप' के अनुसार यदि चन्द्रमा शुभ ग्रह के वर्गो मे हो तो विप-घटी-जनित दोप को हटाता है । 'ज्योतिसागर' का वचन है कि ·

विवाह व्रत चूडासु गृहारभ प्रवेशयोः ।
यात्रादि शुभ कार्येषु विघ्नदा विषनाडिकाः ।।

वार वेला

एक दिन या रात मे ८ अर्ध प्रहर (१½ घटे का समय) होते हैं । रविवार को ४था, ५वाँ अर्ध प्रहर, सोमको ७वाँ और २रा, मंगल को ६ठा और २रा, वुधको ५वा और ३रा, बृहस्पति को ७वा तथा ८वाँ, शुक्र को ४था और ३रा और शनिवार को १ला ६ठा तथा ८वाँ ये अर्धपहर सर्व कार्यो के लिये निषिद्ध हैं । इसे वार वेला दोप कहते हैं ।

बत्तीसवाँ प्रकरण

विविध विचार

तिथि के आधे भाग का नाम 'करण' है। भद्राभी एक 'करण' है।

भद्रा विचार—किन-किन तिथियों के अर्ध भाग ($\frac{1}{2}$ भाग को) भद्रा कहते हैं यह नीचे बताया जाता है।

	कृष्ण पक्ष	तिथि	पहिला $\frac{1}{2}$ भाग या दूसरा $\frac{1}{2}$ भाग
(क)	,, ३ ,,	३	अन्तिम $\frac{1}{2}$ तिथि मान
(ख)	,, ,,	७	प्रथम ,, ,, ,,
(ग)	,, ,,	१०	अन्तिम ,, ,, ,,
(घ)	,, ,,	१४	प्रथम ,, ,, ,,
(ङ)	शुक्ल पक्ष	४	अन्तिम ,, ,, ,,
(च)	,,	८	प्रथम ,, ,, ,,
(छ)	,,	११	अन्तिम ,, ,, ,,
(ज)	,,	१५	प्रथम ,, ,, ,,

उदाहरण के लिए कृष्ण पक्ष की तृतीया तिथि यदि ५८ घड़ी है तो अन्त की २९ घड़ियों में भद्रा मानी जावेगी। भद्रा में प्रायः शुभ कार्य नहीं करते हैं। क्रूर कर्म, मारण, उच्चाटन, भैंस, ऊँट या घोड़ा सम्बन्धी कार्य, अग्नि-कर्म, बधन आदि उग्र-कर्म भद्रा में किये जा सकते हैं। कुछ शास्त्रकारों का मत है कि यदि भद्रा के समय मेष, वृष, कर्क या मकर में चन्द्रमा हो तो भद्रा स्वर्ग लोक में रहती है और इसमें शुभ कर्म कर सकते हैं। यदि सिंह, वृश्चिक, कुंभ या मीन राशि का चन्द्रमा भद्रा के समय हो तो वह पृथ्वी लोक पर वास करती है और इस समय किया हुआ सर्वकार्य विनाश होता है। यदि भद्रा के समय मिथुन, कन्या, तुला या धन का चन्द्रमा हो तो पाताल लोक में भद्रा रहती है और धनागम कराती है। एक दूसरा मत यह है कि ऊपर जो (क), (ग), (ङ) और (छ) में भद्रा बताई गई है वे यदि दिन में होवे और (ख), (घ), (च),

और (ज) प्रकार की भद्रा यदि रात्रि मे होवे तो शुभ है। एक अन्य मत यह भी है कि कृष्ण पक्ष की भद्रा सर्पिणी होती है इसलिए इसका प्रारभिक भाग (क्योकि सर्पिणी के मुख मे विप होता है) सदैव त्याग करना चाहिए। और शुक्ल पक्ष की भद्रा वृश्चिक (विच्छू) होती है इस कारण इसकी अन्तिम ५ घडी, (क्योकि विच्छू के पीछे के भाग मे विप होता है) अवश्य त्याग करना चाहिए। हमारा विचार यह है कि भद्रा का सदैव शुभ कर्म मे त्याग करना उचित है। आवश्यकता पडने पर स्वर्ग-पाताल वास आदि या सर्पिणी आदि का विचार करना चाहिए।

वैसे तो भद्रा मे सभी शुभ कर्म त्याज्य हैं किंतु रक्षाबन्धन अर्थात् राखी बांधना तथा होली जलाना ये दो कथमपि नही करने चाहिए।

भद्रायां द्वेन कर्तव्ये श्रावणी फाल्गुनी तथा।
श्रावणी नृपति हन्ति ग्रामं दहति फाल्गुनी ॥

जन्म-प्रकरण

किस पाये में बालक का जन्म हुआ

प्राय समस्त राजस्थान मे यह प्रथा प्रचलित है कि जन्म-नाम के साथ-साथ ही बालक किस पाये मे जन्मा है यह भी बता दिया जाता है। इस 'पाये' का अर्थ अन्य प्रदेशों के ज्योतिषी नही समझते।

जिस तरह पलग के चार पाये होते हैं—उसी प्रकार द्वादश भावो को ४ भागो में विभाजित कर दिया गया है।

(१) प्रथम भाव, छठा भाव, एकादश भाव इसका नाम रखा गया है सुवर्ण पाद (सोने का पाया)।

(२) द्वितीय भाव, पचम भाव, नवम भाव इसका नाम रखा गया है रजतपाद (चाँदी का पाया)।

(३) तृतीय भाव, सप्तम भाव, दशम भाव इसका नाम रखा गया है ताम्र पाद (ताँबे का पाया)।

(४) चतुर्थ भाव, अष्टम भाव, द्वादश भाव (इसका नाम रखा गया है लोहपाद (लोहे का पाया)।

जन्म-लग्न से जिस भाव मे चन्द्रमा हो उस भाव के अनुसार 'पाया' निर्धारित किया जाता है। प्रायः देहात के लोगो को यह याद नही रहता कि बालक का जन्म किस लग्न मे हुआ था। नक्षत्र-चरण का ज्ञान नाम के प्रथमाक्षर से हो जाता है और नक्षत्र-चरण से चन्द्रमा का ज्ञान हो जाता है। 'पाये' से यह मालूम हो जाता है कि जन्म-कुण्डली मे चन्द्रमा किस भाव मे है। इस प्रकार जन्म-लग्न, जन्म चन्द्र तथा महादशा का स्थूल भभोग ज्ञात हो जाने से–बिना जन्म-कुंडली जाने भी काफी पता लग जाता है। यदि किसी को जन्म का वर्ष, मास यह भी मालूम हो तो नामाक्षर एव 'पाए' की मदद से पूर्ण कुडली तैयार हो सकती है। प्राय. 'चाँदी का पाया' सर्वश्रेष्ठ, उसके बाद 'ताँबे का पाया' समझा जाता है। सुवर्ण का पाया तृतीय श्रेणी का तथा चतुर्थ 'लोह पाद' निकृष्ट समझा जाता है।

साधारणतः षष्ठ, अष्टम, द्वादश के अतिरिक्त अन्य स्थानों मे चन्द्रमा अच्छा समझा जाता है। परन्तु इसमे जो स्थूल विभाग किया है वह, मालूम होता है 'गोचर' विचार से प्रभावित होकर किया गया है—इसी कारण चतुर्थ, अष्टम, द्वादश को निकृष्ट कोटि में रखा गया है।

बालक के जन्म क समय अरिष्ट विचार

गंडान्त विचार—:–(१) पड़वा, षष्ठी और एकादशी तिथि के प्रारंभ की एक-एक घडी और अमावास्या, पचमी, दशमी तथा पूर्णिमा तिथियों की अन्तिम एक-एक घड़ी को गडान्त कहते हैं।

(२) आश्लेषा, ज्येष्ठा और रेवती नक्षत्रों की अन्तिम दो-दो

घड़ियाँ तथा अश्विनी, मघा और मूल नक्षत्रो की प्रारम्भिक दो-दो घड़ियों को नक्षत्र-गंडान्त कहते हैं।

(३) कर्क, वृश्चिक और मीन लग्नो की अन्तिम आधी-आधी घडी तथा सिंह, धनु और मेष लग्नो की प्रारम्भ की आधी-आधी घड़ी को लग्न-गंडात कहते हैं।

'सारावली' मे लिखा है ·

"जातो न जीवति नरो मातुर पथ्यो भवेत्स्वकुल हन्ता।
यदि जीवति गंडान्ते वहुगजतुरगो भवेद्भूपः॥

अर्थात् गंडान्त में जन्म लेने वाला बालक प्राय नही जीता है यदि जीवित रहता है तो माता के लिए क्लेशकारक होता है किंतु स्वय बहुत ऐश्वर्यशाली होता है।

सारावलीकार ने कर्क—सिंह, वृश्चिक—धनु, मीन—मेष, इन लग्नो की संधियो को गंडान्त माना है।

जन्म-नक्षत्र से अरिष्ट विचार—लोकाचार यह है कि यदि (क) निम्नलिखित किसी भी नक्षत्र मे बालक या बालिका का जन्म हो तो जन्म के २७ वे दिन के बाद जब पुन जन्म-नक्षत्र आवे तब उस नक्षत्र की शांति करनी चाहिए।

अश्विनी, आश्लेषा, मघा, ज्येष्ठा, मूल, रेवती।

(ख) जिस नक्षत्र मे सतान पैदा हुई है यदि सतान के माता या पिता या सहोदर भाई या बहन का वही नक्षत्र हो तो इसकी भी शांति करनी चाहिए। इसे 'एक नक्षत्र-जनन-शांति' कहते हैं।

आश्लेषा, ज्येष्ठा और मूल नक्षत्रो का विशेष विचार

(१) यदि आश्लेषा नक्षत्र की प्रथम ५ घडी मे बालक का जन्म हो तो ऐश्वर्य-प्राप्ति, दूसरी ७ घडी मे जन्म हो तो पिता को कष्ट, तीसरे भाग की २ घडी मे माता को कष्ट, चौथे भाग की ३ घड़ी मे विशेष कामी हो, पाँचवे भाग की ४ घडी मे पितृ-भक्ति, छठे भाग की ८ घडी में वली (शक्ति सम्पन्न), सात

भाग की ११ घड़ी में स्वघ्न (अपना नाश करने वाला); आठवे भाग की ६ घड़ी में त्यागी, नवे भाग की ६ घड़ी में भोगी और १० वे भाग की ५ घड़ी मे धनवान होता है। ये जो १० विभाग किये गये हैं वे आश्लेषा नक्षत्र का समय ६० घड़ी मान कर किये गये हैं। यदि सम्पूर्ण आश्लेषा नक्षत्र ६० से अधिक या कम हो तो उसी अनुपात से प्रत्येक भाग को बढा या घटा लेना चाहिए।

(२) **ज्येष्ठा नक्षत्र विचार**—ज्येष्ठा नक्षत्र के छे-छे घड़ी के १० भाग करे। प्रत्येक भाग में उत्पन्न बालक-बालिका का निम्नलिखित फल है :

१ ली ६ घड़ी—नानी को अशुभ।
२ री " " —नाना को कष्ट।
३ री " " —मामा को कष्ट।
४ थी " " —माता को कष्ट।
५ वी " " —स्वयं बालक-बालिका को।
६ ठी " " —गोत्रक्षय (कुटुम्ब में अन्य व्यक्ति को)।
७ वी " " —दोनों परिवारो को (मातृ-कुल तथा पितृ कुल)।
८ वी " " —बडे भाई को कष्ट।
९ वी " " —श्वशुर को कष्ट।
१० वी " " —सब कुटुम्ब को कष्ट।

यदि नक्षत्र-मान ६० से कम या अधिक हो तो उसी हिसाब से प्रत्येक ६ घड़ी का भाग अधिक या कम कर लेना चाहिए।

(३) **मूल नक्षत्र जन्म का फल**—मूल नक्षत्र को एक वृक्ष मान कर इसका मान ६० घड़ी मान निम्नलिखित फलादेश किया गया है।

मूल वृक्ष =६० घड़ी

१ ला भाग—८ घड़ी—जड़—मूल नाश।

२ रा भाग—६ " —स्तभ (तना)—धन हानि।
३ रा " —११ " —त्वचा (छाल)—भ्रातृ नाश।
४ था " —९ " —शाखा (डालियाँ)—मातृ कष्ट।
५ वाँ " —१४ " —पत्ते—परिवार-क्षय।
६ ठा " —५ " —पुष्प—ऐश्वर्य प्राप्ति—(राजमत्री हो)।
७ वाँ " —४ " —फल—राजा के समान हो।
८ वाँ " —३ " —शिखा (वृक्ष की चोटी)—अल्पायु हो।

उपर्युक्त फल नक्षत्र मान ६० घडी मान कर किया गया है। यदि नक्षत्र मान अधिक-कम हो तो अनुपात से भिन्न भागों में परिवर्तन कर ले। जन्म के समय कष्ट-कारक नक्षत्र हो तो उसकी शांति करनी चाहिए। शाति का प्रकरण कर्म-काण्ड की पुस्तको मे देखिये।

तेतीसवाँ प्रकरण

मेलापक

विवाह मेलापक चक्र

किसी कन्या और किसी वर की कुडलियाँ देखकर यह बताना कि दोनो का विवाह शुभ रहेगा या नही, जन्म-कुण्डली मिलाना कहलाता है। इसे मेलापक भी कहते हैं। वैसे तो प्रत्येक कुण्डली को अलग-अलग भी देखकर यह कहा जा सकता है कि पति सुख या स्त्री-सुख कैसा है। किन्तु बहुत बार ऐसा होता है कि अलग-अलग दोनो जन्म-कुण्डलियाँ अच्छी होने पर भी—यदि उन दोनो व्यक्तियो का विवाह हो जाये तो परिणाम अशुभ हो जाता है। उदाहरण के लिए मधु (शहद) स्वय उत्तम पदार्थ है और घी भी

उत्तम पदार्थ है किन्तु यदि दोनो को समान मात्रा में मिला दिया जाय तो विष बन जाता है। या अन्य उदाहरण लीजिए—नींबू का रस अपने शुद्ध रूप में उत्तम वस्तु है। पीतल का गिलास भी अपनी जगह उत्तम वस्तु है किन्तु यदि नीबू के रस को पीतल के गिलास मे रख दीजिए तो विकृत हो जावेगा। यही सिद्धान्त कन्या और वर की कुण्डली में लागू होता है। दोनों कुण्डलियों का स्वतत्र विचार तो करना ही चाहिए कि शरीर सुख, सतान भाव, पति सुख (या स्त्री सुख), भाग्य, राज योग आदि कौन-कौन से भाव अच्छे हैं और किनमें न्यूनता है। इस प्रकार के विचार में जब कुण्डली ठीक हो तब ही मिलान करना चाहिए।

यदि किसी वर की कुण्डली में अल्पायु योग हो और प्रबल मारकेश की दशा आने वाली हो, क्रूर ग्रह केन्द्र में हो, लग्न और लग्नेश निर्बल हो तो ऐसे वर की कुण्डली मिलानी ही नही चाहिए। प्रथम खण्ड में जन्म-पत्र-सम्बन्धी बहुत से सिद्धान्त दिये गये हैं, इसलिए उनकी पुनरावृत्ति यहाँ नही की जा रही है। यदि आप कन्या की ओर से जन्म-कुण्डली मिला रहे हैं तो सर्वप्रथम यह देखिये कि जिस वर का जन्म-पत्रआपके पास आया है वह दीर्घायु है या नही। यदि आप वर की ओर से जन्म-कुण्डली मिला रहे हैं तो यह देखिये कि जिस कन्या की जन्म-कुण्डली आपके पास आई है वह 'विष-कन्या' तो नही है। निम्नलिखित योगो में 'विष-कन्या' उत्पन्न होती है।

(१) द्वितीय तिथि, रविवार और शतभिषा नक्षत्र या आश्लेषा नक्षत्र।

(२) द्वादशी तिथि, रविवार, कृत्तिका, विशाखा या शतभिषा नक्षत्र।

(३) सप्तमी तिथि, मंगलवार और आश्लेषा, शतभिषा या विशाखा नक्षत्र।

(४) द्वादशी तिथि, मगलवार, शतभिषा नक्षत्र ।

(५) द्वितीया तिथि, शनिवार, आश्लेपा नक्षत्र ।

(६) सप्तमी तिथि, शनिवार, कृत्तिका नक्षत्र ।

(७) द्वादशी तिथि, शनिवार, कृत्तिका-नक्षत्र ।

ग्रहों से भी 'विप-कन्या' योग होते हैं, वे निम्नलिखित हैं

(१) छठे स्थान मे एक पाप ग्रह और दो सौम्य ग्रह हो ।

(२) लग्न मे शनि, पचम में सूर्य और नवम मे मगल हो ।

(३) दो पाप ग्रह छठे स्थान में, एक पाप ग्रह, लग्न में दो शुभ ग्रह हो।

मूल नक्षत्रादि दोप

इसके अतिरिक्त चाहे वर हो चाहे कन्या निम्नलिखित नक्षत्रो मे पैदा हुए वर या कन्या क्या प्रभाव उत्पन्न करते हैं यह नीचे दिया जाता है—

(१) यदि मूल नक्षत्र के प्रथम, द्वितीय या तृतीय चरण मे उत्पन्न हो तो ऐसा लड़का-लड़की श्वशुर के लिए अनिष्ट-कारक है ।

(२) यदि आश्लेशा नक्षत्र के द्वितीय, तृतीय या चतुर्थ चरण मे उत्पन्न हो तो सास के लिए हानिकारक है ।

(३) यदि विशाखा के चतुर्थ चरण मे उत्पन्न हो तो ऐसी लड़की देवर (या लड़का हो तो छोटे साले के लिए) कष्टकर है ।

(४) यदि ज्येष्ठा नक्षत्र के चतुर्थ चरण मे जन्म हो तो लडकी अपने जेठ के लिए (पति के वडे भाई) और लडका पत्नी के वडे भाई के लिए कष्टकारक होता है।

विष-कन्या आदि दोषों का परिहार

ऊपर जो दोप वताये गये हैं, उनमे उत्पन्न लड़के या लडकी के लिए शाति करनी चाहिये । और यदि कन्या मे मंगलीक दोप या विप-कन्या दोप अधिक हो तो ऐसे वर से विवाह करे जिसकी जन्म--

कुंडली में दीर्घायु योग उत्तम हो और मगलीक दोष अधिक हो। ऐसा होने से कन्या का मङ्गलीक दोष कम हो जाता है। यदि कन्या की जन्म-कुंडली में विष-कन्या दोप या वैधव्य दोष हो किन्तु जन्मलग्न या चन्द्रलग्न से सप्तम स्थान में सप्तमेश या शुभग्रह हो तो विषकन्या-जनित दोष तथा वैधव्य दोष को दूर करते हैं:

लग्नाद् विधोर्वा यदि जन्म काले
शुभ ग्रहो वा मदनाधिपश्च।
द्यूनस्थितो हन्त्यनपत्य दोषं
वैधव्य दोषं च विषांगनाख्यम्॥

यदि सप्तमेश बलवान् शुभ स्थान स्थित हो और सप्तम भाव पर शुभग्रहों की, विशेषकर बलवान् बृहस्पति की विशेष दृष्टि हो तो अन्य दोषों की निवृत्ति करते हैं।

मंगलीक दोष विचार

सूर्यादि नौ ग्रहो में चन्द्रमा, बुध, बृहस्पति, शुक्र—मेलापक विचार में शुभ माने जाते हैं। मगल सबसे अधिक क्रूर समझा जाता है। शनि भी क्रूर गिना जाता है राहु और केतु भी क्रूर माने जाते हैं। सूर्य को भी क्रूर मानते हैं। जन्म-कुंडली विचार में मङ्गल को सबसे अधिक पापी मानने के कारण इस दोष को बोलचाल की भाषा में मङ्गलीक दोष कहते हैं, परन्तु वास्तव में म०, श०, रा०, के०, सू०, इन पाँचो का विचार करना चाहिए। मंगलीक दोष की फौज में ये पाँचों ही हैं। इनका नेता मगल है।

(१) यदि किसी जन्म-कुंडली में लग्न, चतुर्थ, सप्तम, अष्टम या द्वादश स्थान में मङ्गल हो तो मङ्गलीक दोष होता है। कोई-कोई जन्म-लग्न से द्वितीय भी मङ्गल दोष मानते हैं।

(२) जिस प्रकार ऊपर जन्म-लग्न से विचार किया गया है उसी प्रकार चन्द्रलग्न से भी विचार करना चाहिए। जितना दोष जन्म-लग्न से विचार में माना जाये उससे आधा चन्द्र-लग्न से

मानना चाहिए। जन्म-कुंडली में चन्द्रमा जिस राशि मे हो उस राशि को जन्म-स्थान पर रखकर जिस राशि मे जो ग्रह हो वैसा ही स्थापित करने से चन्द्रलग्न की कुंडली बनती है।

(३) जिस प्रकार चन्द्रलग्न से विचार किया है उसी प्रकार शुक्र लग्न से भी विचार करना चाहिए। जो दोष जन्म-लग्न से विविध स्थानो मे मङ्गल का वताया गया है उसका चतुर्थ शुक्र लग्न से मानना चाहिए।

लग्ने व्यये च पाताले जामित्रे चाष्टमे कुजे।
कन्याभर्तु विनाशाय भर्त्ता पत्नीविनाश कृत्॥
जामित्रे च यदा सौरिर्लग्ने वा हिवुकेऽथवा।
अष्टमे द्वादशेवापिभौमदोषविनाशकृत्॥

इसका आशय यह है कि ऊपर (१) में जिन स्थानो मे मङ्गल को दोपयुक्त माना है उन स्थानो में दूसरी जन्म-कुंडली मे मङ्गल हो या शनि हो तो एक-दूसरे के दोप को काटता है।

शनिर्भौमोऽथ वाकश्चित्पापो वा तादृशो भवेत्।
तेष्वेव भवनतेष्वेव भौमदोप विनाशकृत्॥

इस श्लोक का आशय यह है कि शनि, भौम या अन्य पाप-ग्रह—जितने दोपकारक स्थानो में वर की कुण्डली मे हो उतने ही कन्या की जन्म-कुंडली मे भी होने चाहिए।

तुलनात्मक विचार

हमारे विचार से यदि मगल के दोप की मात्रा १६ आना मानी जावे तो शनि की १२ आना, राहु की १० आना, केतु की ८ आना और सूर्य की ४ आना दोप की मात्रा माननी चाहिए। इसमें भी यह तारतम्य कर लेना उचित है कि जिस क्रूर ग्रह का विचार किया जा रहा है वह लग्न, द्वितीय आदि किस स्थान में है।

(क) जो क्रूर ग्रह सप्तम या अष्टम में होते हैं वे विशेष पीड़ा-कारक होते हैं। उनकी अपेक्षा चतुर्थ और द्वादश में कम पीड़ा करते

हैं, उनकी अपेक्षा लग्न में कम और द्वितीय में उससे भी कम।

(ख) जिस क्रूर ग्रह का विचार किया जा रहा हो। वह यदि उच्च राशि या स्वगृही हो तो कम दोष करता है यदि अधिमित्र या मित्र राशि मे हो तो सामान्य दोष करता है। यदि अधिशत्रु या शत्रु राशि में हो या नीच राशि में हो तो बहुत अधिक मात्रा में दोष करता है। इस प्रकार ग्रह किस स्थान और किस राशि में है यह विचार कर तथा किन वर्गो में है और किन ग्रहों से वीक्षित है इसका विचार करते हुए जब दोनों जन्म-कुण्डलियो में क्रूर ग्रह-जनित दोष समान आवे तब निम्नलिखित प्रकार से कितने गुण मिलते है यह निश्चय करना चाहिए।

गुण:—कुल गुण ३६ होते हैं। 'वर्ण' का १, 'वश्य' के २, 'तारा' के ३, 'योनि' के ४, 'राशीश' ग्रह के ५, 'गण' के ६, 'भकूट' के ७, तथा 'नाडी' के ८। इस प्रकार कुल ३६ गुण हुए। यदि वर और कन्या के १८ गुण मिल जावे तो विवाह ज्योतिषसम्मत हो जाता है। एक अन्य मत है कि १६ गुण मिले तो निद्य (निदनीय), २० मिले तो मध्यम, ३० मिलें तो उत्तम और ३० के ऊपर उत्तमोत्तम समझना चाहिए।

> गुणैः षोशडभिर्निन्द्यं मध्यमा विंशतिस्तथा।
> श्रेष्ठं त्रिंशद्गुणं यावत्परतस्तूत्तमोत्तमम्॥

ये गुण जन्म-नक्षत्र के आधार पर मिलाये जाते है। शुद्ध पंचाग द्वारा सर्वप्रथम यह निश्चय करना चाहिए कि जन्म के समय चन्द्रमा किस नक्षत्र में था। जन्म-नक्षत्र के अनुसार वर्ण, वश्य, आदि निम्नलिखित होते हैं। यदि जन्म का नक्षत्र ज्ञात न हो तो दोनों के नाम के प्रथम अक्षर से नक्षत्र स्थिर करना चाहिए।

> अज्ञातजन्मनां नृणां नाम्निभं परिकल्पयेत्।
> तेनैव चिन्तयेत्सर्वं राशिकूटादि जन्मवत्॥
> जन्मभं जन्मधिष्ण्येन नामधिस्ष्ण्येन नामभम्।
> व्यत्ययेन यदा योज्यं दम्पत्योर्निधनं भवेदिति॥

अर्थात् यदि जन्म-नक्षत्र ज्ञात न हो तो नाम के प्रथमाक्षर से मेलापक विचार करना चाहिए। किन्तु ऐसा न करे कि एक का तो जन्म-नक्षत्र ले ले और दूसरे के नाम का अक्षर। ऐसा मेलापक अशुभ होता है। किस नाम के प्रथम अक्षर से कौन-सा नक्षत्र लेना यह २५वें पृष्ठ पर बताया गया है।

(१) यदि जन्म-नक्षत्र अश्विनी हो तो मेष राशि, क्षत्रिय वर्ण, चतुष्पद वश्य, अश्व योनि, राशीश मगल, देव गण, आदि नाडी होती है।

(२) भरणी नक्षत्र हो तो मेष राशि, क्षत्रिय वर्ण, चतुष्पद वैश्य, गज योनि, राशीश मंगल तथा मध्य नाड़ी होती है।

(३) (क) कृत्तिका नक्षत्र का प्रथम चरण हो तो मेष राशि, क्षत्रिय वर्ण, चतुष्पद वैश्य, छाग योनि, राशीश मगल, राक्षस गण और अंत नाड़ो होती है।

(ख) कृत्तिका नक्षत्र का द्वितीय, तृतीय या चतुर्थ चरण हो तो वृष राशि, वैश्य वर्ण, चतुष्पद वश्य, छाग योनि, राशीश शुक्र, राक्षस गण तथा अन्त नाड़ी होती है।

(४) यदि रोहिणी नक्षत्र मे जन्म हो तो वृष राशि, वैश्य वर्ण, चतुष्पद वैश्य, सर्प योनि, शुक्र राशीश, मनुष्य गण तथा अत नाडी होती है।

(५) (क) मृगशिर नक्षत्र के प्रथम और द्वितीय चरण में जन्म हो तो वृष राशि, वैश्य वर्ण, चतुष्पद वैश्य, सर्प योनि, राशीश शुक्र, देव गण तथा मध्य नाड़ी होती है।

(ख) मृगशिर नक्षत्र के तृतीय तथा चतुर्थ चरण मे जन्म हो तो मिथुन राशि, शूद्र वर्ण, मानव वैश्य, सर्प योनि, राशीश शुक्र, देवगण तथा मध्य नाडी होती है।

अश्व (घोड़ा), गज (हाथी), मेष (मेंढा), श्वान (कुत्ता), मार्जार (बिल्ली), मूषक (चूहा), महिष (भैंस), व्याघ्र (शेर), मृग (हरिण), वानर (बन्दर), नकुल (नेवला), सिंह (शेर)।

(६) यदि आर्द्रा नक्षत्र हो तो मिथुन राशि, शूद्र वर्ण, नर वैश्य, श्वान योनि, राशीश बुध, मनुष्य गण और आदि नाडी होती है।

(७) (क) यदि पुनर्वसु नक्षत्र का पहला, दूसरा, तीसरा चरण हो तो मिथुन राशि, शूद्र वर्ण, नर वैश्य, मार्जार योनि, राशीश बुध, देवगण तथा आदि नाडी होती है।

(ख) यदि पुनर्वसु नक्षत्र का चौथा चरण हो तो कर्क राशि, ब्राह्मण वर्ण, वैश्य जलचर, मार्जार योनि, राशीश चन्द्रमा, देवगण तथा आदि नाड़ी होती है।

(८) यदि पुष्य नक्षत्र हो तो कर्क राशि, ब्राह्मण वर्ण, जलचर वैश्य, छाग योनि, राशीश चद्र, मनुष्यगण तथा मध्य नाड़ी होती है।

(९) यदि आश्लेषा नक्षत्र हो तो कर्क राशि, ब्राह्मण वर्ण, जलचर वैश्य, मार्जार योनि, चन्द्रमा राशीश, राक्षस गण तथा अत नाड़ी होती है।

(१०) यदि मघा नक्षत्र हो तो सिंह राशि, क्षत्रिय वर्ण, वनचर वैश्य, मूषक योनि, राशीश सूर्य, राक्षस गण तथा अत नाड़ी होती है।

(११) पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र होने से सिह राशि, क्षत्रिय वर्ण, वनचर वैश्य, मूषक योनि, राशीश सूर्य, मनुष्य गण तथा मध्य नाडी होती है।

(१२) (क) उत्तरा फाल्गुनी का पहला चरण हो तो सिंह राशि, क्षत्रिय वर्ण, वश्य वनचर, गौ योनि, सूर्य राशीश, मनुष्य गण तथा आदि नाडी होती है।

(ख) उत्तरा फाल्गुनी का दूसरा, तीसरा तथा चौथा चरण होने से कन्या राशि, वैश्य वर्ण, नर वैश्य, गौ योनि, राशीश बुध, मनुष्य गण तथा आदि नाड़ी होती है।

(१३) हस्त नक्षत्र होने से कन्या राशि, वैश्य वर्ण, वैश्य नर,

महिष योनि, राशीश बुध, देव गण तथा आदि नाडी होती है।

(१४) (क) चित्रा नक्षत्र का पहला तथा दूसरा चरण हो तो कन्या राशि, वैश्य वर्ण, नर वैश्य, व्याघ्र योनि, राशीश बुध, राक्षस गण तथा मध्य नाड़ी होती है।

(ख) परन्तु यदि चित्रा नक्षत्र का तीसरा तथा चौथा चरण हो तो तुला राशि, शूद्र वर्ण, नर वैश्य, व्याघ्र योनि, राशीश शुक्र, राक्षस गण और मध्य नाडी होती है।

(१५) स्वाति नक्षत्र हो तो तुला राशि, शूद्र वर्ण, नर वैश्य, महिष योनी, राशीश शुक्र, देव गण तथा अंत नाडी होती है।

(१६) (क) यदि विशाखा नक्षत्र का पहला, दूसरा, तीसरा चरण हो तो तुला राशि, शूद्र वर्ण, वैश्य नर, व्याघ्र योनि, राशीश शुक्र, राक्षस गण तथा अंत नाडी होती है।

(ख) यदि विशाखा नक्षत्र का चौथा चरण हो तो वृश्चिक राशि, राशीश मंगल, ब्राह्मण वर्ण, कीट वैश्य, व्याघ्र योनि, राक्षस गण तथा अंत नाडी होती है।

(१७) अनुराधा नक्षत्र हो तो वृश्चिक राशि, ब्राह्मण वर्ण, वैश्य कीट, मृग योनि, राशीश मंगल, देव गण तथा मध्य नाडी होती है।

(१८) ज्येष्ठा नक्षत्र हो तो वृश्चिक राशि, राशीश मंगल, ब्राह्मण वर्ण, कीट वैश्य, मृग योनि, राक्षस गण तथा आदि नाडी होती है।

(१९) यदि मूल नक्षत्र हो तो धनु राशि, राशीश वृहस्पति, क्षत्रिय वर्ण, नर वैश्य, श्वान योनि, राक्षस गण तथा आदि नाडी होती है।

(२०) यदि पूर्वाषाढा नक्षत्र हो तो धन राशि, राशीश वृहस्पति, क्षत्रिय वर्ण, वानर योनि, मनुष्य गण तथा मध्य नाडी होती है। विशेष यह है कि यदि पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र के ८ हिस्से किये जावे और प्रथम आठवे हिस्से मे जन्म हो तो नर वैश्य, यदि बाकी के

७ हिस्से मे जन्म हो तो चतुष्पद वैश्य होता है।

(२१) (क) यदि उत्तराषाढ़ा नक्षत्र का प्रथम चरण हो तो धन राशि, राशीश बृहस्पति, क्षत्रिय वर्ण, चतुष्पद वैश्य, नकुल, योनि, मनुष्य गण तथा अंत नाड़ी होती है।

(ख) यदि उत्तरषाढ़ा नक्षत्र का दूसरा, तीसरा, चौथा चरण हो तो मकर राशि, राशीश शनि, वैश्य वर्ण, चतुष्पद वैश्य, नकुल योनि, मनुष्य गण तथा अत नाड़ी होती है।

(२२) यदि श्रवण नक्षत्र हो तो मकर राशि, राशीश शनि, वैश्य वर्ण, वानर योनि, देव गण तथा अत नाड़ी होती है। यदि श्रवण नक्षत्र के ८ हिस्से किये जावे तो प्रथम, द्वितीय, तृतीय $\frac{१}{८}$ भागों में चतुष्पद वैश्य होता है, बाकी के पाँच $\frac{१}{८}$ भागों में जलचर वैश्य होता है।

(२३) (क) यदि धनिष्ठा नक्षत्र का पहला और दूसरा चरण हो तो मकर राशि, राशीश शनि, वैश्य वर्ण, जलचर वैश्य, सिंह योनि, राक्षस गण तथा मध्य नाड़ी होती है।

(ख) यदि धनिष्ठा नक्षत्र का तीसरा और चौथा चरण हो तो कुंभ राशि, राशीश शनि, शूद्र वर्ण, नर वैश्य, सिंह योनि, राक्षस गण तथा मध्य नाडी होती है।

(२४) शतभिषा नक्षत्र हो तो कुंभ राशि, राशीश शनि, शूद्र वर्ण, नर वैश्य, अश्व योनि, राक्षस गण तथा आदि नाड़ी होती है।

(२५) (क) यदि पूर्वाभाद्र नक्षत्र का पहला, दूसरा तथा तीसरा चरण हो तो कुंभ राशि, राशीश शनि, शूद्र वर्ण, नर वैश्य, सिंह योनि, मनुष्य गण तथा आदि नाड़ी होती है।

(ख) परन्तु यदि पूर्वाभाद्र नक्षत्र का चौथा चरण हो तो मीन राशि, राशीश बृहस्पति, ब्राह्मण वर्ण, जलचर वैश्य, सिंह योनि, मनुष्य गण तथा आदि नाड़ी होती है।

(२६) यदि उत्तराभाद्र नक्षत्र हो तो मीन राशि, राशीश बृहस्पति, ब्राह्मण वर्ण, जलचर वैश्य, गौ योनि, मनुष्य गण तथा मध्य नाडी होती है।

(२७) यदि रेवती नक्षत्र हो तो मीन राशि, राशीश बृहस्पति ब्राह्मण वर्ण, जलचर वैश्य, गज योनि, देव गण तथा अन्त नाडी होती है।

ऊपर जन्म-नक्षत्र के अनुसार वर्ण, वैश्य, योनि, राशि, राशीश, गण और नाडी ये ७ बातें बताई गई हैं। ८ वीं चीज है तारा-विचार। यह नीचे दिया जाता है। वर के जन्म-नक्षत्र से कन्या का जन्म-नक्षत्र गिनना चाहिए और यदि ९ से अधिक आवे तो ९ से भाग देकर शेष निकाल लीजिये। इसी प्रकार कन्या के नक्षत्र से वर के जन्म-नक्षत्र तक गिनिये। यहाँ भी यदि ९ से अधिक आवे तो ९ से भाग देकर शेष ले लीजिये। अब जो दो संख्यायें आई हैं उनको नीचे के चक्रों में देखिये। 'वर' के नीचे खड़ी पंक्ति में और कन्या के सामने आडी पंक्ति में और कोष्टक में जो संख्या आवे और कितने गुण प्राप्त हुए यह लिख लीजिये। इसी प्रकार नीचे के वर्ण, वैश्य, योनि, राशि, राशीश, गण, तारा, और नाडी मिलानमें कितने-कितने गुण प्राप्त हुए यह भी लिखकर जोडिये कि ३६ में से कितने गुण प्राप्त होते हैं।

४ योनिगुण । वर

कन्या	अश्व	गज	मेष	सर्प	श्वान	मार्जार	मूषक	गौ	महिष	व्याघ्र	मृग	वानर	नकुल	सिंह
अश्व	४	२	३	२	२	३	३	३	[illegible]	१	३	२	२	१
गज	२	४	३	२	२	२	२	३	३	१	३	२	२	०
मेष	३	३	४	२	२	३	३	३	३	१	३	०	२	१
सर्प	२	२	२	४	२	१	१	२	२	२	२	१	०	२
श्वान	२	२	२	२	४	१	२	२	२	२	०	२	२	२
मार्जार	३	३	३	१	१	४	०	३	[illegible]	२	३	२	२	२
मूषक	३	३	३	१	२	०	४	३	३	२	३	२	१	२
गौ	३	३	३	२	२	३	३	४	३	०	३	२	२	१
महिष	०	३	३	२	२	३	३	३	४	१	३	२	२	२
व्याघ्र	१	१	१	२	२	२	२	०	१	४	१	१	२	१
मृग	३	३	३	२	०	३	३	३	३	१	४	२	२	१
वानर	२	२	०	१	२	२	२	२	२	२	२	४	३	२
नकुल	२	२	२	०	२	२	१	३	३	२	२	२	४	२
सिंह	१	०	१	२	२	२	२	१	१	१	१	२	२	४

१ विवाहे वर्णगुणाः । वरः

कन्या	ब्रा	क्ष	वै	शू
ब्राह्मण	१	०	०	०
क्षत्रिय	१	१	०	०
वैश्य	१	१	१	०
शूद्र	१	१	१	१

२ वश्यगुणाः । वर

कन्या	च	मा.	ज.	व	की
चतुष्पद	२	१	१	०	१
मानव	१	२	॥	०	१
जलचर	१	॥	२	१	१
वनचर	०	०	१	२	०
कीट	१	१	१	०	२

६ गणगुणाः । वरः

कन्या	दे.	म	रा
देव	६	५	१
मनुष्य	६	६	०
राक्षस	०	०	६

८ नाडी गुणा. । वर ।

कन्या	आ	म	अ.
आदि	०	८	८
मध्या	८	०	८
अन्त्या	८	८	०

७ भकूटगुणाः ।

	मे	वृ	मि	क	सि	क	तु	वृ	ध	म	कु	मी
मे.	७	०	७	७	०	०	७	०	०	७	७	०
वृ	०	७	०	७	७	०	०	७	०	०	७	७
मि	७	०	७	०	७	७	०	०	७	०	०	७
क	७	७	०	७	०	७	७	०	०	७	०	०
सि	०	७	७	०	७	०	७	७	०	०	७	०
क	०	०	७	७	०	७	०	७	७	०	०	७
तु	७	०	०	७	७	०	७	०	७	७	०	०
वृ.	०	७	०	०	७	७	०	७	०	७	७	०
ध	०	०	७	०	०	७	७	०	७	०	७	७
म	७	०	०	७	०	०	७	७	०	७	०	७
कु	७	७	०	०	७	०	०	७	७	०	७	०
मी.	०	७	७	०	०	७	०	०	७	७	०	७

३ तारागणाः ।

	१	२	३	४	५	६	७	८	९
१	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३
२	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३
३	१॥	१॥	०	१॥	०	१॥	०	१॥	१॥
४	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३
५	१॥	१॥	०	१॥	०	१॥	०	१॥	१॥
६	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३
७	१॥	१॥	०	१॥	०	१॥	०	१॥	१॥
८	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३
९	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३

५ ग्रहमैत्र्यागुणाः । वरः ।

कन्या	सू	च.	म	बु.	बृ	शु.	श.
सूर्य्य	५	५	५	४	५	०	०
चन्द्र	५	५	४	१	४	॥	॥
मङ्गल	५	४	५	॥	५	३	॥
बुध	४	१	॥	५	॥	५	४
गुरु	५	४	५	॥	५	॥	३
शुक्र	०	॥	३	५	॥	५	५
शनि	०	॥	॥	४	३	५	५

एक उदाहरण देकर यह स्पष्ट किया जाता है। मान लीजिये वर का जन्म-नक्षत्र हस्त है और कन्या का जन्म-नक्षत्र पुष्य है तो मेलापक चक्र निम्नलिखित होगा :

	पूर्ण गुण	वर	प्राप्त गुण	कन्या
वर्ण	१	वैश्य	०	ब्राह्मण
वश्य	२	नर		जलचर
तारा	३	पचम	१½	षष्ठ
योनि	४	महिष	३	मेष
राशीश	५	बुध	१	चन्द्रमा
गण	६	देव	६	देव
राशि	७	कन्या	७	कर्क
नाडी	८	आदि	८	मध्य
योग	३६		२७	

इस प्रकार ३६ मे से २७ गुण मिलने से कुडलियो का मिलान अच्छा समझा जाता है। अब मेलापक सम्बन्धी कुछ विशेष नियम बताकर यह प्रकरण समाप्त किया जाता है।

(१) यदि वर और कन्या दोनो की राशि एक हो और नक्षत्र अलग-अलग हो तो श्रेष्ठ है। यदि दोनो की राशियां भिन्न हो तो मध्यम। परन्तु यदि एक ही नक्षत्र एक ही राशि हो तो त्याज्य है। किसी-किसी का मत यह भी है कि यदि एक नक्षत्र मे जन्म होने पर भी यदि भिन्न चरण मे जन्म हो तो विवाह सम्मत है। (२) यदि अन्य गुण मिलते हो और नाडी मे एक भी गुण प्राप्त न हो तो वर और कन्या—यदि दोनो ब्राह्मण हो तो विवाह नही करना चाहिए। क्षत्रियो मे गण मैत्री का विशेष विचार करना चाहिए। (३)कन्या के नक्षत्र से वर का नक्षत्र यदि द्वितीय पडे तो अच्छा नही समझा जाता।

चौंतीसवाँ प्रकरण

स्वामी-सेवक मेलापक-विचार

यदि यह देखना हो कि दो व्यक्तियों में स्वामी-सेवक का सम्बन्ध निभेगा या नही तो निम्नलिखित बातों का विचार करना चाहिए। जिसकी नौकरी की जाये या जो अपना अफसर हो उसकी स्वामी संज्ञा, जो नौकरी करे या मातहत हो उसकी सेवक संज्ञा।

(१) स्वामी और सेवक दोनों के नाम के प्रथम अक्षर से विचार करे कि दोनों के क्या-क्या नक्षत्र होते हैं। देखिए पृष्ठ २५। इसके बाद उन नक्षत्रों की क्या योनि है यह २९७-२९९ पृष्ठ पर देखिये। मेलापक चक्र में बहुत से लोग योनि का अश्लील अर्थ लेते हैं किंतु वास्तव में मेलापक चक्र में जो योनि संज्ञा है उसका अर्थ है कौनसा जीवधारी—कुत्ता, बिल्ली, मृग, वानर, गज, सर्प, नकुल, मनुष्य आदि ८४ लाख योनि के जीव इस पृथ्वी पर हैं। यही योनि का शुद्ध अर्थ है। जैसे कुत्ते–बिल्ली या हरिण—शेर या सर्प–नेवला या बिल्ली—चूहे का मेल नही हो सकता उसी प्रकार यदि दो मनुष्यों की भिन्न-भिन्न योनियों में परस्पर शत्रुता हो तो चाहे वे स्त्री-पुरुष हों चाहे वे स्वामी-सेवक, चाहे वे अफसर-मातहत हो खटपट चलती है।

(२) दोनों के नाम के अनुसार जो राशि आवे उन राशियो के स्वामी परस्पर मित्र हो तो दोनों व्यक्तियों में प्रेम रहता है। यदि दोनों की राशि के स्वामी परस्पर शत्रु हों तो दोनो व्यक्तियों मे शत्रुभाव रहता है। यदि दोनों राशियों के स्वामी में एक मित्र हो और दूसरा शत्रु हो (जैसे चद्रमा का बुध मित्र है किन्तु बुध का चन्द्रमा शत्रु है) तो एक व्यक्ति तो मित्र भाव रखता है किन्तु दूसरा मित्रभाव रखने पर भी शत्रुता रखता है। मित्रामित्र चक्र

पृष्ठ ३४ पर दिया गया है राशियो के स्वामी ३१वे पृष्ठ पर बताये गये हैं।

(३) दोनो की राशि एक-दूसरे से ६ठी, ८वी नही होनी चाहिये।

(४) वर्ग काकिणी विचार

(१) अ से अ तक गरुड़ वर्ग।

(२) क से ङ. तक मार्जार वर्ग।

(३) च से ञ तक सिह वर्ग।

(४) ट से ण तक श्वान वर्ग।

(५) त से न तक सर्प वर्ग।

(६) प से म तक मूपक वर्ग।

(७) य र ल व मृग वर्ग।

(८) श प स ह क्ष त्र ज्ञ मेढा वर्ग।

इन आठो वर्गों को क्रम से गिनना चाहिए। पाचवाँ वर्ग अपना शत्रु होता है।

गरुड-सर्प वैर, मार्जार-मूपक वैर, सिह-मृग वैर, श्वान—मेंढा वैर। अपने वर्ग को दूना करना दूसरे का वर्ग जोड देना। जो जोड़ आवे उसको आठ से भाग देकर जो शेप बचे वह लिख लीजिए। इसी प्रकार दूसरे व्यक्ति के वर्ग को दुगना करना, अपना वर्ग जोड़ देना। जो जोड आवे उसमे ८ का भाग देकर जो शेष रहे वह लिख लीजिए। अब देखिए दोनो शेपो में से कौनसा शेप अधिक है। इस शेप को 'काकिणी' कहते हैं।

जिसका अधिक शेष हो वही दूसरे का ऋणी (कर्जदार) होता है।

उदाहरण के लिए भगवानदास उर्फ भानु और कुशकुमार इन दो व्यक्तियो का विचार करना है तो निम्नलिखित विचार होगा।

कुशकुमार के नाम के प्रारभ मे क आता है इसलिए मार्जार वर्ग हुआ इसकी सख्या २ है। भगवानदास या भानु का प्रथम

अक्षर भ है—इसका वर्ग मूषक है। इसकी सख्या ६ है। दोनों एक-दूसरे से पाँचवे हैं इस कारण मैत्री का परिणाम तो कोई बहुत अच्छा नही होगा परन्तु 'वर्ग काकिणी' विचार निम्नलिखत प्रकार से किया जावेगा।

कुश का 'काकिणी शेष'

अपना नाम कुश २×२=४ (अपने वर्ग को २ से गुणा किया जाता है)

दूसरे का नाम भानु ६ (दूसरे के वर्ग को वैसा ही रखा जाता है)

योग १० इसको आठ से भाग दिया तो शेष काकिणी २

भानु का 'काकिणी शेष'

अपना नाम भानु ६×२=१२ अपने वर्ग को २से गुणा किया जाता है दूसरे का नाम कुश = २ है दूसरे के वर्ग को नही)

योग १४ इसको ८ से भाग दिये तो बाकी बचे ६। यह भानु की 'काकिणी' हुई।

भानु की शेष ६ है, यह कुश के शेष से अधिक है इसलिए भानु ऋणी या कर्जदार हुआ। पिछले जन्म में इसने कर्ज खाया था सो चुकाया नहीं सो इस जन्म में चुकायगा अर्थात् इस जन्म में कुशकुमार को भगवानदास उर्फ भानु से लाभ होगा।

विशेष यह है कि विवाह में तो जन्म-नक्षत्र की प्रधानता है किन्तु स्वामी-सेवक विचार में 'नाम' की प्रधानता है। इसी प्रसिद्ध नाम से 'योनि' 'वर्ग' तथा 'राशि' का विचार करना चाहिए।

विवाहे सर्व मांगल्ये यात्रादौ ग्रह गोचरे।
जन्मराशेः प्रधानत्वं नाम राशि न चिंतयेत्॥
देशे ग्रामे गृहे युद्धे सेवायां व्यवहारके।
नामराशेः प्रधानत्वं जन्म राशि न चिंतयेत्॥

अर्थात् सर्वमगल कार्यो में, यात्रा मे, ग्रह-गोचर मे, विचार मे नाम की राशि का विचार न करे। देश, ग्राम, गृह, युद्ध, सेवा, (नौकरी), व्यवहार (मुकदमा या व्यापार) मे प्रचलित (प्रसिद्ध) नाम की ही प्रधानता है। इसी से विचार करे।

ऊपर 'ग्राम' शब्द आया है। अधिकतर लोग ग्रामो मे ही रहते हैं। इस कारण ग्राम कहा। 'नगर' का विचार भी प्रसिद्ध नाम से करना चाहिए।

उदाहरण के लिये गोपेश कुमार ओझा नाम के व्यक्ति को दिल्ली अनुकूल होगा या नहीं इसका 'वर्ग काकिणी' के अनुसार

गो··· २×२=४

दि · =५

=९÷८=शेष १

दि · ५×२=१०

गो ·· =२

१२÷८=शेष ४

पैंतीसवाँ प्रकरण

यात्रा-प्रकरण

वैसे तो यात्रा शब्द के अन्तर्गत सभी प्रकार की यात्रायें आ जाती हैं किंतु विवाह-यात्रा द्विरागमन यात्रा (गौना) आदि यात्रायें ऐसी हैं जिनमे बहुत सी बातें देखनी पडती हैं। ऐसे मुहूर्त तो उत्तम पञ्चांग मे ही देखकर निश्चित करने चाहिए। अच्छे पचाँगो मे विवाह और गौने के मुहूर्त दिए रहते हैं। उसके आसपास जो मुहूर्त यात्रा-विचार से शुभ हो यात्रा के काम मे लाना चाहिए।

नोट— मैंने स्वय अपने नाम तथा जिस नगर मे मैं रहता हूँ 'दिल्ली' का उदाहरण दिया है।

दिल्ली में रहने से लाभ होगा, क्योंकि दिल्ली का शेष 'काकिणी' अधिक है—इसलिए दिल्ली फली हुई।

अन्य प्रकार की यात्रा में क्या-क्या विचार करना यह नीचे बताया जाता है ।

दिक्शूल— इसे लौकिक भाषा में दिशाशूल भी कहते हैं। सोमवार और शनिवार को पूर्व की ओर दिक्शूल रहता है इसलिए इन दोनों वारो को पूर्व की ओर नही जाना चाहिए। रविवार और शुक्रवार को पश्चिम की ओर दिशाशूल रहता है इसलिए पश्चिम की ओर यात्रा न करे । मंगल और बुधवार को उत्तर की ओर दिशाशूल रहता है, इस कारण इन दोनों वारों को उत्तर की यात्रा मना है । बृहस्पतिवार को दक्षिण की ओर दिक्शूल होने के कारण उस दिशा की यात्रा का निषेध है ।

यदि कोई स्थान (जहाँ जाना है) पूर्व से कुछ दक्षिण या उत्तर की ओर झुका हो तो उसे यात्रा के लिए पूर्व ही मानना चाहिए। इसी प्रकार नक्शा देखकर यह स्थिर करना उचित है कि गन्तव्य स्थान किस दिशा में है । थोड़ा-बहुत इधर या उधर होने से दिशा में अन्तर नही मानते किंतु यदि नक्शा देखने पर गन्तव्य स्थान बिलकुल दो दिशाओ के बीच मे पड़े तो ईशान, वायव्य, नैऋत्य, और आग्नेय कोणो में निम्नलिखित वारों को दिक्शूल मानना चाहिए। शनि और बुध को ईशान (पूर्वोत्तर) की ओर दिक्शूल रहता है । मगल को वायव्य (पश्चिमोत्तर) कोण की ओर । सूर्य, शुक्र को नैऋत्य (दक्षिण-पश्चिम कोण) और चन्द्रमा तथा बृहस्पतिवार को आग्नेय (पूर्व-दक्षिण कोण) मे दिक्शूल रहने के कारण यात्रा निषिद्ध है । सामने दिक्शूल सर्वथा त्याज्य है । बहुत लोग दाहिने दिक्शूल को भी त्याज्य समझते हैं। उदाहरण के लिए सोमवार को पूर्व की ओर दिक्शूल होता है और आपको उत्तर की ओर यात्रा करनी है और आप उत्तर की ओर मुँह करके खड़े हों तो पूर्व आपके दाहिनी ओर पडेगा । इस कारण सोमवार को उत्तर यात्रा में दाहिना दिक्शूल हुआ । दाहिना या बायाँ या सामने

या पीछे—किस दिशा में शूल है यह विचार करते समय चार मुख्य दिशाओं का ही विचार किया जाता है।

पीठ पीछे दिक्शूल होना या बायाँ दिक्शूल होना यात्रा में उत्तम गिनते हैं। बहुत से लोग विशेष आवश्यकता होने पर, रात्रि को यदि यात्रा की जाये तो वार (रविवार, सोमवारादि) के कारण जो दिक्शूल बताया गया है, उसके दोष को नही मानते किंतु अधिकतर विद्वानो का मत यही है कि—चाहे दिन हो चाहे रात हो—दिक्शूल मे यात्रा नही करनी चाहिए और दाहिना दिक्शूल भी बचाना चाहिए।

अति आवश्यकता होने पर यदि दिक्शूल के दिन यात्रा करनी पड़े तो बृहस्पति के वचनानुसार रविवार को घी खाकर, सोमवार को दूध पीकर, मंगलवार को गुड खाकर, बुध को तिल खाकर, बृहस्पतिवार को दधि भोजन कर, शुक्रवार को जौ खाकर और शनि को उडद खाकर यात्रा करे तो दिशाशूल का दोष कम हो जाता है।यथा—

सूर्यवारे घृतं प्राश्य सोमवारे पयस्तथा।
गुड़मंगारके वारे बुधवारे तिलानपि ॥
गुरुवारे दधि प्राश्य शुक्रवारे यवानपि।
माषाभुक्त्वा शनेर्वारे गच्छञ्शूले न दोषभाक् ॥

समय-शूल—जिस प्रकार वार के कारण दिशाशूल होता है उसी प्रकार समय शूल का भी निषेध है। उषाकाल में पूर्व की ओर यात्रा नही करनी चाहिए। गोधूलि के समय पश्चिम यात्रा का निषेध है। मध्याह्न काल मे दक्षिण की ओर यात्रा न करे और मध्य रात्रि मे उत्तर की ओर यात्रा निषेध है।

पूर्वाह्न मे (प्रातःकाल से १०½ बजे तक) रोहिणी, उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ, उत्तरा भाद्र इन नक्षत्रो में यात्रा नही करनी चाहिए। मध्याह्न (१०½ से ३ बजे तक)मे पूर्वा फाल्गुनी, पूर्वाषाढ,

और पूर्वाभाद्र, भरणी तथा मघा नक्षत्र में यात्रा निषिद्ध है। दक्षिण की ओर नक्षत्र-शूल रहता है। अपराह्न (३ बजे से ७ बजे तक) निम्नलिखित नक्षत्र हों तो यात्रा न करे—हस्त, अश्विनी, पुष्य, क्योंकि इस समय नक्षत्र शूल रहता है। पूर्व रात्रि में निम्नलिखित नक्षत्रों में यात्रा निषिद्ध है : चित्रा, अनुराधा तथा रेवती। इसी प्रकार यदि मध्य रात्रि में यात्रा करना हो तो उग्र नक्षत्रों में यात्रा उचित नही। निम्नलिखित उग्र नक्षत्र हैं—आर्द्रा, आश्लेषा, ज्येष्ठा और मूल। और यदि रात्रि के अन्त में—३ बजे के बाद यात्रा करनी हो तो पुनर्वसु, स्वाति, श्रवण, धनिष्ठा तथा शतभिषा मे यात्रा करना उचित नही। कुछ नक्षत्रों की विशेष त्याज्य घड़ियाँ बताई गई हैं आवश्यकता होने पर उन घडियो को छोड़कर यात्रा की जा सकती है। (देखिए पृष्ठ २८४)

नक्षत्र शूल—यदि ज्येष्ठा नक्षत्र हो तो पूर्व की ओर नक्षत्र शूल रहता है। पूर्वाभाद्र पद में दक्षिण की ओर शूल होता है। रोहिणी नक्षत्र में पश्चिम की ओर, और उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में उत्तर शूल होने के कारण यात्रा का निषेध है।

योगिनी विचार—प्रतिपद् से आरम्भ कर पूर्व, उत्तर, आग्नेय नैऋत्य, दक्षिण, पश्चिम, वायव्य और ईशान कोण में योगिनी भ्रमण करती है। इस मतानुसार किस तिथि को किस दिशा की यात्रा शुभ है, किस दिशा को मध्यम (न शुभ न अशुभ), किस दिशा को अनिष्ट और किस दिशा को महाभयकारक यह आगे के चक्र से स्पष्ट होगा। कुछ विद्वानो का मत यह है कि योगिनी सम्मुख या बाई ओर रहे तो हानिकारक होती है।

ऊपर हिन्दू विश्वविद्यालय काशी से प्रकाशित 'विश्व पचाँग' के आधार पर 'योगिनी' का विचार दिया गया है।

यात्रा के समय योगिनी सामने या बायी ओर नही होनी

चाहिए। 'सम्मुख वामगा न शस्ता'। नीचे योगिनी वासचक्र दिया जाता हैं।

वा०	उत्तर	ई०
७ १५	२ १०	८ ३०
पश्चिम		पूर्व
६.१४		१ ६
नै०	दक्षिण	आ०
४.१२	५ १३	३ ११

योगिनी के विषय मे एक अन्य मत है कि बायी ओर अच्छी होती है। यह मत पडित सम्प्रदाय मे विशेष में प्रचलित है

"योगिनी सुखदावामे
पृष्ठे वांछित दायिनी।
दक्षिणे धनहंत्री च
सम्मुखे मरणप्रदा ॥

इस प्रकार विभिन्न मत हैं। हमारे मतानुसार अन्तिम मत विशेष प्रचलित हैं।

लग्न किस दिशा मे किस लग्न का क्या फल है यह नीचे दिया जाता है। किसी भी लग्न मे आठवे बारहवे कोई भी ग्रह नही होना चाहिये।

पू०	द०	प०	उ०	दिशा
१/५/६	२/१०/६	३/७/११	४/८/१२	शुभ
२/६/१०	३/७/११	४/८/१२	१/५/६	मध्यम
४/८/१२	१/५/६	२/६/१०	३/७/११	अनिष्ट
३/७/११	४/८/१२	१/५/६	२/६/१०	महाभयम्

पथिराहु चक्र—यात्रा मे यदि विशेष विचार करना हो तो इस चक्र का भी विचार किया जाता है। निम्नलिखित नक्षत्रो को धर्म नक्षत्र कहते हैं। अश्विनी, पुष्य, आश्लेषा, विशाखा, अनुराधा, धनिष्ठा, शतभिषा—सात नक्षत्र। भरणी, पुनर्वसु, मघा, स्वाति, ज्येष्ठा, श्रवण, पूर्वाभाद्र ये ७ नक्षत्र 'अर्थ' या 'धन' नक्षत्र कहलाते हैं। इसी प्रकार निम्नलिखित ६ नक्षत्रो को 'काम' नक्षत्र कहते हैं। कृत्तिका, आर्द्रा, पूर्वा फाल्गुनी, चित्रा, मूल और उत्तराभाद्र। बाकी के ७ नक्षत्र—रोहिणी, मृगशिर, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, पूर्वाषाढ, उत्तराषाढ और रेवती को 'मोक्ष' नक्षत्र कहते हैं।

(१) यदि सूर्य धर्म नक्षत्र मे हो और चन्द्रमा 'धन' नक्षत्र में हो तो यात्रा शुभ ।

(२) यदि सूर्य धर्म नक्षत्र मे हो और चन्द्रमा "मोक्ष" नक्षत्र में तो यात्रा शुभ होती है ।

(३) किन्तु यदि सूर्य धर्म नक्षत्र में हो और चन्द्रमा धर्म नक्षत्र या काम नक्षत्र मे हो तो यात्रा शुभ नही होती ।

(४) यदि सूर्य धन नक्षत्र में हो और चन्द्रमा धर्म या मोक्ष नक्षत्र में तो यात्रा शुभ ।

(५) किन्तु यदि सूर्य धन नक्षत्र मे हो और चन्द्रमा 'अर्थ' या 'काम' नक्षत्र मे हो तो यात्रा अशुभ होती है ।

(६) यदि सूर्य 'काम' नक्षत्र मे हो और चन्द्रमा 'धर्म', 'अर्थ' या 'मोक्ष' नक्षत्र मे हो तो यात्रा शुभ होती है ।

(७) किन्तु यदि सूर्य काम नक्षत्र मे हो और चन्द्रमा भी काम नक्षत्र मे हो तो यात्रा अच्छी नहीं ।

(८) यदि सूर्य 'मोक्ष' नक्षत्र मे हो और चन्द्रमा 'धर्म' नक्षत्र मे तो यात्रा शुभ समझनी चाहिए ।

(९) किन्तु यदि सूर्य 'मोक्ष' नक्षत्र मे हो और चन्द्रमा 'अर्थ', 'काम' या 'मोक्ष' नक्षत्र मे हो तो यात्रा अच्छी नही होती ।

सूर्ये धर्म्मगते चन्द्रो धनेमोक्षे शुभ प्रदः
सूर्ये धनगते धर्म मोक्ष मार्गे शुभः शशी ।
कामेऽर्के धर्ममोक्षार्थे संस्थश्चन्द्रो जयप्रदः
मोक्षेऽर्के धर्मगश्चन्द्रः शुभोऽन्यत्र न शोभनः ।।

चन्द्रमा विचार :

मेष, सिंह और धनु राशि पूर्व दिशा की समझी जाती हैं, वृषभ, कन्या और मकर दक्षिण दिशा की, मिथुन तुला और कुंभ पश्चिम दिशा की तथा कर्क, वृश्चिक और मीन उत्तर दिशा की । यात्रा के समय चन्द्रमा सम्मुख हो तो बहुत उत्तम गिना जाता है।

दक्षिण चन्द्र को भी प्रशस्त मानते हैं। पृष्ठ चन्द्र अर्थात् चन्द्रमा यदि पीठ पीछे हो तो यात्रा नही करनी चाहिए। वाम चन्द्र अर्थात् यात्रा के समय यदि चन्द्रमा बाई ओर हो तो भी यात्रा सफल नहीं होती। विशेष यह है कि वाम चन्द्र मे धनक्षय होता है।

उदाहरण के लिए आज सिंह का चन्द्रमा है और आज आपको पूर्व की ओर यात्रा करनी है तो सम्मुख चन्द्र होगा। यदि आप दक्षिण दिशा को यात्रा करें तो वाम चन्द्र होगा। यदि आप उत्तर दिशा को जारहे हैं तो सिंह का चन्द्रमा दाहिना होगा और पश्चिम को जायेंगे तो पृष्ठ चद्र होगा अर्थात् पीठ पीछे चन्द्रमा होगा। इसी प्रकार अन्यत्र समझना चाहिए।

यात्रा के समय यदि सम्मुख चन्द्र हो तो अन्य दोषों का प्रभाव कम हो जाता है।

सम्मुखे अर्थ लाभाय दक्षिणे सुखसम्पदः।

पृष्ठतो मरणं चैव वामे चंद्रे धनक्षयः।
सर्वे दोषा लय यांति पूर्णे चन्द्रे हि सम्मुखे ॥

नक्षत्र विचार : नक्षत्र-शूल अर्थात् किस दिशा मे किस नक्षत्र मे यात्रा नही करना यह ३१०वे पृष्ठ पर बताया जा चुका है।

धनिष्ठा नक्षत्र का उत्तरार्ध (अंतिम आधा भाग) शतभिषा, पूर्वाभाद्र, उत्तराभाद्र तथा रेवती इन नक्षत्रो मे जब चन्द्रमा रहता है तो इसे पञ्चक कहते हैं। इन नक्षत्रो मे दक्षिण की ओर यात्रा करना निषिद्ध है।

अब यह बताया जाता है कि यात्रा की दृष्टि से कौन से नक्षत्र उत्तम हैं, कौन से मध्यम और कौन से निंदनीय।

(१) यात्रा के लिये प्रशस्त नक्षत्र निम्नलिखित हैं

अश्विनी, मृगशिर, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, रेवती। इन नौ नक्षत्रो मे किसी भी दिशा मे यात्रा की जा सकती है।

(२) रोहिणी, पूर्वा फाल्गुनी, उत्तरा फाल्गुनी, पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ, पूर्वाभाद्र, उत्तराभाद्र, ज्येष्ठा, मूल और शतभिषा मध्यम नक्षत्र हैं। यदि चन्द्र सम्मुख हो तो यात्रा कर सकते हैं।

(३) भरणी, कृत्तिका, आर्द्रा, आश्लेषा, मघा, चित्रा, स्वाति और विशाखा ये निन्दनीय नक्षत्र हैं। यदि बचाया जा सके तो इन नक्षत्रो में यात्रा नहीं करनी चाहिए।

प्रशस्त तिथियां—यात्रा में ६, ८, १२ तिथियाँ, शुक्ल पक्ष की पड़वा, अमावास्या और पूर्णिमा निषिद्ध हैं।

विशेष यह है कि यदि यात्रा करना आवश्यक हो तो पूर्वा फाल्गुनी, पूर्वाषाढ और पूर्वाभाद्र नक्षत्रो की प्रारम्भिक १६-१६ घड़ी छोडकर बाकी समय में यात्रा की जा सकती है। इसी प्रकार आश्लेषा, स्वाति, विशाखा और ज्येष्ठा इन नक्षत्रो की प्रारम्भिक १४–१४ घडियाँ विशेष त्याज्य है। भरणी नक्षत्र की प्रारम्भिक ११ घड़ियाँ , कृत्तिका की शुरू की २१ घडियाँ तथा मघा नक्षत्र की प्रारम्भिक ११ घडियाँ छोडकर यात्रा कीजा सकती है। चित्रा नक्षत्र के सम्बन्ध में यह नियम है कि जब तक कन्या का चन्द्रमा रहे तब तक यात्रा की जा सकती है।

सिद्धियोग और मृत्युयोग

तिथि और वार के योग से सिद्धियोग तथा 'मृत्युयोग' होते हैं :

(क) यदि शुक्रवार हो और १, ६, ११ तिथि हो,

(ख) यदि बुधवार हो और २, ७, १२ तिथि हो,

(ग) यदि मंगलवार हो और ३, ८, १३ तिथि हो,

(घ) यदि बृहस्पतिवार हो और ५, १०, १५ (पूर्णिमा) तिथि हो,

(ङ) यदि शनिवार और ४, ९, १४ तिथि हो तो ये पाँचों योग सिद्धियोग कहलाते हैं। इनमें यात्रा सिद्धिदायक होती है। इसके विपरीत—

(१) रविवार या मगलवार हो और १, ६, ११ तिथि,
(२) सोमवार या शुक्रवार हो और २, ७ या १२ तिथि,
(३) बुधवार और ३, ८, १३ तिथि,
(४) बृहस्पतिवार और ४, ६, १४ तिथि,
(५) तथा शनिवार और ५, १०, १५ (पूर्णिमा), ३० (अमावास्या) तिथि।

ये पाँचो 'मृत्युयोग' कहलाते हैं। इनमे यात्रा नही करनी चाहिए।

लग्न विचार—जिस प्रकार जन्म के समय या प्रश्न के समय लग्न को वहुत महत्त्व दिया जाता है उसी प्रकार यात्रा के समय लग्न की भी वहुत महिमा कही गई है। चन्द्रमा की जो दिशा ३१२वे पृष्ठ पर बताई गई है वही लग्न की भी दिशा समझनी चाहिए। उदाहरण के लिए मेष लग्न, सिंह लग्न और धनु लग्न पूर्व दिशा की ओर होता है। जैसे सम्मुख चन्द्र को वहुत उत्तम गिनते हैं उसी प्रकार सम्मुख लग्न में यात्रा करने से कार्यसिद्धि होती है। यदि दाहिना लग्न हो तो भी उत्तम है। (उदाहरण के लिए आपको उत्तर दिशा पर जाना है, मेष लग्न पूर्व का है इस कारण दाहिना लग्न हुआ)। वाम लग्न को वचाना चाहिए पृष्ठलग्न मे यात्रा निषिद्ध है देखिए पृष्ठ ३११। लग्न का विचार करते समय लग्न और लग्नेश का वल विचार करना चाहिए। लग्नविचारके लिए निम्नलिखित योग और दिए जाते हैं

(१) अष्टम और द्वादश मे कोई ग्रह नही होने चाहिए।
(२) शुभ ग्रह १, ४, ५, ७, ६, १० स्थानो मे रहना उत्तम है।
(३) पापग्रह ३, ६, ११ मे होना अच्छा है।
(४) चन्द्रमा लग्न, छठे, आठवे या वारहवे होना अनिष्ट है।
(५) लग्नेश भी लग्न से ६, ७, ८, १२ भाव मे अनिष्ट है।
(६) शनि दशम में अच्छा नही।

(७) शुक्र लग्न से सातवे अच्छा नही ।

लग्न-सम्बन्धी अन्य योग—

(१) लग्न से तृतीय, छठे या ग्यारहवे भाव या भावो में मगल और शनि हों और शुभ ग्रह केन्द्र तथा त्रिकोण में बलवान् हों तो कार्यसिद्धि होती है ।

(२) लग्न में बृहस्पति, छठे भाव में सूर्य हो तो चन्द्रमा अष्टम स्थान में अच्छा गिना जाता है ।

(३) यदि सूर्य दशम या एकादश भाव में हो और बृहस्पति केन्द्र में हो तो कल्याण नामक शुभ योग होता है ।

(४) यदि लग्नेश छठे, आठवे या बारहवे भाव में हो तो अन्य सब शुभ फलो को नष्ट कर अशुभ फल देता है ।

(५) बुध, बृहस्पति और शुक्र—ये तीनो शुभ ग्रह हैं । यदि इनमें से एक भी ग्रह केन्द्र या त्रिकोण में हो तो इसे 'योग' कहते हैं । यदि इनमें से दो केन्द्र, त्रिकोण में हो तो 'अधियोग' और यदि तीनो केन्द्र, त्रिकोण में हों तो 'योगाधियोग' होता है । यह उत्तरोत्तर श्रेष्ठ है ।

(६) यदि लग्नेश अस्त हो, नीच राशि में हो, छठे या आठवे भाव मे हो, या किसी ग्रह से हार गया हो तो ऐसे लग्न में की हुई यात्रा का बहुत अशुभ परिणाम होता है ।

कुभ लग्न तथा कुभ नवाश (अन्य लग्नों मे) यात्रा मे निषिद्ध हैं मीन लग्न में यदि यात्रा की जाये तो रास्ता टेढा हो जाता है—जैसे दिल्ली से जाना हैं कलकत्ते बीच, में चले गये लखनऊ या मार्ग लम्बा हो जाता है । मोटर से यात्रा करते समय जैसे कोई भटक कर लम्बी सड़क घूमकर जाने वाली पकड ले ।

अब तक यात्रा के विषय में केवल वे बातें बताई गई है जो सब व्यक्तियो के लिए समान रूप से लागू हैं । अब कुछ ऐसी बाते बताई जाती हैं कि जो व्यक्ति यात्रा कर रहा है उसके जन्म लग्न,

जन्म नक्षत्र, जन्म राशि आदि से विचार करनी चाहिए।

घात चक्र—सबसे पहले घात चक्र दिया जाता है। वैसे तो प्रत्येक कार्य मे घात चक्र का विचार करना चाहिए किंतु यात्रा में इसका विशेष विचार उचित है।

सर्वघातचक्र

जन्म रा.	मे.	वृ	मि	क	सिं	क.	तु	वृ	ध.	म.	कुं.	मी
सू घा	४	८	१२	५	९	१	६	१०	७	११	२	३
च. घा.	१	५	९	२	६	१०	३	७	४	८	११	१२
म घा	५	९	१	६	१०	२	७	११	८	१२	३	४
बु घा	२	६	१०	३	७	११	३	८	५	९	१२	१
गु घा	६	१०	२	७	११	३	८	१२	९	१	४	५
शु घा.	७	१०	३	८	१२	४	९	१	११	२	५	६
श घा	३	७	११	४	८	१२	५	९	६	१०	१	२
रा घा	८	७	६	४	५	१०	१२	१	२	९	११	३
के घा	८	७	१०	१	११	५	६	४	२	३	१२	९
मा घा	का	मा	पौ.	मा	फा	चै.	वै	ज्ये	आ	श्रा	भा	आ
	१	५	२	२	३	५	४	१	३	४	३	५
ति. घा	६	१०	७	७	८	१०	९	६	८	९	८	१०
	११	१५	१२	१२	१३	१५	१४	११	१३	१४	१३	१५
वार घात	सू	श	च	बु	श	श	गु	शु	शु	म	गु	शु
न. घा	म	ह	स्वा	अनु	मू	श्र	श	रे	भ	रो	आ	श्ले.
यो घा	वि.	शू	प	धृ	प्री	शु	शु	व्य.	वै.	ग	व्या	व
ल. घा.	१	२	४	७	१०	१२	६	८	९	११	३	५

घात चक्र नीचे समझाया जाता है। मान लीजिये किसी व्यक्ति की मेष राशि है अब मेष के नीचे और च० घा० के सामने देखिए '१' लिखा है। इसका अर्थ यह हुआ कि मेष राशि वाले को प्रथम

अर्थात् मेष राशि का चन्द्रमा ही घात चद्र हुआ। वृष राशि वाले को '५', वृष से पाँचवाँ कन्या राशि का चन्द्रमा घात चद्र गिना जावेगा। राज सेवा, विवाद, मुकदमा, युद्ध आदि कार्यो में त्यागना चाहिए।

घात लग्न का विचार निम्नलिखित रूप से करना उचित है। मेष राशि वाले को मेष लग्न ही घात लग्न है। वृष राशि वाले को वृषभ लग्न। मिथुन राशि वाले को कर्क लग्न। कर्क राशि को तुला लग्न आदि। ऊपर के चक्र में लग्नो की ही सख्या दे दी गई है।

चन्द्र विचार— जिस मनुष्य को यात्रा करनी हो उसकी जन्म-राशि से चौथा या आठवाँ चद्रमा यात्रा के समय नही होना चाहिए।

नक्षत्र विचार—कुल २७ नक्षत्र होते हैं। जिस मनुष्य के लिए यात्रा का मुहूर्त्त देख रहे हों उसके जन्म-नक्षत्र से यात्रा का नक्षत्र गिनना चाहिए। यदि ९ से अधिक हो तो ९ का भाग देकर शेष निकाल ले। इसका फल निम्नलिखित है।

१ जन्म; २; सम्पत्; ३ विपद्, ४ क्षेम; ५ प्रत्यरि; ६ साधक, ७ वध, ८ मित्र, ९; परम मित्र। यदि जन्म-नक्षत्र से यात्रा-नक्षत्र तक गिनने पर उपर्युक्त प्रकार से १, ३, ५ या ७ शेष बचे तो अनिष्ट है। यदि कृष्ण पक्ष में यात्रा कर रहे हों तो तारा का विशेष विचार करना चाहिए।

लग्न-विचार—जिस मनुष्य के लिए यात्रा का मुहूर्त्त निकालना हो उसके जन्म लग्न या जन्म राशि से अष्टम लग्न में यात्रा करना निषिद्ध है। यदि इन आठवी राशियों के स्वामी यात्रा-लग्न में हो तो भी निषिद्ध है।

(२) यदि किसी मुकद्दमे या युद्ध के लिए यात्रा कर रहे हों तो शत्रु की जन्म-लग्न या जन्म-राशि से छठे लग्न में यात्रा न करें। इसी प्रकार शत्रु की जन्म-राशि या जन्म-लग्न का स्वामी यात्रा-लग्न में नही होना चाहिए।

यात्रा मुहूर्त में कुछ अन्य विचार—वार-वेला मे यात्रा करना निषिद्ध है। किस वार के किस हिस्से को वार वेला कहते हैं यह २८५वे पृष्ठ पर बताया गया है।

गोरख पत्रा—यात्रा मे गोरख पत्रा के नाम से (किस मास) किसी तिथि को, किस दिशा मे यात्रा करने से क्या फल होता है। यह विचार ३२० पृष्ठ पर देखे।

अमृत घटी—यदि यह आवश्यक हो कि आज ही यात्रा करनी है और यात्रा का मुहूर्त न बनता हो, लग्न का विचार करने वाला कोई ज्योतिषी न मिले तो 'अमृत'घटी' मे यात्रा करनी चाहिए। अमृत घटी कब से कब तक रहती है यह आगे बताया जाता है।

यात्रा के लिए ही क्या प्रत्येक कार्य के लिए अमृत घटी श्रेष्ठ मानी जाती है। दिन या रात्रि को आठ भागो में बाँटकर शुभाशुभ विचार करना (चौघडिया) विचार कहलाता है।

पाठको के लाभार्थ चौघडिया चक्र पृ०३२१ पर दिया जाता है दिन को आठ भागोमे विभक्त कीजिये इसप्रकार रात्रि को भी आठ भागो मे विभक्त कीजिए। इन अष्टमाशो के नाम शुभ, अमृत, चर (चचल), रोग, काल, लाभ तथा उत्पात हैं जो नीचे के चक्र से स्पष्ट होगा।

प्रत्येक कार्य के लिए 'शुभ', 'लाभ' तथा 'अमृत' श्रेष्ठ है। अमृत घटी सर्वश्रेष्ठ है।

एक-एक भाग करीब पौने चार घड़ी का होता है। इस कारण इसे चौघडिया कहते हैं परन्तु वास्तव में दिनमान का अष्टमाश दिन का $\frac{1}{8}$ भाग होता है और रात्रिमान का अष्टमाश रात्रि का $\frac{1}{8}$ भाग होता है। जाडे और गर्मी में दिनमान के अनुसार प्रत्येक भाग के मान मे अन्तर हो जाता है।

यात्रा में गोरख-पत्रा

पौ०	मा०	फा०	चै०	वै०	ज्ये०	आ०	श्रा०	भा०	आ०	का०	मा०	पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	सुख	क्लेश	अनिष्ट	धन प्राप्ति
२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	शून्य	निर्धनता	निर्धनता	मिश्रित फल
३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	धन हानि	दुख	कार्यसिद्धि	धन
४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	लाभ	सुख	शुभ	धन लाभ
५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	लाभ	धन-प्राप्त	धन	सुख
६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	भय	लाभ	मृत्यु	धन लाभ
७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	लाभ	कष्ट	धन लाभ	सुख
८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	कष्ट	सुख	श्रमसे लाभ	सुख
९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	सुख	लाभ	कार्य सिद्धि	कष्ट
१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	दुख	कष्ट से सिद्धि	धन	धन
११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	मृत्यु	लाभ	धन लाभ	शून्य
१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	शून्य	सुख	मृत्यु	अति कष्ट

उदाहरण :—यदि पौष मास में पड़वा को पूर्व दिशा की ओर यात्रा की जावे तो इसका फल 'सुख' अर्थात् उत्तम है, यदि इसी दिन दक्षिण दिशा को यात्रा की जावे तो इसका फल 'क्लेश' अर्थात् कष्टकारक है। पश्चिम की ओर भी इस दिन यात्रा करने से 'अनिष्ट' परिणाम होगा। किन्तु यदि इस दिन उत्तर की ओर यात्रा की जावे तो 'धन प्राप्ति' होगी।

दिन का चौघडिया

र	च	म	बु	गु	शु	श
उ	अ	रो	ला	शु	च	का
च	का	उ	अ	रो	ला	शु
ला	शु	च	का	उ	अ	रो
अ	रो	ला	शु	च	का	उ
का	उ	अ	रो	ला	शु	च
शु	च	का	उ	अ	रो	ला
रो	ला	शु	च	का	उ	अ
उ	अ	रो	ला	शु	च	का

रात का चौघड़िया

र	च	म	बु	गु	शु	श
शु	च	का	उ	अ	रो	ल
अ	रो	ला	शु	च	का	उ
च	का	उ	अ	रो	ला	शु
रो	ला	शु	च	का	उ	अ
का	उ	अ	रो	ला	शु	च
ला	शु	च	का	उ	अ	रो
उ	अ	रो	ला	शु	च	का
शु	च	का	उ	अ	रो	ला

शिवद्विघटिका मुहूर्त—दो-दो घडी का शुभाशुभ मुहूर्त निकालने का एक अन्य प्रकार शिवद्विघटिका मुहूर्त के नाम से प्रसिद्ध है।

न तिथिर्न च नक्षत्र न योगं करणं तथा ।
शिवस्याज्ञां समादाय देवकार्यं विचिन्तयेत् ॥
माहेन्द्रममृतं वक्र शून्यं क्षणचतुष्टयम् ।
क्रियते ज्यौतिषाचार्यं र्यात्रोद्वाहादिमङ्गले ।
माहेन्द्रे विजयो नित्यममृते कार्यशोभनम् ।
वक्रेगतिविलम्बः स्याच्छून्ये च मरण भयम् ॥

माघ, फाल्गुन, चैत्र, वैशाख, श्रावण और भाद्रपद

र	दिन—मा॰ २ अ ८ व १० शू ८ अ २
	रात्रि—शू २ मा २ शू २ अ ४ शू २ व ६ शू ६ मा २ अ ४
च	दि—मा ४ व ८ अ ६ व. ६ अ ४ शू. २
	रा—व ४ मा. ४ अ. २ व. ८ अ ४ शू ४ व २ शू २
म	दि—अ ६ शू २ व. २ अ. ६ शू. ८ अ. ४ शू २
	रा—व ४ मा ४ अ २ व ६ अ ४ शू २ व ३ मा ८ अ ४
बु	दि.—व ४ अ ४ व ६ अ. ४ शू २ व. ४ मा. २ अ ४
	रा—शू २ अ ६ मा ४ व ४ शू ४ अ १०
गु	दि.—अ ६ शू २ व ४ अ. ६ व ८ अ ४
	रा—व ४ मा ४ अ. २ व. ८ अ ४ शू. ४ अ ४

शु. दि—शू २ अ. १६ व. ८ अ. २ शू. २
रा.—व. ४ शू २ अ. ६ व. ६ मा. ६ शू. २ अ. ४

श. दि.—शू. ४ व. २ शू २ अ. ८ शू २ व. २ शू. ४ अ. ४ शू २
रा.—व ६ अ. ६ व. ४ शू. ४ अ. ४ शू २ अ ४

ज्येष्ठ और आषाढ

र. दि—अ ६ व. ८ अ. ८ शू २ मा. २ श. ४
रा—शू. २ अ. ८ व. ६ अ. ६ व ४ मा ४

चं. दि.—अ. ४ व. ४ अ. ६ व. १६
रा.—व. ६ अ. ८ व ८ मा. २ व. ४

मं. दि.—शू. ४ व. ६ अ. ४ शू. ४ व. ६ शू. २ अ. ४
रा.—शू. २ अ. ८ व. ६ अ. ६ व. ६ मा. २

बु. दि—शू. २ मा. ४ अ. ४ व. ६ शू. २ व. ४ अ. ६ शू. २
रा—व. ४ अ ४ व ८ अ. ६ शू ८

गु. दि.—अ. ४ व. ६ अ ४ शू. ४ व ६ शू. २ अ. ४
रा.—व. ८ अ ६ व ६ अ. ६ व ४

शु. दि—अ. २ व २ अ. ६ व ६ अ. ८ शू. २ व ४
रा.—व ४ अ ४ शू ४ अ २ व ४ अ. ४ शू ८

श. दि—मा. २ शू ६ अ. ८ व. १० शू ४
रा.—शू. २ व ४ मा. २ अ. ४ शू. १० अ २ व. २ श २ अ २

आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष और पौष

र. दि.—शू ४ अ. ६ व ६ अ. ६ व. ४ अ. २ शू. २
रा.—शू. ४ अ. ४ व. ६ अ ६ शू ४ व ६

च. दि—अ. ८ मा ४ शू. ६ अ. ६ मा ६
रा—व. ६ अ ८ व. ६ अ. ४ शू २ व. ४

मं. दि.—अ. ४ व. ६ अ. २ शू. ४ मा. ६ शू. ६ व. २
रा—व. ६ अ. ८ व. ६ अ ४ शू २ व. ४

बु. दि.—शू. २ मा. ४ अ. ८ व. ६ शू ८ व. २
रा.—अ १० शू. २ व ८ अ. ६ शू. २ व. २

गु. दि.—अ. २ शू. ४ व. ६ अ. ४. शू २ व. ४ अ. ६ मा २
रा.—शू ४ व. ४ शू २ अ ६ व. ६ शू २ व ६

शु. दि.—व. ८ अ. ४ शू. २ अ. २ व. ४ अ. ६ मा. ४
रा.—व ४ शू. २ अ. ६ शू. ६ मा. २ शू. २ व. ८

ष. दि.—शू. ४ अ. ४ शू ४ अ ८ शू २ व ४ शू. २ मा २
रा.—शू. २ व ४ अ ६ व. ४ अ. ६ व. ४ अ. ४

अर्थात् ऊपर जो शू अ र मा ये जो चार सकेत दिए गये हैं उनका क्रमश. अर्थ निम्नलिखित है।

मा० माहेन्द्र—इस समय यात्रा करने से विजय होती है।

अ० अमृत—इस समय यात्रा करने से कार्य सफल हो जाता है।

व० वक्र—इस समय कार्य करने से विलम्ब लगता है।

शू० शून्य—इसका अनिष्ट अशुभ फल है।

ऊपर जो दिन और रात्रि का मान ३०-३० घड़ी लिया गया है वह यदि दिन बडा या कम हो या रात्रि बडी या कम हो तो अनुपात से अधिक या कम कर लेना चाहिए।

प्रस्थान—यदि किसी विशेष दिन यात्रा करना सुविधजनक हो और उस दिन मुहूर्त्त अच्छा न हो तो ५ दिन पहले तक प्रस्थान कर सकते हैं। अपने पहनने के वस्त्र, मागलिक द्रव्य आदि का एक पैकेट या असवाब या अदद अपने घर से दूर शुभ मुहूर्त्त मे दूसरे के यहाँ रखवा दे और जाते समय वहाँ से ले जावे। परन्तु प्रस्थान रखवाने के बाद उस घर पर या उस घर के सामने से जहाँ प्रस्थान रखा हो (बीच मे) नही जाना चाहिए।

छत्तीसवाँ प्रकरण

नक्षत्र-प्रकरण

वार और नक्षत्र

(१) ध्रुव—उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ, उत्तरा भाद्रपद और रोहिणी नक्षत्र की 'ध्रुव' सज्ञा है। रविवार ध्रुव वार होता है। इस मुहूर्त्त मे बीज बोना, गृह प्रवेश आदि स्थिर कार्य करने

चाहिए । नारद के मतानुसार राजा का अभिषेक, मगल कार्य, नौकरी प्रारभ करना, सवारी, अस्त्र धारण, दवा, धातु का कार्य, युद्ध आदि रविवार को प्रशस्त हैं।

(२) चर—स्वाति, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा शतभिषा नक्षत्र तथा सोमवार चर-सज्ञक हैं। इसमे बाग की सैर के लिए जाना (जैसे सप्ताह के अन्त में दो दिन के लिए अग्रेज जाते हैं,) सवारी पर चढना, गहना बनवाना आदि उत्तम हैं। आगे 'लघु' सज्ञक नक्षत्रों में जो कार्य बताये गये हैं वे भी चर सज्ञक नक्षत्रों में बताये गये हैं। नारद के मतानुसार शंख, मोती, जल, चाँदी, वृक्ष, ईख, स्त्री, भूषण, पुष्प, गान-वाद्य, यज्ञ, दुग्ध तथा खेती के कार्यो के लिए सोमवार बहुत उत्तम है।

(३) उग्र—पूर्वा फाल्गुनी, पूर्वाषाढ, पूर्वा भाद्रपद, भरणी और मघा नक्षत्र 'उग्र' नक्षत्र कहलाते हैं। मगलवार भी उग्र वार है। इस मुहूर्त्त में शैतानी का कार्य, विष-प्रयोग, शस्त्र-प्रयोग, मारण, बधन, झगड़ा करना, युद्ध करना, आसव बनाना (द्राक्षासव, शराब आदि) अच्छा है।

नारद जी के वचनानुसार विष और अग्नि-सम्बन्धी कार्य, बन्धन, चोरी, संधि (सुलह या राजीनामा), युद्ध, आसव, धातु-कार्य (लोहा, ताँबा आदि का कार्य), प्रवाल (मूँगा), स्त्री भोग तथा स्त्री सम्बन्धी कार्य मगलवार को करना उचित है।

(४) मिश्र—विशाखा, कृत्तिका, नक्षत्र मिश्र नक्षत्र कहलाते हैं। बुध मिश्रवार है। इस मुहूर्त्त में अग्नि होम, वृषोत्सर्ग (बिजार छोड़ना), कार्य करना उचित है। नारद के वचनानुसार नृत्य, शिल्प कला, गीत लिखना, पृथ्वी के रसो का सग्रह, विवाह, अन्य सग्रहादि कार्य बुधवार को प्रशस्त हैं।

(५) लघु—हस्त, अश्विनी और पुष्य नक्षत्र लघु या 'क्षिप्र' नक्षत्र कहलाते है। बृहस्पतिवार क्षिप्रवार है। इन मुहूर्त्तों में

वस्तु वेचना, स्त्री भोग, शास्त्र अध्ययन, ६४ कलाओ (नाचना, गाना आदि का आरम्भ, शिल्प, भूपण बनवाना-खरीदना, औपधि प्रयोग आदि उत्तम हैं । नारद के वचनानुसार यज्ञ-कार्य मगल कार्य, आभूषण वस्त्र आदि खरीदना-पहनना-बनवाना, वृक्ष लगाना, सवारी खरीदना या प्रारम्भ करना वृहस्पतिवार को शुभ है ।

(६) मृदु नक्षत्र—मृगशिर, रेवती, चित्रा और अनुराधा मृदु नक्षत्र कहलाते है । शुक्रवार को मृदुवार कहते हैं । इस मुहूर्त्त मे मगल कार्य, गीत, क्रीडा (स्त्रियो के साथ), मित्रो के साथ गोष्ठी, मित्र सम्वन्धी कार्य, सुन्दर वस्त्र, आभूपण, वनवाना-खरीदना-पहनना आदि श्रेयस्कर हैं । नारद के वचनानुसार शुक्रवार निम्न-लिखित कार्यों के लिए विशेप शुभ है—गौ खरीदना—मकान पर रखना, अन्न सग्रह—उत्सव, भूमि सम्वन्धी कार्य, आभूपण, वस्त्र, रत्न सम्वन्धी कार्य, गाना-वजाना तथा स्त्रियो का प्रेम या कृपा प्राप्त करना ।

(७) तीक्ष्ण—आर्द्रा, आश्लेपा, ज्येष्ठा और मूल इन चारो नक्षत्रो की तीक्ष्ण सज्ञा है । शनिवार को तीक्ष्ण वार कहते हैं । इस दिन भयकर कार्य, जगली हाथी आदि पशुओ को कावू मे लाना, वधन, युद्ध, शत्रु पर चढाई आदि श्रेयस्कर हैं । नारद के वचनानुसार लोहा, सीसा, टीन, पत्थर, अस्त्र, विप, मदिरापान, आसव, झूठ वोलना, मकान आदि का खरीदना, प्रवेश तथा समस्त स्थिर कार्य के लिए शनिवार वहुत उपयुक्त है । वहुत से प्रदेशो मे लोकाचार ऐसा है कि तेल, लोहा, कोयला आदि सम्वन्धी पदार्थ शनिवार को खरीदना या लेना नही ।

(८) २७ नक्षत्रो को अधोमुख (नीचे को मुखवाले) ऊर्ध्वोन्मुख (ऊपर की ओर मुख वाले) और तिर्यङ् मुख (वगल की ओर मुख वाले) इस प्रकार तीन भागो मे विभाजित किया है ।

(१) **अधोमुख**— भरणी कृत्तिका, आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, विशाखा, मूल, पूर्वाषाढ, और पूर्वाभाद्र ये ६ नक्षत्र नीचे की ओर मुख वाले हैं। इसलिए इन नक्षत्रों में नीचे की ओर का कार्य जैसे कुआँ-बावड़ी, तालाब खुदवाना, तहखाना बनवाना, खजाना खुदवाना, गणित या ज्योतिष का प्रारम्भ करना, तृणादि (घास आदि का) कार्य, बिल (सुरंग) मे प्रवेश करना आदि कार्य शुभ हैं

(२) रोहिणी, आर्द्रा, पुष्य, उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, ये सब ऊपर की ओर मुँह वाले हैं। इनमें समस्त वृद्धि-कार्य या ऊपर की ओर जाने वाले कर्म जैसे हवाई जहाज का उड़ाना, मकान को ऊपर चढाना, पतग उडाना आदि कार्य शुभ हैं।

(३) बाकी के ६ नक्षत्र अश्विनी, मृगशिर, पुनर्वसु हस्त, चित्रा, स्वाति, अनुराधा, ज्येष्ठा और रेवती ये बगल की ओर मुह वाले नक्षत्र कहलाते हैं। इनमे आना-जाना बीज बोना, सवारी (टाँगा, गाड़ी, नाव आदि चलाना) आदि ये सब कार्य उपयुक्त हैं।

१—**वस्त्रादि धारण मुहूर्त**— अश्विनी, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा तथा ध्रुव नक्षत्रों मे ('ध्रुव' नक्षत्र. . . पृष्ठ पर बताये गये हैं)। रविवार, बुध, बृहस्पति या शुक्रवार को १, २, ३, ५, ६, ७, ८, १०, ११, १२, १३, ३० तिथियों को नवीन वस्त्र धारण या सुवर्ण के आभूषण आदि पहनने का अच्छा दिन होता है। मूँगा, हाथीदाँत का चूड़ा आदि पहनने के लिए भी यही

नोट—धनिष्ठा का उत्तरार्द्ध, शतभिषा, पूर्वाभाद्र, उत्तराभाद्र, और रेवती नक्षत्र इन पांचों को पचक कहते हैं। इनमें तृण, काष्ठ आदि का कार्य पलंग बुनना, चारपाई बुनना, छप्पर डलवाना आदि निषिद्ध हैं। पचक में यदि कोई मर जाय तो उसकी भी शान्ति करानी चाहिए।

मुहूर्त उत्तम है। लाल वस्त्र मंगलवार को भी धारण कर सकते हैं।

(२) पेड़-पौधे लगाना—विशाखा, मूल, शतभिषा, 'मृदु' और 'क्षिप्र' नक्षत्रोंमें (देखिये पृष्ठ ३२४-३२५) लता और वृक्ष लगाने चाहिए।

(३) नृप या उच्च पदाधिकारी से मिलना—ध्रुव, मृदु, क्षिप्र ये तीनों प्रकार के नक्षत्र किसी राजा या उच्च पदाधिकारी से मिलने के लिए उत्तम हैं। इन नक्षत्रों के अतिरिक्त श्रवण और धनिष्ठा भी इस कार्य के लिए उपयुक्त हैं।

(४) मद्य कार्य—शराब बेचना प्रारम्भ करना या शराब बनाना या मद्यपान आरम्भ करना मद्य-कार्य कहलाता है। तीक्ष्ण, उग्र नक्षत्रों में मद्य कार्य श्रेष्ठ है इन नक्षत्रों के अतिरिक्त शतभिषा नक्षत्र भी उत्तम है।

(५) गाय-बैल खरीदना—'क्षिप्र' नक्षत्र, पुनर्वसु, विशाखा ज्येष्ठा, धनिष्ठा, शतभिषा तथा रेवती नक्षत्रों में गाय-बैल आदि खरीदना, बेचना आदि उत्तम है।

(६) सिलाई सीखना—अश्विनी, पुनर्वसु, पुष्य, चित्रा, अनुराधा और धनिष्ठा नक्षत्र इस कार्य के लिए उत्तम हैं।

(७) दवा बनाना तथा दवा लेना आरम्भ करना—'लघु', 'मृदु' और 'चर (क्षिप्र)' नक्षत्रों में औषधि लेना या बनाना उत्तम है। मूल नक्षत्र भी इस कार्य के लिए बहुत प्रशस्त है। वारों में सबसे प्रशस्त रविवार है। सोमवार, बुधवार, बृहस्पतिवार तथा शुक्रवार भी बहुत उत्तम हैं। जिस समय दवा आरम्भ की जावे द्विस्वभाव (मिथुन, कन्या धनु या मीन) लग्न होना चाहिए। यदि लग्न में शुभग्रह हो तो विशेष अच्छा मुहूर्त समझना चाहिए।

नोट—रोहिणी, पुनर्वसु, पुष्य, उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़ तथा उत्तराभाद्र इन ६ नक्षत्रों में सधवा स्त्री (जिसका पति जीवित हो) नवीन वस्त्र, मूँगा, हाथीदाँत आदि धारण न करे।

लग्न से सप्तम, अष्टम तथा द्वादश मे कोई ग्रह नही होना चाहिए। चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी तथा अमावास्या के अतिरिक्त सब तिथियाँ उत्तम हैं। विशेष यह है कि अपने जन्म-नक्षत्र मे दवा लेना या बनाना या प्रारम्भ करना शुभ नही।

(८) वस्तु का खरीदना, बेचना तथा दुकान आरंभ करना :

क्रयर्क्षे विक्रयो नेष्टो विक्रयर्क्षे क्रयोऽपि न।
पौष्णांबुपाश्विनीवातश्रवश्चित्र क्रये शुभाः॥
पूर्वाद्वीश कृशानु सार्पयमभे केंद्रत्रिकोणे शुभैः
षट्त्र्यायेष्वशुभैर्विना घटतनुं समन्वक्रयः सत्तिथौ।
रिक्ताभौमघटान्विता च विपणिर्मैत्रध्रुवक्षिप्रभैः–
लग्ने चंद्रसिते व्ययाष्टरहितै. पापैः शुभे द्व्यायखे॥

नीचे यह बताया जाता है कि किन नक्षत्रों में माल बेचना अच्छा है और किन नक्षत्रो मे खरीदना शुभ है। जिन नक्षत्रों मे खरीदना चाहिए उनमें बेचना उचित नही, तथा जिन नक्षत्रो मे बेचना चाहिए उनमे खरीदना उचित नही। ये नियम बड़े सौदों के लिए हैं। जब अधिक माल भरा जावे या बेचा जावे। नित्य की दुकानदारी के लिए यह नियम लागू नही।

रेवती, शतभिषा, अश्विनी, श्रवण, स्वाति तथा चित्रा ये ६ नक्षत्र माल खरीदने के लिए श्रेष्ठ हैं। तीनों पूर्वा (पूर्वा फाल्गुनी, पूर्वाषाढ, तथा पूर्वाभाद्र), विशाखा, कृत्तिका, आश्लेषा और भरणी ये माल बेचने के लिए श्रेष्ठ नक्षत्र हैं। कुभ लग्न के अतिरिक्त अन्य लग्न हो, केन्द्र में त्रिकोण तथा दूसरे स्थान मे शुभ ग्रह हो, तीसरे, छठे, ग्यारहवे में क्रूर ग्रह हो और चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी, अमावास्या के अतिरिक्त तिथि हो तो बेचना श्रेयस्कर है।

दुकान प्रारम्भ करने के लिए 'मित्र', 'ध्रुव', 'क्षिप्र' नक्षत्र (चित्रा, अनुराधा, मृगशिर, रोहिणी, रेवती, तीनो उत्तरा (उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ, उत्तरा भाद्र), अश्विनी, पुष्य, तथा हस्त नक्षत्र में, मगल छोडकर अन्य ६ वारो मे किसी दिन, एव कुभ लग्न को छोडकर अन्य लग्न मे दुकान लगाना (खरीदना-बेचना प्रारम्भ करनाउत्तम है।) लग्न मे शुक्र और चन्द्रमा का होना बहुत श्रेष्ठ है, चन्द्रमा शुक्ल पक्ष का जितना अधिक हो उतना ही उत्तम है। लग्न से द्वितीय (धन स्थान) तथा एकादश (लाभ स्थान) मे शुभ ग्रह हो तो विशेष अच्छा मुहूर्त समझा जाता है। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि ४ थे, ८ वे या १२वे कोई ग्रह नही होने चाहिए पाप-ग्रह का होना तो बहुत ही खराब है।

(९) आभूषण बनवाने का मुहूर्त– 'त्रिपुष्कर योग" मे (देखिये पृष्ठ २८१) 'चर', 'क्षिप्र' 'ध्रुव' नक्षत्रो मे साधारण गहना बनवाना (सोने चादी का) उत्तम है। तीक्ष्ण और उग्र नक्षत्रों के अलावा– अन्य नक्षत्रो मे, रविवार या मगलवार को रत्न (माणिक, मूँगा, पन्ना, पुखराज, हीरा, नीलम, गोमेद, लहसनिया आदि) जटित गहना बनवाना उचित है। रत्नजटित गहनो के लिए रविवार और मगलवार तथा जिन लग्नो के सूर्य, मगल स्वामी हैं (अर्थात् सिंह, मेष तथा वृश्चिक) ये लग्न विशेष उत्तम हैं। यदि मोती की माला, अँगूठी या अन्य भूषण बनाना हो तो सोम, बुध, बृहस्पति, शुक्रवार को 'चर', 'ध्रुव' 'मृदु' और क्षिप्र नक्षत्रो मे तथा शुभ लग्न मे बनवाना चाहिए।

(१०) शस्त्र बनवाने का मुहूर्त—तीक्ष्ण और उग्र नक्षत्र तथा अश्विनी मृगशिर, विशाखा एव कृत्तिका शस्त्र बनवाने के लिए उत्तम हैं।

(११) मोहर बनाना या सिक्का ढालना—अपने नाम या दफ्तर की मोहर बनवाना हो या किसी धर्मावलवी सरकार को सिक्का

ढालना हो या किसी बैंक या फर्म को अपने नाम के सोने के पासे या चाँदी की सिल्ली बनानी हो तो निम्नलिखित मुहूर्त्त शुभ हैं–

(१) ध्रुव, मृदु, चर या क्षिप्र नक्षत्र होना चाहिये।

(२) रवि, मगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र या शनिवार हो।

(३) बृहस्पति और शुक्र अस्त न हों।

(४) ३, ५, ८, १०, १३ या १५ (पूर्णिमा) तिथि हों।

(५) शुभ लग्न होना चाहिए।

(१२) **नौकरी करने का महूर्त्त**–क्षिप्र और मैत्र नक्षत्रो में रवि, बुध, बृहस्पति, शुक्रवार को सौम्य लग्न में दशम या एकादश मे सूर्य या मगल होतो नौकरी प्रारभ करने के लिए अच्छा मुहूर्त्त है।

(१३) **खजाना संग्रह करने का मुहूर्त्त** : यदि द्रव्य सग्रह करना हो तो इस कार्य के लिए आर्द्रा, श्रवण, पुष्य, मृगशिर, अनुराधा, धनिष्ठा शतभिषा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ, उत्तरा भाद्र और हस्त ये नक्षत्र प्रशस्त हैं। शास्त्रो मे यह कोष-सग्रह का मुहूर्त्त बताया गया है। हमारे विचार से सेविंग्ज बैंक एकाउन्ट खोलना या फिक्स्ड डिपाजिट एकाउंट खोलना आदि भी इसी के अन्तर्गत समझना चाहिए।

(१४) **रोगमुक्त स्नान महूर्त्त**—रोग निवृत्त होने पर स्नान करने के लिए निम्नलिखित शुभ हैं।

(१) रेवती, पुनर्वसु, मघा, स्वाति, रोहिणी, आश्लेषा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ, उत्तराभाद्र, नक्षत्र।

(२) चतुर्थी, नवमी, या चतुर्दशी तिथि।

(३) मेष, कर्क, तुला या मकर लग्न।

(४) रवि, मगल, बुध, बृहस्पति या शनिवार।

(५) चन्द्रमा लग्न से ४ था, ८ वाँ, १२ वाँ।

(६) पापग्रह केन्द्र त्रिकोण और एकादश में हों।

(१५) द्रव्य व्यवहार—रुपये को लेन-देन का महूर्त्त—इसके लिए निम्नलिखित शुभ हैं —

(१) स्वाति, पुनर्वसु, विशाखा, पुष्य, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, अश्विनी तथा मृदु नक्षत्र।

(२) मेष, कर्क, तुला या मकर लग्न।

(३) लग्न से पचम, नवम और अष्टम में कोई ग्रह नही होना चाहिए। विशेष यह है कि बुधवार को धन नही देना चाहिये और रविवार मगलवार, सक्रान्ति के दिन (जिस दिन सूर्य १ राशि से २री राशि में जावे) वृद्धि योग तथा हस्त नक्षत्र मे कभी भी कर्ज न ले ऐसा कर्ज चुकाये भी नही चुकता।

(१६) सिलाई-कटाई आदि प्रारंभ करने का महूर्त्त—इसके लिए निम्नलिखित नक्षत्र शुभ होते हैं—मृगशिर, चित्रा, अनुराधा, अश्विनी, पुष्य, रेवती, रोहिणी, हस्त और ज्येष्ठा। रवि, सोम, बुध, बृहस्पति तथा शुक्रवार प्रशस्त हैं। इस समय कार्यारम्भ करना शुभ है।

(१७) पशुओं की यात्रा तथा प्रवेश-मुहूर्त्त—इसके लिए चित्रा, तीनो उत्तरा (उत्तरापाढ, उत्तराफाल्गुनी तथा उत्तराभाद्र) तथा श्रवण नक्षत्र प्रशस्त हैं। चतुर्थी, अष्टमी, नवमी, चतुर्दशी तथा अमावास्या तिथि तथा मगलवार के अलावा अन्य सब वार शुभ हैं अर्थात् रविवार, सोम, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनिवार और १, २, ३, ५, ६, ७, १०, ११, १२, १३, १५ (पूर्णिमा तिथि) प्रशस्त हैं। इन सब बातो का ध्यान रखते हुए पशु का गृह-प्रवेश या यात्रा करनी चाहिए।

(१८) नवीन बर्तन के प्रथम उपयोग का मुहूर्त्त—इसके लिए निम्न बातों को ध्यान मे रखते हुए नवीन पात्र का उपयोग करना चाहिए (भोजनादि के कार्य मे)।

(१) रोहिणी, मृगशिर, हस्त, विशाखा, चित्रा, स्वाति, रेवती,

अश्विनी, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पुनर्वसु, पुष्य, अनुराधा तथा तीनों उत्तरा–उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़ तथा उत्तराभाद्रपद) नक्षत्र शुभ होते हैं।

(२) प्रशस्त वार हैं—बुध, बृहस्पति तथा शुक्रवार। 'अमृत' योग भी होना चाहिए। देखिये पृष्ठ २८२। यह मूहूर्त्त शास्त्र में सोने तथा चाँदी के भोजनपात्रो के लिए दिया गया है किंतु अन्य पात्रों में भी इस मूहूर्त्त का आश्रय लिया जा सकता है।

(१९) **हल जोतना प्रारम्भ करने का मुहूर्त्त**—हलारंभ के लिए मृदु नक्षत्र—मृगशिर, रेवती, चित्रा, अनुराधा, ध्रुव—तीनों उत्तरा (उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़ तथा उत्तराभाद्रपद) और रोहिणी नक्षत्र, क्षिप्र नक्षत्र—हस्त, अश्विनी, पुनर्वसु,—चर नक्षत्र—स्वाति, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा तथा मूल और भरणी शुभ हैं। प्रशस्त वार के अन्तर्गत सोम, बुध, बृहस्पति शुक्रवार आते हैं। शुभ तिथियाँ १, २, ३, ५, ७, १०, ११, १२, १३, १५ (पूर्णिमा) हैं। वृष, मिथुन, कर्क, कन्या, वृश्चिक, धनु तथा मीन लग्न प्रशस्त हैं। उक्त बातों से शुभाशुभ मुहूर्त्त (हल जोतना प्रारम्भ करने का मुहूर्त्त) निकालना चाहिए।

(२०) **बीज बोना** – जब सूर्य आर्द्रा नक्षत्र में प्रवेश करे (यह प्रायः पचांग में दिया रहता है कि सूर्य किस दिन किस नक्षत्र में प्रवेश करता है) उसके बाद तीन दिन तक बीज नही बोना चाहिये। बीज बोने के लिए निम्नलिखित नक्षत्र प्रशस्त हैं:—

हस्त, अश्विनी, पुष्य, उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ उत्तराभाद्र, रोहिणी, चित्रा, अनुराधा, मृगशिर, रेवती, स्वाती, धनिष्ठा, मघा और मूल।

नया अन्न खाने का मुहूर्त्त—फसल तैयार होने पर जब पहले-पहल अन्न खाया जाता है उसे नवान्न भक्षण कहते हैं। इसके लिए निम्नलिखित मुहूर्त्त शुभ हैं।

(१) चैत्र और पौष के अलावा कोई महीना होना चाहिए।

(२) मृगशिर, रेवती, चित्रा, अनुराधा, हस्त, अश्विनी, पुष्य, स्वाति, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा या शतभिषा नक्षत्र हो।

(३) २, ३, ४, ५, ७, ८, ६, १०, १२, १३, १४, १५ (पूर्णिमा) या ३० (अमावास्या) तिथि।

(४) लग्न में शुभ ग्रह हो या शुभग्रह से दृष्ट हो।

(५) रवि, सोम, बुध, वृहस्पति या शुक्र वार हो।

(६) विष घटी नहीं होनी चाहिए। विष घटी किसे कहते हैं यह २८४-२८५ पृष्ठ पर बताया गया है।

यह पुस्तक ज्योतिष का प्रारंभिक ज्ञान प्राप्त कराने के लिए है इसलिए यात्रा आदि के मुहूर्त इनमें दे दिये गये हैं। विवाह, मकान बनाना आदि बड़े कार्यों के लिए किसी विद्वान् ज्योतिषी से मुहूर्त निकलवाना चाहिए। अथवा गृहारंभ, विवाहादि के मुहूर्त अच्छे पंचागों में दिये रहते हैं जिस व्यक्ति के लिए मुहूर्त निकालना हो उसको चंद्रमा चतुर्थ, अष्टम या द्वादश नहीं होना चाहिए। विवाह में जन्म राशि से बारहवें राशि में भी चन्द्रमा ग्राह्य है। चन्द्रमा जिस नक्षत्र में हो वह जन्म नक्षत्र से ३ रा, ५ वां, ७वां, १२वां १४वां, १६वां, २१वां २३वां या २५वां नहीं होना चाहिए। इस प्रकरण में या नक्षत्र प्रकरण में जहां कहीं भी प्रशस्त नक्षत्र आदि शुभ मुहूर्त बताये गये हैं वहाँ सर्वत्र यह विचार कर लेना आवश्यक है कि जिसके लिए मुहूर्त देखा जा रहा है उसकी जन्मराशि और जन्म-नक्षत्र से मुहूर्त के समय चन्द्रमा जिस नक्षत्र या राशि में हो वे शुभ हैं या नहीं।

इस पुस्तक के अन्त में लाघवार्थ सारिणी, लग्न सारिणी, दशमलग्न सारिणी दशा-अन्तर्दशा चक्र दिये गये हैं। शुभम्।

Library

जन्म-तारीख एवं अन्य साधनों द्वारा भविष्य जानने की नवीन पुस्तक

अङ्क विद्या (ज्योतिष)

लेखक—ज्योतिष-कलानिधि

प्रो० गोपेशकुमार ओझा० एम० ए० एल-एल० बी०

अंकविद्या अथवा जन्म-तारीख, नाम तथा प्रश्न आदि द्वारा भविष्य जानने की प्रणाली भारत में अनादि काल से है। संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थों में इसके सिद्धान्त मिलते हैं तथापि इस विषय की पुस्तक का हिन्दी साहित्य में अभाव है। ज्योतिष के अन्तर्गत अंग से फलादेश करने की पद्धति शुद्ध भारतीय है—इसी कारण न्यूमरोलौजी अथवा अंकविद्या के मुख्य-मुख्य सिद्धान्तों को अनेक संस्कृत तथा अंग्रेजी के ग्रन्थों से संग्रह कर यह पुस्तक तैयार की गई है। इस अंक-विद्या के लिखने में जितनी अंग्रेजी तथा संस्कृत पुस्तकों की सहायता ली गई है उनका मूल्य कई सौ रुपये होगा परन्तु हिंदी पाठको के लाभार्थ विद्वान लेखक ने कण-कण मधु संचय कर इस पुस्तक में प्रस्तुत किया है।

पुस्तक को ६ अध्यायों में बाँटा गया है जिसमें अंकों और संख्याओं का महत्व, अंग्रेजी तारीखों के अनुसार उत्पन्न व्यक्तियों के शुभाशुभ वर्ष, महीने दिन घण्टे आदि निकालने के नियम इतनी सुगम रीति से बतलाये हैं कि साधारण पढ़ा-लिखा मनुष्य भी समझकर लाभ उठा सकता है। तथा किस नाम को कौन-सा शहर, मौहल्ला और व्यापार विशेष लाभदायक होगा। अंक से प्रश्न-विचार, जन्म-कुण्डली एवं हस्तरेखा से अंकविद्या का सामंजस्य ऐसा विषय है जो प्रत्येक ज्योतिषी और ज्योतिष-प्रेमी को जानना आवश्यक है।

राजधानी के विख्यात पत्र दैनिक 'हिन्दुस्तान' ने पुस्तक की उपयोगिता में लिखा है कि पुस्तक अपने विषय पर बड़ी अनूठी है। ज्योतिष-विद्या में रुचि-रखने वालों के लिए तो पुस्तक बड़े काम की है ही, अन्य लोगों को भी इसकी प्रति अपने पास रखने से बड़ा लाभ होगा।

मूल्य ३) डाकखर्च १) अलग।

पता—गोयल एण्ड कम्पनी, दरीबा, दिल्ली—६

प्रामाणिक और सर्वप्रिय ग्रन्थ

हस्त-रेखा विज्ञान (शरीर लक्षण सहित)

आयु, स्वास्थ्य, धन, सम्पत्ति, विवाह, प्रेम, सन्तान, स्वभाव, चरित्र, भाग्योदय आदि जीवन से सम्बन्ध प्रत्येक जानकारी प्राप्त कर सकते है। विद्वानो का मत है कि भारतीय मत, पाश्चात्य मत और अपने अनुभवो के आधार पर ऐसा तुलनात्मक एव प्रामाणिक ग्रथ आज तक नही लिखा गया।

पृष्ठ ३००, चित्र १५० जिल्द से सजे ग्रथ का मूल्य ८) डाक खर्च १।।)

अक विद्या (ज्योतिष)

जन्म-तारीख, अपना नाम और प्रश्न इत्यादि से भविष्य जानने का नवीन ढंग जिसको देखकर आप प्रसन्न होगे और चामत्कारिक उपाय पायेगे।

मूल्य ३) डाक खर्च १)

ज्ञान का अनुपम ग्रन्थ

श्री पचदशी (सटीक-पीताम्बरी भाष्य)

जीव की उत्पत्ति आत्मा का स्वरूप, माया और मायापति, ब्रह्म और मोक्ष जैसे लौकिक और पारलौकिक विषयो पर अनुपम ग्रथ जिसका भाष्य ब्रह्मनिष्ठ प० पीताम्बर जी ने किया है। अध्ययन और मनन योग्य।

पृष्ठ ८००, मूल्य ८) डाक खर्च १।।)

सनातन षोडश सस्कार विधि

ग्रथ की सहायता से जीवन मे होने वाले सोलहो सस्कार बडी सुगमता और सरलता से कराये जा सकते है। मूल्य ४) डाक खर्च १)

वायदे और तैयारी दोनो मे सहायक

व्यापार-रत्न

जिसमे सोना, चाँदी, रुई, गुड, गुवार, मटर, सरसो, तेल, तिलहन, मूँगफली, अलसी, शेयर, तावा, लोहा, घी, गेहूँ, वारदाना आदि के भाव जानने के नियम व कुछ विशेष उपाय और अपने तमाम जीवन के अनुभव सरल भाषा मे सबके समझ मे आने योग्य लिखे है।

मूल्य केवल ८) डाक खर्च १।।) अलग।

पता—गोयल एण्ड कम्पनी; दरीबा; दिल्ली ६।

वेदान्त ज्ञान का अनुपम ग्रन्थ

श्री पंचदशी

सटीक पीताम्बरी भाष्य

विजय नगर राज्य के संस्थापक श्री विद्यारण्य मुनि को आदि जगद्गुरु श्री शंकराचार्य के बाद वेदान्त-विज्ञान का आचार्य माना गया है। आपका लिखा हुआ "श्री पंचदशी" बहुत उच्च कोटि का वेदान्त ग्रंथ है। इसके पन्द्रह प्रकरणों मे से एक प्रकरण का भी गुरु द्वारा श्रवण और मनन करने वाला मनुष्य मुक्ति का मार्ग पा जाता है।

वेदान्त के ऐसे अनुपम ग्रन्थ पंचदशी पर अनेक टीकाएँ हुई हैं परन्तु उन सबमें ब्रह्मनिष्ठ प पीताम्बर जी की तत्त्व प्रकाशिका हिन्दी व्याख्या का अत्यधिक आदर हुआ है। यह व्याख्या बहुत पहले हुई थी और उसकी भाषा बदले हुए समय की दृष्टि से पुरानी पड़ गई थी तथा बाजार में बहुत प्रयत्न करने पर भी प्राप्त न होती थी। इसलिए समय की पुकार को समझते हुए, पुरानी भाषा का समुचित संस्कार कर दिया है जिससे यह उपयोगी ग्रन्थ सर्वजन सुलभ हो गया है।

वेदान्त शिरोमणि श्री १००८ जगद्गुरु शंकराचार्य ज्योतिष्पीठाधीश्वर श्री कृष्णबोधाश्रम जी महाराज ने पंचदशी के इस नवीन संस्करण पर विस्तृत भूमिका लिखकर सोने में सुगन्ध भर दी है।

संस्कृत शास्त्रों के मर्मज्ञ, लोक सभा के अध्यक्ष श्री अनन्तशयनम् आयंगर जी ने भी इतने व्यस्त रहते हुए अपना अमूल्य समय लगाकर इस ग्रन्थ को देखकर प्रसन्नता प्रकट की और अमूल्य निधि बतलाया। उनका यह लेख पुस्तक परिचय के नाम से ग्रन्थ में मौजूद है।

प्रचार की दृष्टि से आठ सौ ८०० पृष्ठ के ऐसे सर्वांग सुन्दर ग्रन्थ का मूल्य केवल आठ रुपये व डाक खर्च १।।) रखा गया है। कपड़े की पक्की जिल्द और मनोहर कवर से सजी ऐसी पंचदशी के लिए यह मूल्य न्यौछावरमात्र है।

मँगाने का पता—

गोयल एण्ड कम्पनी बुकसेलर, दरीबा दिल्ली-६

ज्योतिष कला-निधि पं० गोपेशकुमार ओझा

एम० ए एल०-एल० बी० की अनुपम कृति

हस्तरेखा-विज्ञान

(शरीर लक्षण सहित)

आयु, स्वास्थ्य, धन-सम्पत्ति, विवाह, प्रेम, स्वभाव, चरित्र आदि जीवन से जुड़ी हुई, प्रिय एवं अप्रिय घटनाओं के सम्बन्ध में जानने की उत्सुकता एवं चिन्ता प्रत्येक व्यक्ति में होती है—प्रत्येक मनुष्य चाहता है कि उसे निरन्तर सफलता मिलती चली जाय।

ज्योतिष शास्त्र मनुष्य की इसी जिज्ञासा की पूर्ति करता है तथा उसे सफलता प्राप्त करने का मार्ग दिखाता है। ज्योतिष के प्रधान अंग, हस्तरेखा-विज्ञान की उपयोगिता भी इस दिशा में सर्वविदित है। इसीलिए योरप आदि देशों में भी इसका आदर हुआ है और इसके सम्बन्ध में कितने ही ग्रन्थ लिखे गए हैं। परन्तु भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी में इस विषय में पूर्ण एवं प्रामाणिक ग्रन्थ का अभाव था। प्राच्य और पाश्चात्य विद्याओं के समान पंडित, ज्योतिष शास्त्रों में परम पारंगत ओझा जी ने अपने इस अनुपम ग्रन्थ द्वारा उस अभाव की पूर्ति कर दी है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में संस्कृत के प्राचीन ग्रंथों और आधुनिक पाश्चात्य साहित्य के विशाल भण्डार का पूर्ण अनुशीलन करने के बाद उसका तत्व निकाल कर रख दिया गया है जिसे देखकर विद्वानों ने मुक्तकण्ठ से कहा है कि हिन्दी में हस्तरेखा विज्ञान पर ऐसा प्रामाणिक, विस्तृत और सचित्र ग्रन्थ आज तक प्रकाशित नहीं हुआ।

ग्रन्थ का आद्योपांत मनन कर लेने वाला, प्रत्येक व्यक्ति की हथेली में उसका भूत, भविष्य और वर्तमान देख लेगा और अपनी शक्ति से लोगों को चौंका देगा।

६०० पृष्ठों और चित्रों वाले प्रत्येक दृष्टि से विशिष्ठ ग्रन्थ का मूल्य केवल ८) रखा गया है। डाक व्यय १॥) पृथक् होगा।

प्रकाशक—गोयल एण्ड कंपनी, दरीबा, दिल्ली—६

वायदे और तैयारी दोनों काम में सहायक

व्यापार रत्न

जिसमें सोना, चाँदी, रुई, गुड़, ग्वार, मटर, सरसों, तेल, तिलहन, अलसी, शेयर, ताँबा, लोहा, घी, गेहूँ और बारदाना आदि के सदैव के लिए तेजी-मन्दी के शास्त्रीय नियम व कुछ विशेष उपाय और अपने तमाम जीवन के अनुभव सरल भाषा में लिखे हैं।

पाठकों के ज्ञान के लिए कुछ संकेतमात्र नीचे दिए जाते हैं.—

(१) प्रत्येक वस्तु की दैनिक, साप्ताहिक, मासिक टकेवार तेजी-मन्दी निकालने की विधि व प्रति, युति, शर आदि का जिन जिन पर विशेष प्रभाव पड़ता है—उसका उल्लेख।

(२) कुछ विशेष व्यक्तियों के इस लाइन पर अनुभव और किस प्रकार वह लोग सफल हुए !

(३) जन्मपत्री व राशिज्ञान से वायदे और तैयारी के काम में लाभ होगा या नहीं, यदि होगा तो किस वस्तु से ?

(४) बार बार असफल रहने वालों के लिए हमारी सलाह।

(५) लक्ष्मी-प्राप्ति और परेशानी दूर करने के लिए कुछ अनुभूत योग, यन्त्र, मन्त्र, जप और सिद्धियाँ।

(६) गृह-स्थिति के अनुसार १२ सक्रान्तियों का विस्तृत व स्पष्ट फलादेश।

(७) किसी व्यक्ति को किस व्यवसाय से लाभ हो सकता है—इस पर वैज्ञानिक प्रकाश।

ऐसी ही और भी अनेक बातें है जो स्थान की कमी के कारण नहीं दी जा रही हैं।

पुस्तक की विशेषता है कि जहाँ यह ज्योतिषियों व ज्योतिष-प्रेमियों के लिए उपयोगी है वहाँ साधारण पढे लिखे व्यापारी भी स्वयं पढ कर सावधान रहते हुए लाभ उठा सकते है।

पुस्तक को देखकर कहना उचित होगा कि अपने विषय पर यह सचमुच में रत्न कहलाने योग्य है। मूल्य ८) डाक खर्च १।।) अलग

प्रकाशक—गोयल एण्ड कम्पनी दरीबा, दिल्ली।

ज्योतिष की कुछ पुस्तकें

मानसागरी भा० टी०	८)	बृहत्पाराशर होराशास्त्र भा०टी०	१२), १५)
जातकाभरण भा० टी०	६)	भृगुसंहिता महाशास्त्र ११ खंडोंमें	५०)
जातक पारिजात	१२)	भृगु संहिता पद्धति	७)
बृहज्जातक भा० टी०	४), ३)	त्रिकालज्ञ ज्योतिष	५)
ज्योतिषसार भा० टी०	४), ३)	ज्योतिष तत्व सम्पूर्ण दो खंडो में	५०)
ज्योतिष विज्ञान	६)	विश्व के भाग्यवानों की कुंडलियाँ	४)
भारतीय ज्योतिष	६), ८)	रविवार	१॥)
केवल ज्ञान प्रश्न चूड़ामणि	४)	चंद्रविचार	२)
जन्मपत्र दीपक	१।)	मंगलविचार	२॥)
जन्मपत्र व्यवस्था	॥।)	बुधविचार	२)
मुहूर्त चिंतामणि भा० टी०	३), २॥।)	पंचसाला पंचांग २०१६ से २० तक	२)
ताजक नीलकंठी भा० टी०	३॥), ३)	ज्योतिष शास्त्र	१)
रत्न धर्मालोक	२॥)	रमल दिवाकर	४॥)
कुण्डली दर्पण	१॥)	ग्रहलाघव	३॥)
ग्रह फल दर्पण	१॥)	जैमिनि सूत्र	१॥), २)
फलित संग्रह	१)	लीलावती	२॥)
जातकालंकार	॥।)	अखंड भाग्यदर्पण	३)
लघुपाराशरी	१।), ॥।)	रमलशास्त्र	२॥)
भुवन दीपक	२।), १)	सारावली	८)
सूर्यसिद्धान्त	४)	स्त्रीजातक	१।)
फलित प्रकाश	३)	दशाफलविचार	१॥।=)
सर्वतोभद्र चक्र बड़ा	३), १॥)	भविष्यफल बम्बई	१॥)
वाणिज्य सर्वस्व	१॥)	तेजी मंदी ज्ञान	३)
व्यापार भविष्य हाथरस	३)	तेजी मंदी सट्टा	४)
व्यापार भविष्य हापुड़	६)	ज्योतिष्मती तीन मास की	१॥)

नये वर्ष का रैफिल तथा श्री एन० सी० लहरी का अंग्रेजी पंचांग

इनके अतिरिक्त वैद्यक, वेदांत, ज्योतिष, कर्मकाण्ड धर्मशास्त्र, रामायण महाभारत, गीता, जन्मपत्री के फार्म रंगीन व सादा, लग्न पत्रिका, जन्मपत्र के नये ढंग की कापियाँ इत्यादि भी उचित मूल्य पर मिलती।

पता—गोयल एण्ड कम्पनी, दरीबा, दिल्ली ६।

महाभारत आदि ग्रन्थों के भाष्यकार आचार्य श्री पं० गंगाप्रसाद जी शास्त्री तर्करत्न द्वारा प्रस्तुत

सनातन षोडश संस्कार विधि

(भाषा टीका सहित)

भारतीय जीवन में संस्कारों का महत्त्व किसी से छिपा नहीं है परन्तु प्राचीन परिपाटी के अध्ययन-अध्यापन की शिथिलता से संस्कारों का सम्यक् एवं प्रामाणिक विधि-विधान लुप्त होता जा रहा । धर्मशास्त्र और कर्मकाण्ड के यशस्वी पंडित शास्त्री जी ने इस ग्रन्थ में संस्कारों से सम्बन्धित सम्पूर्ण विधि सग्रहीत कर दी है जिसके द्वारा साधारण ज्ञान रखने वाले व्यक्ति भी सामान्य पूजा एवं हवन आदि के साथ-साथ सोलह-संस्कार बड़ी सरलता से करा सकते हैं। सर्व साधारण की सुविधा के लिए प्रत्येक संस्कार की पूजन सामग्री की पूरी सूची भी दे दी गई हैं। संस्कार में प्रस्तुत होने वाले मंत्र आदि दूर से ही दीख जाने वाले स्पष्ट और मोटे अक्षरों में दिए गए हैं एवं पूजन विधि सरल हिन्दी में बताई गई है। कर्मकाण्ड में अनुराग रखने वाले महानुभावों ने पुस्तक का ऐसा आदर किया है कि अच्छी संख्या में छापने के बाद भी प्रथम संस्करण समाप्ति के निकट पहुँच गया है। उत्सुक सज्जन जल्दी करें नहीं तो दूसरे संस्करण की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।

बड़े साइज के ३१० पृष्ठ मूल्य केवल ४) डाक खर्च १)

श्रीमद्‌भागवत (चूर्णिका टी० सहित ३४)	श्रीमद्‌भागवत (भा टी सहित ३२)
निर्णय सिंधु (भा टी. सहित १६)	व्रतार्क (भाषा टीका ८)
देवी भागवत (भाषा टीका सहित) ४०)	हरिवंश पुराण (भा. टी सहित) ३२)
हरिवंश पुराण (केवल हिन्दी में) १६)	शुक्ल यजुर्वेद संहिता ५)

पता—गोयल एण्ड कम्पनी दरीबा, दिल्ली।